

UNIVERSAL  
LIBRARY

**OU\_180705**

UNIVERSAL  
LIBRARY





OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/VB.1Bh Accession No. H2626

Author चमो, वृक्षनसिंह

Title शिवन शिखर 1957

This book should be returned on or before the date last marked below.





# भुवन विक्रम

( ऐतिहासिक उपन्यास )

---

वृन्दावनलाल वर्मा

(लेखक—मृगनयनी, अहिल्याबाई, अचल मेरा कोई, कचनार,  
मुसाहिबू, हँस—मयूर, लगन, भांसी की रानी लक्ष्मीबाई,  
सोना, बिराटा की पद्मिनी, प्रेम की भेंट, अमरबेल,  
टूटे कांटे, राखी की लाज, पूर्व की ओर आदि)

---

आत्माराम एन्ड संस  
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता  
कारमीरी गेट, दिल्ली-६

मयूर प्रकाशन  
भांसी • दिल्ली

प्रकाशक—

सत्यदेव वर्मा बी. ए., एल-एल. बी.

मयूर-प्रकाशन, मॉँसी

प्रथमावृत्ति १९५७

---

अनुवाद, पुनर्मुद्रण आदि सम्बन्धी अधिकार प्रकाशक के अधीन हैं  
तथा चित्रपट-निर्माण के अधिकार लेखक को हैं ।

---

मूल्य ३।।)

मुद्रक—

स्वाधीन प्रेस, मॉँसी ।

## परिचय

वैदिक काल के एक अङ्ग पर कुछ लिखने की बहुत समय से इच्छा थी। उस काल की तरुण और सद्य ओजस्विता का स्पन्दन इतिहास और कथाओं में स्थान स्थान पर मिलता है। विकास का क्रम अनन्त है और मानव की वह ओजस्विता भी। किसी किसी युग में विकास-क्रम में कुछ कड़ियाँ सड़ी गली और निर्बल भी दिखलाई पड़ती हैं—हमारे ही देश में नहीं, पृथ्वी के अन्य भागों में भी। इनके होते हुये भी मानव विकास मार्ग में अग्रसर होता रहता है, भले ही समीचीन रूप से वह दिखलाई न पड़े। मानव संपूर्णतया कभी अशक्त नहीं होता, हो नहीं सकता—यदि ऐसा हो तो सृष्टि का कार्य खण्डित हो जाय। हमें अपने समाज में जो कुछ भी शिथिलता, अकर्मण्यता और ऊँचे आदर्श के प्रति गतिहीनता दिखलाई पड़ती है वह विकास के क्रम की एक कड़ी मात्र है जो चिर-काल तक नहीं रह सकती। प्रश्न जो ऐसी परिस्थिति में उठता है वह है—कब तक यह अवस्था चलेगी? कब तक इसे रहने दिया जावे अथवा सहन किया जावे? जैसे ही उसके उत्तर की बात सोची जाती है, प्रश्न समस्या का रूप धारण कर लेता है। प्रगति की बात सोचते ही समस्या के सुलभाव को तत्काल गति देने के उपायों पर ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है।

अनेक लोग प्रातः और सन्ध्या संकल्प करते हैं कि हम सौ वर्ष जियें, सौ शरद ऋतुयें देखें, सौ वर्ष तक बोलते और कार्य करते रहें इत्यादि। परन्तु कैसे? दूसरों का शोषण करके? मनमाने भोग-विलासों के संसर्ग में रहते हुये? जब तक जीवन में संयम और रहन सहन में अनुशासन न बर्ता जाय यह सम्भव नहीं। वैसी चाह का बना रहना नैसर्गिक है, परन्तु इस कामना के मन में बसे रहने मात्र से होता ही क्या है?

प्राचीन काल में संयम और अनुशासन की परिपाटी का विवेक के साथ अनुशीलन किया जाता था। उद्देश्य में अस्पष्टता नहीं थी, मन में भ्रम को बसने नहीं दिया जाता था। कार्य-विधि में दृढ़ संकल्प से काम लिया जाता था। इसीलिये जीवन की विविध भांक्तियों में ओज की सद्यता और तरुणता दिखलाई पड़ती है। आर्थिक कठिनाइयाँ प्रत्येक युग में मानव को संतप्त करने के लिये खड़ी हो हो जाती हैं और वह उनका सामना करता है। आर्थिक कठिनाइयों के अतिरिक्त मानसिक और आध्यात्मिक उलझनें भी मनुष्य को दुर्बल बनाने में कसर नहीं लगातीं। आर्थिक क्लेशों के साथ जब ये भी लग जाती हैं तब तो कष्टों की दुस्सहता बहुत बढ़ जाती है। इन सबके होते हुये मनुष्य कैसे कामना करे कि मैं बल पराक्रम से संयुक्त रहकर सौ सुहावनी शरदों को देखता रहूँ ? अपनी कठिनाई स्पष्ट समझ में आ जावे और मति-विभ्रम न हो तो दृढ़ संकल्प के आश्रय से मनुष्य अवश्य आगे बढ़ सकता है। प्रकृति की क्रियाओं में आतंक और सलोनापन दोनों हैं। मानव उस आतंक से भयभीत न होकर प्रकृति के सलोनेपन में से अपने मन के लिये शक्ति और पुरुषार्थ को खींचे तो वह निस्सन्देह अपनी उस स्वच्छ कामना को सफल कर सकता है जो उस प्रार्थना में व्याप्त है— मैं सौ सौ शरद ऋतुओं को अदीन होकर देखता रहूँ।

समाज में जब विभ्रम और भय का घुन लग जाता है, आस्था बिगल हो जाती है, संकल्प चञ्चल हो उठता है, पर-शोषण बढ़ जाता है, अहंकार, दम्भ और अनृत के हठ की बाढ़ आ जाती है तब विकास-क्रम की कड़ी गलति दिखलाई पड़ने लगती है।

फिर भी मानव रटता रहता है—मैं सौ बरस तक जीवित रहूँ ! सो कैसे ? विकास-क्रम का नियम केवल रट को कभी सफल नहीं होने देगा। इस सङ्कल्प को और भी कई तत्वों की सङ्गति चाहिये। उनमें बुद्धि और विवेक का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।

जिस काल में इस शिव-सङ्कल्प को बुद्धि और विवेक का सहयोग प्राप्त रहा होगा उस काल में भी मानव के सामने कठिनाइयों और बाधाओं के पहाड़ आ खड़े होते होंगे और वह उनका सफलता के साथ प्रतिरोध करता होगा। प्राचीन के इतिहास और साहित्य में इस तथ्य के उदाहरण सुने थे। सोचा कुछ अधिक हस्तगत करने का प्रयत्न करें।

एक दिन इसी उषेड़बुन में था कि अपनी छोटी सी बालिका को एक पुस्तक में पढ़ते हुये सुना—अयोध्या के एक राजा थे। बहुत अकाल पड़े। प्रजा दुखी हो गई। राजा को किसी ऋषि ने बतलाया कि तुम्हारे राज्य में एक शूद्र तपस्या कर रहा है इसलिये अकाल पर अकाल पड़ रहे हैं, उसे मार दो तो अकाल का युग समाप्त हो जावेगा। राजा ने कहा, 'मेरा राज्य छोड़ने को तैयार हूँ, परन्तु यह कुकर्म करने को तैयार नहीं।' इस पर ऋषि ने कहा कि मैं तो तुम्हारी परीक्षा ले रहा था।

इस कहानी ने अनेक सुभाव दिये और मैं उसके मूल स्रोत की ओर आकृष्ट हुआ।

डाक्टर नारायणचन्द्र वन्द्योपाध्याय की पुस्तक "Economic life and progress in Ancient India" पृष्ठ ३२५ पर रोमपाद नाम के अयोध्या नरेश के राज्यकाल में भयानक अकाल पड़ने का वृत्तान्त मिला। अकाल का विस्तृत ब्योरा वाल्मीकि रामायण में है। रोमपाद को मैंने उपन्यास में रोमक कर दिया है, क्योंकि अयोध्या नरेशों की एक वंशावलि में रोमपाद नाम नहीं आया है, रोमक आया है और मुझे यही नाम अच्छा लगा। रोमक के पुत्र का नाम कुछ और था, परन्तु मैंने उसके सुन्दर और कल्याणकारी पराक्रम के कारण उसका नाम बदल दिया है। उसी के नाम पर यह उपन्यास है।

उत्तरवैदिक काल में दासता का एक रूप समाज में प्रचलित था। द्विज तक दास हो जाते थे। ऋण न चुका पाने पर स्वतन्त्र-जन को दास हो जाना पड़ता था। दासोद्धार के उपाय भी थे (डाक्टर वन्द्योपाध्याय की वही पुस्तक पृ० २६५-२६८)। उत्तरवैदिक काल में

परि (फिनीशियन) आर्यावर्त्त में व्यापार करते थे । उनके बड़े-बड़े पोत चलते थे । थे व्याजभोजी । सम्भव है आज का 'बनिया' शब्द वणिक् का अपभ्रंश न होकर परि का ही रूपान्तर हो । दास बनाने वाले व्याजभोजियों के प्रति आर्यों की घृणा स्वाभाविक थी । आर्य वणिक् कृषि और वाणिज्य करते थे, परियों का प्रधान व्यवसाय व्यापार और लेन-देन था ।

तत्कालीन समाज का स्थिति-चित्रण इस उपन्यास में करने की चेष्टा की गई है । राजा ने अखण्ड और अनियन्त्रित सत्ताधारी का रूप प्राप्त नहीं कर पाया था । गौतम धर्म सूत्र के एकादश अध्याय में— 'राजा सर्वस्योष्टो ब्राह्मण वर्जम्'—'ब्राह्मण को छोड़ राजा सब का अधिपति है' पीछे की बात है । उत्तरवैदिक काल में राजा को चुनने और निकाल देने तथा फिर चुन लेने का अधिकार समिति को था— 'ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह'...तथा...नाऽस्मै कल्पते ( Dr. Radha Kumud Mukurji's Hindu civilisation P. 99 और P. 106—अथर्ववेद ३ : ३ : ५; ६ : ८८; ५ : १९ ) समिति का सभापति ईशान कहलाता था । चुनाव की प्रथा वही थी जो यहां दी गई है । राजा के पदच्युत किये जाने या एक नियत समय के लिये निकाल देने की प्रथा भी थी जिसका वर्णन उपन्यास में आया है । देश के प्रति जनता में गाढ़ा प्रेम था । उसकी प्रतिध्वनि मनुस्मृति और श्री मद्भगवत् में 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की सूक्ति में आई है । ऋग्वेद में स्वराज्य का शब्द स्पष्ट रूप से आया है—यतेमहि स्वराज्ये ( ५ : ६६ : ६ ) हम स्वराज्य के लिये प्रयत्नशील रहें । यह वह युग है जब साधारण आर्यजन का मन घोर विपत्तियों और कठिनाइयों के सामने न तो झुकता था और न थकता था—तरुण, तेजस्वी और सदा ओज से भरा हुआ । वे एक दूसरे से कहते थे—उद्बुध्यध्वं समनसः सरवायः ( ऋ० १० : १०१ : १ )—मित्रो, एक मन होकर चलो । उनके पुरुषार्थपूर्ण सिद्धान्त ये थे—

कृत में दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ( अथर्व—७ : ५२ : ८ )  
यदि पुरुषार्थ मेरे दायें हाथ में है तो विजय बायें हाथ में बनी बनाई ।  
परन्तु उनका पुरुषार्थ धर्म—संलग्न रहता था । अकेला, कोरा, पुरुषार्थ  
नहीं, प्रत्युत ऋतु—धर्म से संचालित पुरुषार्थ । यही आगे चलकर  
महाभारत में यतोधर्मस्ततो जयः हुआ ।

अरिष्टास्याम तन्वा सुवीराः ( अथर्व—५ : ३ : ) हम शरीर से  
निरोग रहें और उदात्त वीर बनें । अदीनास्याम शरदः शतम्—अदीन  
होकर सौ बरस जिये ( यजुर्वेद—३६ : २४ ) कुर्वन्ने वेह कर्माणि जिजीवि-  
षेच्छतं समाः ( यजु०—४० : २ ) संसार में मनुष्य कर्म करता हुआ सौ  
वर्ष जीने की इच्छा करे । परन्तु उस समय का जन घमण्डी नहीं था ।  
वह प्रार्थना करता था—उतदेव अवहित देवा उन्नयथा पुनः ( ऋग्वेद  
१० : १३७ : १ ) देव, मुझ गिरे हुये को पुनः ऊपर उठाओ । और,  
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ( यजु—३४ : १ ) मेरा मन कल्याणकारी  
संकल्प वाला हो । निर्भय बने रहने के लिये ऋग्वेद की शौनक संहिता  
में तो बहुत ही सुन्दर और सीधे सूक्त हैं ( शौनक संहिता २ : १५ )  
इनका सार धौम्य ऋषि के मुँह से कहलवाया गया  
है । धौम्य ऋषि के लिए प्रसिद्ध है कि वे अकल्याणकारी परम्पराओं  
का उल्लङ्घन कर डालते थे । ऋषि के ब्रह्मचर्याश्रम में शूद्र राजा की  
अनुमति से प्रवेश पा सकता था जैसा कि उपन्यास के कपिञ्जल ने कहा  
है । परन्तु जिस काल में ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण के कहने पर राजा को चलना  
पड़ता था उस काल के लिये यह बात उपयुक्त नहीं जान पड़ती है ।  
मैंने धौम्य का उपयोग इसको चरितार्थ करने के लिये किया है ।  
महाभारत के शान्ति पर्व ( ६३ वे अध्याय ) में शूद्र के आश्रम प्रवेश के  
सम्बन्ध में राजा को अनुमति का जो आदेश है वह अथर्व की इस सूक्ति  
के पीछे की सामाजिक और राजनैतिक अवस्था का द्योतक है—आरोहण  
मक्रमणंजीवतो जीवतोऽयनम् ( अथर्व : ५ : ३० : ७ )—ऊपर उठना और  
आगे बढ़ना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है । उस समय की टकसाल का सर्व



स्वीकृत और सर्वमान्य सिद्धा पुरुषार्थ था— इच्छन्ति देवा सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ( ऋग्वेद ८ : २ : १८ ) देवगण पुरुषार्थी को चाहते हैं, सोये हुये को नहीं । शतहस्त समाहर सहस्र संकिर ( अथर्व ३ : २४ : ५ )—सैकड़ों हाथों से इकट्ठा करो और सहस्रों से बांट दो । जो श्रम करते थे उन्हीं को समिति में जाने और बोलने का अधिकार था—न नः स समिति गच्छेद् यश्च नो निर्वपेत्कृषिम ( महाभारत उद्योग पर्व ३६--३१ )—हमारी समिति में वह न आवे जो स्वयं खेती नहीं करता । मनुस्मृति ( अध्याय ४ श्लोक ३०, १६२, १६७, १६८ ) में पाखण्डी द्विजों की विकट विडम्बना की गई है । यहां तक कहा गया है कि उन से कोई बात न करे, उन्हें कोई पानी पीने तक को न दे ! इस प्रकरण को मैंने भारतरत्न डाक्टर भगवानदास की पुस्तिका 'शास्त्रवाद बनाम बुद्धिवाद' से लिया है जिसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ ।

उस समय के प्रबुद्धजन चाहते थे कि हम सबको मित्र की आंख से देखें ( यजु-३६ : १८ ) किसी की सम्पत्ति का लालच न करें ( मातृघः कस्यस्विधनम् - यजुर्वेद ४० : १ ) ऋतस्य पन्था न तरन्ति दुष्कृतः ( ऋ० ६ : ७३ : ६ ) दुष्कर्मी मनुष्य सत्यमार्ग को पार नहीं कर सकते । न ऋते श्रान्तस्य मरुयाय देवाः ( ऋ०—४ : ३३ : ११ ) देवगण तपस्वी को छोड़कर दूसरे के मित्र नहीं हो सकते । इसका आश्रय कपिञ्जल की तपस्या के सम्बन्ध में लिया गया है । भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वप्नम् ( यजु०—३० १६ )—सजगता वैभव देती है, सोना और आलस्य में पड़े रहना दरिद्रता को बुलाता है । विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननाहरम् ( ऋ०—१ : ११४ : १ ) इस गांव के सब लोग स्वस्थ और नीरोग रहें । इत्यादि सूक्तियां पुरुषार्थ और शुभ संकल्पों से पूर्ण हैं । इदं नम ऋषभ्यः पूर्वजेभ्यः पृथिकृद्भ्यः—( ऋ० १० : १४ : १५ ) पूर्वकाल के पूर्वज ऋषियों को नमस्कार है जिन्होंने अज्ञान के अंधेरे वाले जङ्गल को पार करने के लिये नये नये मार्गों का निर्माण किया । विकास की धारा को अभ्युपगमना बनाये रखने के लिये जब तक इन मार्गों का सृजन होता

रहा अज्ञान का अन्धकार उस युग के मानव को भटका न सका । जब कभी वह धारा रुद्ध हुई सत्पुरुषार्थ ने उस धारा को फिर से प्रवाहित किया ।

उस अवरोध को दूर करने की पुनः पुनः आवश्यकता पड़ती है । ऊपर जिन सिद्धांतों का संक्षेप में वर्णन किया गया है वे सार्वभौम और सर्वकालीन हैं और सदा सर्वदा उपयोगी हैं । जिस युग में ये सिद्धांत सामाजिक जीवन के प्राण थे उस युग की स्फूर्ति, शक्ति, तरुणता और जीवन का क्या कहना है । प्रबुद्ध चेतना प्रबल व्यक्तित्व का सिर ऊँचा किये रहती थी । केवल शक्ति को पाशविक समझा जाता था । शक्ति और शील का समन्वय था । ऐसे युग के मानव जिस प्राञ्जल उल्लास और सच्ची लगन के साथ उषा के गीत गाते होंगे उसकी अब तो कल्पना ही की जा सकती है ( ऋग्वेद—उषो येते प्रयायेषु युञ्जते मनोदानाय सूरयः । अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमोनाम गृणातिनृणाम इत्यादि प्रथम मण्डल के ४८ : ४; ४९ : २—४; ९२ : १, ४, ६; ११३ : ४, ८, ११, १६; और सातवे मण्डल के ८० : २ मन्त्र ) । ये इतने सुन्दर हैं कि उस युग से आज तक के उषा गीतों में कोई उनकी सीधी सच्ची सुन्दर और चमत्कारपूर्ण भावना की बराबरी नहीं कर सका । चेष्टा की है कि उस काल के वातावरण में इनको प्रस्तुत किया जावे । आजकल भी भारत के प्रत्येक भाग में लुनाई मिड़ाई (ये दोनों शब्द वैदिक संस्कृत से निकले हैं) के समय किसान गीत गाते हैं, परन्तु वह सीधी जीवट और आश्वस्त भावना आजकल के इन गीतों में नहीं पाई जाती है । इसका कारण है: वर्तमान काल का किसान दीर्घकाल से पिसता चला आ रहा है ।

प्रकृति से तो वह अनादि काल से ही लोहा लेता चला आया था, फिर अपने सहवासी मनुष्यों की भी मार खानी पड़ी । इसलिये वर्तमान के लोकगीतों में वह दम नहीं मिलती जो वैदिक काल के गीतों में पाई जाती है ।

## भुवन विक्रम

उस समय के समाज की आर्थिक दशा क्या रही होगी ? प्राचीन साहित्य से इसका पता लगता है। जनसंख्या कम थी, परन्तु उपलब्ध उर्वरा भूमि भी जनसंख्या के अनुपात में बहुत नहीं थी। विशाल वन, खेती और जनता का संहार करने वाले वन्य पशु और कीट भी बहुत थे। जो कोई जंगल काटकर खेती करे भूमि उसी की। केवल 'बलि' या कर देना पड़ता था। उत्तरवैदिक काल में राजा का अपने पूरे रूप में विकास हो चुका था यद्यपि राजसत्ता अनियन्त्रित नहीं थी। सत्ता पर विद्वान् ब्राह्मणों, समिति और सभा का अंकुश रहता था। सभा स्थानिक और छोटी होती थी। समिति जनपद के प्रतिनिधियों की सामूहिक शक्ति का संग्रह थी। तो भी राजा को त्रपु (टीन), लोहा, ताम्बा, पत्थर इत्यादि की खानों का जो कर मिलता था वह उसका निजी कोष हो चला था। राजा खेती भी करवाता था। एक निवर्तन भूमि लगभग बीस हाथ लम्बी और दस हाथ चौड़ी होती थी। जैसे जैसे उर्वरा भूमि का विस्तार बढ़ता गया राजा के निवर्तनों की संख्या बढ़ती चली गई। इन निवर्तनों में निराश्रित श्रमिकों से खेती करवाई जाती थी। किसी न किसी प्रकार—कभी साधारण गति से और कभी दण्डस्वरूप—राजा के निवर्तन बढ़ते चले गये। अकालों पर अकाल जब जब पड़े कृषकों ने भूमि छोड़ी और राजा ने ले ली। इस प्रकार राजा एक बड़ा भूमि-स्वामी हो गया और उसकी सत्ता का वृत्त भी प्रशस्त हो गया। विष्टि, कोर्वी (बेगार) ले जाने लगी और श्रमिक की स्वतन्त्रता संकुचित होने लगी। व्याज की दर बढ़ी, इतनी कि साधारण जन के लिये असह्य हो गई। बहुत प्रयत्न के उपरान्त स्मृतिकारों ने उसकी सीमा बाँध पाई—दुग्धने से अधिक कोई न ले सके। (रा० कु० मुकुर्जी की पुस्तक *Hindu Civilisation* पृ० २६६ जातक १, १४६—३, २७० जा० १, ३३६)

सूत, रथकार, कर्मार (लुहार), तन्तुवाय (बुनने वाले), नर्तक, गायक, तुल्लावाय (दर्जी) इत्यादि सब श्रेणियों या संघों में विभक्त और संगठित थे। किसी किसी का कहना है कि तुल्लावाय उस काल में नहीं थे,

क्योंकि सुई और सिलाई से तत्कालीन आर्यों का परिचय न था। मुझे यह धारणा मान्य नहीं है। कुर्तक (कुर्ता), जङ्घ (जाँघिया) इत्यादि पहिने जाते थे। तेज छुरे बनते थे और शूचिकायें (सुइयाँ) भी। दशार्ण (आजकल का बुन्देलखण्ड) की तलवार तो उत्तरवैदिक काल में ही विख्यात हो चुकी थी।

श्रमिकों को एक परा से लेकर छः परा नित्य तक 'वेतन'—पारश्रमिक—दिया जाता था। स्त्रियाँ नृत्य करती थीं, परन्तु इनकी सिखलाने वाली स्त्रियाँ ही होती थीं और वे प्रायः पुरुषों के समक्ष नहीं नाचती थीं। नादी (बांसुरी), मञ्जीर, भांभ, मृदङ्ग, वीणा इत्यादि वाद्य थे और पूरे स्वरों में गायन होता था। नर्तक, गायक और अभिनेताओं को सम्मान प्राप्त था। वाल्मीकि के अयोध्याकाण्ड में इन्हें राष्ट्र का चमत्कार बढ़ाने वाला कहा गया है। नाटकशालाओं और रङ्गशालाओं को समाज-प्रेक्षणी कहते थे। जुआ खेलने का दोष भी था, परन्तु इसे निन्द्य और तिरस्कार के योग्य समझा जाता था। साठ वर्ष की आयु का पुरुष अपने को जवान कहता था, वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड में बतलाया गया है। वाल्मीकि रामायण का सङ्कलन चाहे जब हुआ हो उसकी कथा और धारणा सङ्कलन के बहुत पहले की है।

यज्ञ होते थे, परन्तु उनकी अति के वर्जन का भी यहां वहां संकेत पाया जाता है। महाभारत में 'अग्नि के कुपच' का वर्णन आया है।

सड़कों की धूल दबाने के लिये पानी का छिड़काव किया जाता था और रात में प्रकाश के लिये दीपस्तम्भों की व्यवस्था भी थी।

पूग (क्लब) और भोजनालय थे। सेव, अनार, केले, नारङ्गी इत्यादि फल सुलभ थे।

आदि से अन्त तक जीवन के लिये सजीवता और सजावट की सीधी-सादी और ताज़ी सामग्री थी। बनावट और तड़क-भड़क कम थी। मानव अपने जीवन के उल्लासमय निकट सम्पर्क में संयम और अनुशासन के निर्देशन के कारण पूरे आनन्द को पात्र होने की समर्थता रखता था।

द्वेष, मत्सर, हिंसा और परिग्रह का तिरस्कार किया जाता था। इमलिये विश्वास के साथ सच्चे सुख का संग्रह करने में उत्तर वैदिक काल के जन को किसी बड़ी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता था।

बिना संयम और अनुशासन के जीवन की गाड़ी आगे नहीं बढ़ाई जा सकती। प्राचीन साहित्य में स्थान स्थान पर इसका विवेचन और पोषण किया गया है। वर्तमान समाज की अनुशासन हीनता से जब प्राचीन काल के समाज की संयम शीलता की तुलना करते हैं तब आश्चर्य होता है कि क्या से क्या हो गया है ! वेद नामक शिष्य के कन्धों पर धौम्य ऋषि ने बैलों का जुआं रखवाया—सम्भवतः वेद का अहंकार या कोई ऐसा दोष दमित करने के लिये। महाभारत में यह कथा दी गई है। गुरु से बढ़कर, कदाचित्, वह शिष्य था जिसने इतने कड़े अनुशासन को चुपचाप सह लिया ! परन्तु उस काल में बड़े पुरुषों के बनाने की विधि थी, केवल टेढ़े तिरछे यन्त्रों के निर्माण की नहीं !!

उस काल की एक भांकी के प्रस्तुत करने का प्रयत्न इस पुस्तक में किया गया है। इस विषय के एक अङ्ग पर मैंने 'ललित विक्रम' नाम का नाटक भी लिखा है। परन्तु 'भुवन विक्रम' (उपन्यास) में उससे कहीं अधिक चरित्र और घटनायें इत्यादि हैं। उस काल के सलोनेपन, जीवट, संयम और सद्यता को हम आज के जीवन में उतार सकें तो क्या बात है।

**वृन्दावनलाल वर्मा**

# भुवनविक्रम

कई सहस्र वर्ष बीत गये होंगे—

[ १ ]

शरद ऋतु के भोर का सूर्य क्षितिज से ऊपर चढ़ आया था। थोड़े से पक्षी इधर-उधर उड़ते हुये चहक रहे थे या भोजन के लिये तड़प रहे थे, कौन जाने।

अयोध्या नगरी के बाहर ऊँचे नीचे और समतल मैदान की भुलसी हुई सी छोटी-छोटी भाड़ियों में और कोई चहल-पहल नहीं थी। भाड़ियों के सिरों को ढोरों ने नोच खाया था। शाखों में उमगती हुई घुँड़ियाँ फूट रही थीं, परन्तु उनमें होनहार के लक्षण नहीं थे। इधर-उधर सूखी घास के चकत्तों के नीचे से छोटी-छोटी दूबा निकल पड़ने के लिये आतुर नहीं मालूम होती थी, दूबा की सीकें ऊपर मरी-मरी-सी थीं, नीचे के प्राण अब तब कर रहे थे। पृथ्वी पर जहां तहां भूरी कर्कश धूल थी, एक घूमते-फिरते चक्करदार मार्ग पर कहीं कहीं ढेर की ढेर। चिड़ियाँ जो चहक रही थीं, सरयू नदी की ओर उसकी छोटी-सी पतली धार और उथले छिछले ढाबरों की छोटी-छोटी मछलियों और केंकड़ों के पकड़ने की धुन में उड़ी चली जा रही थीं। आपस में लड़ भी रही थीं।

लगातार पाँच वर्षों से अकाल पर अकाल पड़ रहा था। पानी नहीं बरसा और थोड़ा सा बरसा भी तो जैसे तबे पर बूँद।

भोर की मन्द समीर अब भी वैसी ही गति से चल रही थी। रथ्या\* की दो प्रतिकूल दिशाओं में धूल के दो बवण्डर उठे—आगे की ओर घने और पीछे की ओर पतले—जैसे दो पुच्छल तारे हों। आँधी नहीं चल रही थी, फिर भी वे पुञ्ज उठे और अपनी पूँछ की धूल को मुर्झाई हुई भाड़ी की अधसूखी डालों पर छोड़ने बिठलाने लगे। आगे के पुञ्ज भाड़ियों के सिरो पर मंडला-मंडला जा रहे थे। सूर्य की किरणों उनके रूखे रंग को थोड़ी सी गहराई दे रही थीं। एक सिरे के पुञ्ज से एक रथ और दूसरे सिरे के पुञ्ज से दूसरा रथ निकला। किरणों ने इन दोनों को दमका दिया। दोनों में भिन्न-भिन्न रंग के घोड़े जुते हुये थे। मार्ग पर एक ऐसी मोड़ और भाड़ी थी कि एक रथ वाला दूसरे को नहीं देख सकता था।

मोड़ पर मार्ग इतना सकरा और भाड़ी बहुत बीनी होते हुये भी इतनी घनी थी कि जब थोड़ी देर में दोनों रथ एक दूसरे के सामने आ गये तब एक दूसरे को निकासन दे सके। रुक सकते थे। रुके भी नहीं। घोड़े से घोड़े जा टकराये। एक रथ के घोड़ों का फेन दूसरे रथ के घोड़ों के फेन से उलझ गया।

एक रथ पर एक युवती थी और दूसरे पर एक युवक। युवक की आयु पन्द्रह वर्ष के लगभग होगी। शरीर सुडौल और चेहरे का बनाव आकर्षक। देह से लगता था जैसे आयु कुछ अधिक हो, पर चेहरे से अधकचरापन झलकता था। युवती शरीर और चेहरे मोहरे—दोनों—से वय में बढ़ी चढ़ी दिखती थी, होगी वह भी इसी आयु की। दोनों की भोहें सिकुड़ीं, पर युवती की बड़ी आँखों पर सिकुड़न गहरी, युवक की बड़ी बरोनियों के ऊपर पतली सी भोहों के बीच में कम। लगता था कि युवती सामने वाले रथ पर अपने घोड़ों को चढ़ाये देती है। युवक

ने अपने घोड़ों की रास खींची, घोड़े फुफकारते हुये ज़रा-सा पीछे हटे । युवती ने भी अपने घोड़ों को रोका । युवक उतर पड़ा ।

बोला,—‘एक तरफ़ करलो ! हटो !!’ स्वर तेज़ था, परन्तु उसमें खरखराहट नहीं थी—अभी गले के दाने अच्छी तरह नहीं उभरे थे ।

कोड़ा हाथ में लिये युवती भी उतर पड़ी ।

‘कहाँ करलें ? जगह ही नहीं ।’ युवती का स्वर पैना था जैसे मोर का जो बरसात के बादलों को देखकर नहीं, दूसरी मोर को लड़ने के लिये चिन्ती देती हुई चीखती है ।

क्रोध के मारे युवक हाँफने लगा । उसकी हाँफ में से निकला—‘जानती हो मैं कौन हूँ ?—अयोध्या का राजकुमार भुवनविक्रम...’ अपना नाम लेते ही युवक का चेहरा फूल उठा, काली पुतलियों वाली बड़ी आँखें फैल गई और भोहों की सिकुड़न कम हो गई ।

‘और मैं हूँ श्रीमान नील फणिश की पुत्री...’ जिनका नाम यहाँ और समुद्रों के पार भी प्रसिद्ध है !’ लड़की ज़रा भी नहीं सकुची दबकी । उसकी भूरी आँखें लाल हो गई और भोहें वैसी ही तनी हुई, बीच की सिकुड़न उतनी ही गहरी । नाक का एक नथना ज़रा ऊपर खिच गया ।

उसने—जिसने अपना नाम भुवनविक्रम बतलाया था—युवती को नीचे से ऊपर तक देखा । आर्य नारी की वेशभूषा से भिन्न । और न वह शील-संकोच । भुवनविक्रम की मुट्ठी जिसमे वह कोड़ा लिये था ढीली पड़ गई । उसने दाँत भींचते हुये अपने घोड़ों को पीछे हटाया ।

संदर्भ को ध्यान में टिकाकर उसने कहा,—‘हाँ हाँ और भी बहुत कुछ सुना है । तुम्हारा नाम हिमानी है । हिमानी स्त्री के लिये मार्ग छोड़ता हूँ, नहीं तो...’ अन्तिम शब्द उसके होठों में से कुछ धीरे निकले, पर हिमानी के कान में पड़ गये । सुन्दर गोरे चेहरे के लाल पतले होठों को फैलाती हुई हिमानी अपने रथ पर चढ़ गई ।



भुवन ने नहीं सुन पाया—‘नहीं तो · नहीं तो···! क्या कर लेता नहीं तो···?’ क्योंकि वह अपने घोड़ों को खींचखाच कर भाड़ी पर चढ़ रहा था।

जब मार्ग निर्बाध हो गया हिमानी ने अपना रथ हांका। उसके चेहरे पर विजय का अहङ्कार कुछ क्षण ही खेल पाया था कि उसे एक विचार ने कोंचा। जब उसके बराबर से थोड़ा सा आगे निकल गई रथ को रोक कर बोली,—‘कहाँ जा रहे थे राजकुमार?’ स्वर में मिठास का प्रयास था, परन्तु स्वभाव साथ नहीं दे पाया।

‘कहीं भी···’ भुवन का अप्रासंगिक उत्तर था। फिर तुरन्त उसके दर्प ने सम्भाला,—‘लक्ष्यवेध के लिये···’ वह अधिक नहीं कह सका। जैसे किसी ने गला दबा दिया हो।

‘कभी मैं भी आकर देखूंगी’, मुस्कराने की चेष्टा करती हुई हिमानी चली गई। भुवन ने वह मुस्कान नहीं देख पाई, और न शब्द सुन पाये।

भाड़ी में से रथ को फिर मार्ग पर ले आया। घोड़ों की आँखें जल रही थीं और मुँह से फेन टपक रहा था। भुवन के भड़भड़ाते हुये भाव ‘हुं!’ शब्द के छोटे से कलेवर में बैठकर बह गये। भुवन ने इधर उधर आँखें पसारीं कि कोई और तो नहीं देख रहा है। घोड़े जो देख रहे थे कह ही क्या सकते थे! सोच बिचार में डूबता उतराता सा वह दूसरी दिशा में अपना रथ हाँक ले गया।

[ २ ]

सरयू नदी की धार पतली होने पर भी गहरी थी । अयोध्या-जनपद और उसके पड़ोसी जनपदों में पानी नहीं बरसा था, परन्तु हिमालय और उसकी तराई में फिर भी थोड़ा बहुत बरसता रहा था । सरयू में नावें आती जाती थीं जिन पर बड़े व्यापारियों का माल लदता-उतरता था । यहाँ से कपड़ा, मोरों के पंखे, मिर्च, मसाले, सुगन्ध, बढ़िया लोहे के हथियार, जब फसल अच्छी हो तब अन्न, तेल, भँजे हुये रस्से इत्यादि बाहर जाते थे—बाबुल (बावेह) फणिश (फिनीशिया) मिस्र, अरब इत्यादि देशों को; और वहाँ से बढ़िया कम्बल, सोना चाँदी, मोती मूँगे इत्यादि यहाँ आते थे । बैलगाड़ियों, बैलों, गधों और खच्चरों के टाँड़ों द्वारा भीतरी व्यवसाय चलता था । उत्तर भारत में अयोध्या व्यापार का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था । अयोध्या में आर्यवणिक और विदेशी पणि (फणिश) इस व्यापार को चलाते थे । इन लोगों के हाथ में जहाँ टीन और लोहे की खाने थीं, इन धातुओं की खुदाई और बनाई-ढलाई का भी काम था । राजा को इनके करों से प्रचुर आय हो जाती थी । अयोध्या के ऐसे व्यापारियों में उस समय सबसे बड़ा, धनाढ्य और प्रभावशाली नील । पणि था—हिमानी का पिता । अकालों के कारण इसका महत्व और बढ़ गया था ।

नील कन्जूस था, पर कंड़े वाला भी । भीतर-भीतर क्रूर और ऊपर-ऊपर बड़ा शिष्ट । हँसने मुस्कराने वाला भी । लड़की को प्यार करता था, पर उससे भी बढ़कर अपने भविष्य को । हिमानी की माँ नहीं थी तो क्या, नील का वर्तमान तो उसके साथ था—और दूर के भविष्य की आशा भी । हिमानी ने वर्तमान में अपने को ढाल लिया था और भविष्य को वर्तमान की चिन्ता देने के स्वभाव वाली होती जा रही थी ।

नील के पास नौकरों की भीड़ थी—इनमें से बहुत से दास ।

केवल आर्य वातावरण में दास प्रथा का पनपना कठिन था । वर्णाश्रम की प्रणाली में शूद्र तो थे, पर दास नहीं थे । अध्यापन और अध्ययन

यज्ञ होम, याजी और यजमान, क्षत्रिय और आयुधजीवी, वैश्य वणिक और पणि की अपेक्षा केवल श्रम और श्रमिक—शूद्र—का महत्व तो कम हो चला था, परन्तु उससे घृणा नहीं की जाती थी जैसे जैसे वणिक और पणि का ऋण-जाल फैला और रिनियाँ ने अपना रिन न चुका पाया कि उसे चुकावरे में अपने ढोर, और, ढोर न हुये तो अपने तन को साहूकार के हवाले करना पड़ा। वह साहूकार का दास हो गया। ब्राह्मण तक इस प्रकार दास हो सकता था। दास और शूद्र की इन दिनों कोई साँचे की ढली, कड़ी कसी-गसी सी जाति नहीं थी।

नील के पास रिन-चुकावरे में आये ऐसे बहुत से दास थे। इनमें से एक कपिञ्जल था। लगभग तीस वर्ष की आयु सुडौल देह, गेहुँआ रङ्ग। कपिञ्जल पहले कृषक था—अपने घर की खेती करने वाला स्वतन्त्र स्वाभिमानी किसान। पहले ही अकाल में उसकी कई निवर्तन भूमि—(एक निवर्तन बीस हाथ लम्बी और दस हाथ चौड़ी) साहूकार के पास चली गई थी। उसे शूद्र हो जाना पड़ा—दूसरे किसान का श्रमजीवी नौकर। एक दो पण (एक दो आना) प्रतिदिन मजदूरी। जब पेट न भरा तो नील से कर्जा लेना पड़ा। जितना बड़ा साहूकार हो तो उतना ही आँख मीचकर लम्बा कर्जा देने के लिये तैयार—रिनियाँ ने न दे पाया तो अन्त में दास तो होकर ही रहेगा। कपिञ्जल को ऋण पर ऋण लेना पड़ा। जब चुका न सका तब उसे ऋण-भार से दबना पड़ा और इस प्रकार वह नील का दास हो गया। दास को केवल पेट के लिये मिलता था, इतना नहीं कि कुछ बचाकर भविष्य के किसी निकट वाले क्षण में उद्धार हो सके।

उस दिन दोपहरी में कपिञ्जल अपने सहवर्गियों के साथ सरयू घाट पर नील की लदी नाव से माल के गट्टे उतार रहा था। उनके पसीने से गट्टे तो भीग ही रहे थे घाट की धूल भी कंकड़ बन रही थी। हाँफों से दोपहरी की गरम हवा भी गरम हो हो जा रही थी। जब कपिञ्जल और उसके साथियों ने सारा माल उतार लिया सुस्ताने के लिये एक तटवर्ती पेड़ की छाया में आ बैठे। बातें करने लगे।

‘जितना पसीना बहाते हैं उतने की तौल का भी ताम्बा नहीं मिलता । एक जून पेट भर लेते हैं तो दूसरी जून अध पेटे...’ एक ने कहा ।

‘या बिलकुल कोरे जा लेटे धरती पर करवटें रगड़ने के लिये ..’ दूसरा बोला ।

तीसरे ने भाग्य की बात उठाई,—‘किसी-किसी को तो इतना भी नहीं मिल पाता । पाँच बरसों के अकाल ने पीठ तोड़ डाली है ।’

‘आगे न जाने क्या होने वाला है ।’

‘भगवान की इच्छा ।’

‘राजा के पास सब मिलकर चलो । आखिर राजा है काहे के लिये ?’ कपिञ्जल ने सुभाया,—‘राजा से कहें कि मजूरी की दर बढ़वा दीजिये, इतने से काम नहीं चलता ।’

दूसरे ने टोका,—‘राजा हमारी तुम्हारी सुनेगा या धनसम्पदा वालों की, जिन्होंने अपनी मुट्ठी में उसे कस रक्खा है ?’

‘और ऐसे ब्राह्मणों ने जो इधर धन-सम्पदा वालों की जय बोलते हैं, उधर राजा की नकेल तानते हैं ?’ एक और ने जोड़ा ।

कपिञ्जल ने समाधान किया, ‘ऐसे ब्राह्मण भी तो हैं जो धनसम्पदा को घास के तिनकों के समान समझते हैं और राजा को सही रास्ता सुभाने से नहीं चूकते ।’

‘ऐसे कम हैं,’ कई एक साथ बोले ।

उसी समय उनके कान में रथ के आने की आहट पड़ी और घोड़ों की टापों की । मुँह फेरा तो हिमानी दिखलाई पड़ी । रथ पर से उतरी और कोड़ा हाथ में लिये सीधी इन लोगों की तरफ आई ।

दूर से जान पड़ा जैसे मुस्करा रही हो । मुस्करा तो रही थी । सोचा होगा कि दासों के साथ प्रभुता भरी मृदुलता से बात करूँगी,

परन्तु ज्यों-ज्यों निकट आई मुस्कान गालों के कम्पन की रेखाओं में विलीन होती चली गई । दास उठ खड़े हुये ।

पास आकर कड़कड़ाई,—‘क्या कर रहे हो ?’

दासों की आँखें सहसा कपिञ्जल की ओर फिरी ।

कपिञ्जल ने उत्तर दिया,—‘काम हो गया । थक गये तो थोड़ा मुस्ताने लगे ।’

‘नीच ? काहिल !! कामचोर कहीं के !!! और काम नहीं है क्या ?’ हिमानी बरस पड़ी ।

अन्य दास बगलें भाँकने लगे । कपिञ्जल ने कहा, ‘बतलाइये और काम क्या है ? रोटी खाने का भी तो समय हो गया है ।’ कपिञ्जल का धीरज नहीं हिला ।

हिमानी की बड़ी आँखों के पूरे विस्तार को क्रोध के रङ्ग ने घेर लिया । शरीर थर्राया, परन्तु कपिञ्जल की धीरता अडिग रही । हिमानी ने उसकी आँखों के द्वार से हृदय के भीतर अपने आतंक को भेजना चाहा, पर वहाँ तो दरवाज़ा बन्द था, आतङ्क लौट पड़ा और जहाँ से चला था, वहीं कहीं जा समाया । हिमानी इधर-उधर देखती हुई बोली, ‘कपिञ्जल, तूने ही इन सबको बिगाड़ रक्खा है ! वैसे ये भले हैं । कल से तू हमारे खेत पर काम करेगा । जा यहाँ से ।’

वे सब रोटी खाने के लिये चले गये । कपिञ्जल अचिन्त धीमी गति से ।

हिमानी ने घोड़ों की पीठ पर कोड़ा चटकाया और किसी निश्चय के साथ घर जा पहुँची ।

[ ३ ]

अयोध्या के बाहर सरयू किनारे से थोड़ा हटकर रुखे सूखे विषम मैदान में कुछ खेत थे जिनमें कुम्हों से काम चलाया जा रहा था। ऐसे एक खेत में कपिञ्जल हल चला रहा था। जुताई हो जाने पर बोहनी करनी थी।

सरयू की ओर इस खेत के पास एक छोटा-सा मैदान था। मैदान के एक सिरे पर हरे पेड़ों की झुरमुट थी जिसके पीछे दूर तक हरे पेड़ लगे चले गये थे। ये पेड़ बतलाते थे कि पार्श्व में कोई बड़ी नदी है, क्योंकि इस वृक्षावलि के उस हाथ पेड़ नहीं थे; बगुलों, सारसों और चकवों के झुण्ड यहाँ वहाँ उड़ रहे थे। वृक्षावलि के दूसरे हाथ की ओर वही मुर्झाई हुई भाड़ी और आँखों के पानी को सुखाने वाली धूल।

उस छोटे से मैदान के सामने लगभग सौ हाथ की दूरी पर एक ऊँचा टीला था। टीले के पीछे फैले हुये वृक्षकुञ्ज। टीले के नीचे दो पतली लाठों के सहारे एक छोटा-सा रङ्गीन वृत्त बँधा टँगा था। यह था लक्ष्यवेध के लिये। टीले के सामने, दूसरी ओर, भुवन तूणीर कन्धे पर कसे और धनुषबाण हाथ में लिये लक्ष्य साध रहा था। पास ही उसका उपाध्याय मेघ वेध की क्रिया बतला रहा था। अब तक भुवन कई तीर चला चुका था, यहाँ तक कि तरकस खाली होने को था, पर निशान पर एक भी न बैठा। मेघ चिढ़ रहा था।

मेघ उतरती अवस्था का दीर्घकाय साँवला पुरुष था। सिर पर जटाजूट, ठोड़ी के नीचे लहराने वाली खिचड़ी रंग दाढ़ी, कमर में सफेद सूती परधनी, गले में रुद्राक्ष, पैरों में खड़ाऊँ, शरीर पर ऊनी उत्तरीय। आकृति से जान पड़ता था कि हठी, क्रोधी और हिंसक प्रकृति का है। आँखें गड़्ढों में ऐसी धँसी हुई कि गड़ाकर देखे तो लगे कि मोम के हृदय को छेद कर पीठ के पार होकर ही दम लेंगी। पर असल में दृष्टि

उसकी निर्बल थी। उस प्रकार देखने का उसका अभ्यास स्वभाव में परिवर्तित हो गया था।

भुवन पीले कौषेय की धोती और सफेद रंग की बंडी पहिने था। पाँव में जूते।

भुवन ने मेघ के चिड़चिड़ाये चेहरे को नहीं देखा। तरसक से अंतिम तीर निकालकर उसने डोरी पर चढ़ाया। उसी समय बगुलों और हंसों की खरी धोरी पातें एक दिशा में और दूसरी में चक्रों की कतई, सरयू तट की ओर चहकती मंडलाती दिखलाई पड़ी। उधर लक्ष्य इधर ये सुन्दर पक्षी ! डोरी थोड़ी सी खिचकर अंगूठे से छूट गई और तीर आधी दूर जाकर गिर गया। उसने नहीं देखा। मुँह से निकला, 'अहाहा ! अहाहा !! हंसों और बगुलों की पातें अर्ध चन्द्राकार और चक्रों की सीधी कितनी सलोनी हैं !!! कैसी लहरा रही हैं; कुछ देर पहले कही ध्यान मग्न बैठे होंगे ये सब विहङ्ग !'

मेघ का ध्यान दूसरी ओर चला गया था। पेड़ों की भुरमुट के पीछे हिमानी रथ पर आई और घोड़ों की रास को एक पेड़ से बाँधने लगी। अब भुवन की बात पर ध्यान गया। चिड़चिड़ाहट बढ़ गई।

'क्या बक रहा है ? लक्ष्य पर बाण पड़ा या नहीं ?' मेघ चिल्लाया।

'नहीं तो। चूक गया; अब की बार देखता हूँ'—भुवन ने तूणीर पर हाथ डाला। उसमें एक भी बाण न था।

'अरे ! इसमें तो एक भी नहीं बचा !' भुवन ने धीरे से विस्मय प्रकट किया और कपिञ्जल की ओर मुँह करके चिल्लाया,—'अरे ओ ! ओरे हलवाहे !! पल भर के लिये यहाँ तो आना।'।

कपिञ्जल ने बैल रोक लिये और इस ओर बढ़ा।

'अब तेरे ध्यान को कौनसा कुतूहल घसीटे लिये जा रहा है ? अभीगा कहीं का।' मेघ ने डाँटा।

भुवन ढीठ हो गया था।

‘वह कुतूहल नहीं है आचार्य, हलवाहा है। बाण उठा लाने के लिये बुलाया है’, और भुवन के मुँह से निकल गया,—‘आपको तो दिखलाई कम पड़ने लगा है।’

‘स्वयं क्यों नहीं उठा लाता दुष्ट?’ मेघ का रोष चढ़ा।

‘पहले कई बार उठा लाया—और, अब तो वह यहां आ ही रहा है।’ भुवन ने समाधान की चेष्टा की। मेघ ने कपिञ्जल को कड़ी आँखों देखा। वह नतमस्तक आ रहा था। पास पहुंच कर उसने थोड़ा सा सिर झुकाकर प्रणाम किया और वैसे ही अचल खड़ा हो गया।

कपिञ्जल ने पूछा, ‘क्या आज्ञा है?’

न आर्य, न श्रीमन् ! या ऐसा कुछ न कह कर केवल ‘क्या आज्ञा है?’ एक राजकुमार का गुरु ! दूसरा कैसा भी हो अयोध्या के राजा का कुमार !! इधर यह शूद्र !!!

मेघ का गला घुट गया। बोला, ‘शूद्र है न ? नाम?’

‘हूँ तो, नाम कपिञ्जल है। मुझे क्यों बुलाया ? काम छोड़कर आया हूँ।’ फिर वैसे ही कहा।

मेघ न बोल सका।

भुवन को भी बुरा लगा, परन्तु वह काम पहले करवाना चाहता था। पीछे जो कुछ भी हो।

भुवन ने आज्ञा के स्वर में उत्तर दिया, ‘वहाँ उस लक्ष्य-पट्टिका के आस पास मेरे तीर पड़े हैं। उन्हें उठा लाओ।’

कपिञ्जल टीले की तरफ चला गया। भुवन ने मेघ पर जो व्यञ्ज किया था उसका अब प्रायश्चित्त किया,—

‘कपिञ्जल पहिचानता तो अवश्य होगा। बड़ा उद्धत जान पड़ता है। आपकी चरण वन्दना तक नहीं की!’

इसमें मेघ ने कोई प्रायश्चित्त नहीं पहिचाना,—



‘सारा कारण तुम्हारा उजड़ूपन और आलस्य है। स्वयं क्यों नहीं तीर उठाने गये ? उसे ढेर लगाई ! असल में तुम्हारे पिता के शिथिल शासन के कारण ही दासों और शूद्रों ने इतना सिर उठा रक्खा है।’

इतने में हिमानी आ गई। भुवन ज़रा सा सिकुड़ा और इधर उधर देखकर कपिञ्जल की ओर बढ़ गया। कपिञ्जल ने जल्दी जल्दी तीर बीनकर भुवन को दे दिये। भुवन ने तरकस में रख लिये; एक हाथ में लिये रहा। जहाँ पहले खड़ा था वहाँ आकर उसने लक्ष्य पर तीर छोड़ा। फिर चूक गया। कपिञ्जल उसके पीछे खड़ा तमाशा देख रहा था। हिमानी हँस पड़ी।

‘तीरकमान ज़रा मुझे दीजिये’, हिमानी ने हाथ बढ़ाकर भुवन से कहा। स्वर पैना था, परन्तु कोमलता का प्रयास साथ लिये हुये। भुवन की त्योरी चंचल हुई। एक क्षण चुप रहा। नहीं न कर सका। हिमानी ने लक्ष्य साध कर तीर छोड़ा और सफल हो गई। भुवन के चेहरे पर लाज की लाली दौड़ गई। हिमानी ने उसके हाथ में कमान दे दी।

मेघ ने कसा,—‘यह लड़की है और तुम पुरुष ! परन्तु बात यह है कि मैंने जितना सिखलाया उसे हिमानी ने गाँठ में बाँध लिया और एक तुम हो जो सदा इधर-उधर बिखेरते रहते हो ! मूर्ख जो ठहरे।’

भुवन ने बिना सोचे समझे तिनककर कह डाला,—‘आपने जैसा बतलाया वैसे ही तो करता हूँ।’

मेघ के होठ सट गये। हिमानी अपने दूर बँधे घोड़ों की दिशा में देखने लगी।

कपिञ्जल ने तुरन्त भुवन के कान में खुसफुस की,—‘विदेशी परिण की छोकरी के सामने हारें ! अबकी बार कसके, कसके—’

ध्यान के साथ साधा। भुवन का तीर लक्ष्य पर जा पड़ा।

भुवन के मन में कपिञ्जल के लिये कुछ अनुराग उत्पन्न हुआ।

हिमानी ने कपिञ्जल के वाक्य का कुछ अंश तो सुन ही लिया। मेघ को भी बुरा लगा।

‘शूद्र ! तेरी यह अनधिकार चेष्टा !’ मेघ का घुटा हुआ क्रोध कपिञ्जल पर बरसा ।

हिमानी की आँख में भी लाल डोरे गहरे हुये । कपिञ्जल ने अविचलित स्वर में कहा,—‘मैंने क्या किया ?’

‘दास होकर यह सब !’ मेघ गरजा और हिमानी को आज्ञा दी,—‘ले जाओ बेटी हिमानी इसको यहाँ से !’

उसी समय नील रथ दौड़ाता वहाँ आ पहुँचा । मेघ ने उसे दूर से नहीं पहिचान पाया । हिमानी ने बतलाया ।

नील ने आते ही मेघ की चरणवन्दना की । उसके गले के मोतियों का हार भी मेघ के पैरों को छू गया । मेघ ने आशीर्वाद दिया । आशीर्वाद के स्वर पर पूर्व स्थित क्रोध का दबाव था ।

कपिञ्जल की ओर मुँह कर के बोला, ‘देखले नीच, शिष्टाचार इसे कहते हैं ।’

‘क्या बात है ?’ नील ने आश्चर्य प्रकट किया । मेघ ने सुनाया, कुछ हिमानी ने जोड़ा । शेष को भुवन ने अनबूझे बिगाड़ा,—‘कपिञ्जल भला है ।’

कपिञ्जल चुप था ।

उन तीनों के मुँह से एक साथ ‘हुं !’ निकला—जैसे ऊँचे नीचे सप्तकों के तीन विवादी स्वर एक साथ गूँज पड़े हों । भुवन को ऐसा ही लगा ।

नील मझोला, उतरती अवस्था का दुबला काईयां था ।

हाथ फटकार कर बोला, ‘आचार्य जी, यह बड़ा ही कामचोर है । खेत को ऐराते ऐराते चरसा फाड़ डाला, रस्सियां तोड़ दीं और अब खेत की जुताई छोड़कर यहां तमाशा देखने आ खड़ा हुआ है !’

भुवन ने सहसा पूछा, ‘कितनी अवधि रह गई होगी इसकी दासता की ?’

‘पूरे तीन बरस’, नील ने तुरन्त उत्तर दिया ।

कपिञ्जल ने प्रतिवाद में देर नहीं लगाई,—‘भूठा !’

‘नीच ! पाजी !!’ अब नील का क्रोध उफनाया ।

‘काम इतना करता हूँ कि दम टूट टूट जाती है । चरसा पुराना था सो फट गया । रस्सियों का भी वही हाल । नया सामान लेने के लिये सुभाया तो कहते हैं अपनी खाल की रस्सी भांज ले—’

कपिञ्जल ने भुवन की ओर देखते हुये विनय के स्वर में कहा, परन्तु बात तीखी थी । उल्टी पड़ी ।

नील ने नसों से लिपटे अपने दुबले हाथ से कपिञ्जल को पकड़ा । वह बच्चे की तरह झुक गया ।

‘हमारे राज्य में यह सब नहीं चलेगा, नील परिण ।’ भुवन को दया आई ।

क्षुब्ध रूँआसे स्वर में नील बोला,—कपिञ्जल को वह धकिया भी रहा था,—‘अरे रे रे ! हम कितना कर राजा को देते हैं ! हम न हों तो राज का ठाठ बाट कितने दिन चले ?’

मेघ ने व्यवस्था दी,—‘ले जाओ इसे और दण्ड दो ।’

नील और हिमानी कपिञ्जल को धक्के देते हुये ले गये ।

भुवन ने अपनी भनभनाहट भीतर भीतर रोक ली । दो बार लक्ष्यवेध किया । फिर तीर उठाकर मेघ के पास आ खड़ा हुआ ।

मेघ ने अपने क्षोभ को एक और रूप दिया—

‘ये लोग हजारों कोस दूर अपने परिणेश देश को छोड़ कर यहां अतिथि होकर रोजगार के लिये आये हैं न कि कपिञ्जल सरीखे दासों को अपनी लुटिया डोरी तक देकर और सिर के बाल मुड़ाकर लौट जाने के लिये—’

भुवन ने आव देखा न ताव और बोला, ‘हमारे जनपद को घोंटने के लिये गुरु जी.....’

‘इस शूद्र से तेरा क्या नाता है ?’

‘कुछ भी नहीं, केवल धर्म का ।’ मेघ के लिये इतना ही बहुत हो गया । भुवन कह तो गया, पर मेघ की जलती आंखों और फड़कती देह से कुछ दूर हट गया ।

‘नीच ! दुष्ट !! पापी !!!’ मेघ कड़का और भुवन को पीटने के लिये इधर उधर साधन ढूँढ़ने लगा ।

नील और हिमानी चले गये थे । डंडा पास था नहीं । मेघ भुवन पर झपटा । भुवन भागा । मेघ के हाथ जब कुछ नहीं लगा तब उसने मिट्टी के ढेले उठाये और फेंके, परन्तु भुवन दायें बायें होता हुआ छू हो गया । मेघ को हांफते हुये दांत पीसकर रह जाना पड़ा ।

नदी की चिड़ियां फड़फड़ाकर उड़ रही थीं । मेघ ने उन्हें नहीं देख पाया । सूर्यास्त होने का समय निकट था ।

## [ ४ ]

भुवन की अशिष्टता का आंशिक प्रायश्चित्त कपिञ्जल की देह को करना पड़ा। हिमानी और मेघ कपिञ्जल से असन्तुष्ट थे ही अब उनको खासा कारण मिल गया।

रात में कपिञ्जल नील के एक भीतरी कमरे में बाँधा गया। नील ने उसे बेतरह पिटवाया। हिमानी भी वहाँ थी। कपिञ्जल की सारी देह सूज गई, पर वह आह और कराह लेने के सिवाय चिल्ला नहीं रहा था। उसका बचाने वाला वहाँ था भी कौन ? पिटते-पिटते अचेत हो गया। हिमानी को लगा कि कहीं मर न जाय। वैसे दासों के प्राण उनके स्वामी या राजा के हाथ में रहते थे—जब जो जितना प्रबलतर हो बैठे। हिमानी ने कपिञ्जल की मारपीट बन्द करवादी, क्योंकि फेन के साथ उसके मुँह से रक्त के छींटे भी आने लगे थे। नील ने उसे कमरे से बाहर कहीं खुले में हटवा दिया। नील का व्यवसायी—सन्तुलन उसके साथ था—‘इसके पिटने का समाचार सारे दासों में फैल जाना चाहिये जिसमें कोई भी कामचोरी—और, रिनचोरी न कर सके।’

हिमानी ने समर्थन किया,—‘वैसे भी सब जान जायेंगे, परन्तु मैं और भी जोर के साथ बात को उनके चित्त पर बिठलाने का यत्न करूँगी।’

कपिञ्जल देर तक अचेत रहा। जब चेत में आकर कराहा आँखें खोलीं तब उसके पास कोई नहीं। ऊपर तारे तटस्थता के साथ दमक रहे थे और नीचे शरद की ठण्डी बयार चल रही थी, उसमें सुगन्ध नहीं थी, थोड़ी थपथपाहट अवश्य थी। प्यास लगी तो कपिञ्जल को पानी कौन दे ? शरीर की चोटें आँस रही थीं। उनकी पीड़ा ने उसे और भी सचेत किया। थोड़ी देर में कहीं भीतर से उसने शक्ति बटोरी और घिसटते-घिसटते पानी ढूँढ़ा, पिया और फिर लेट गया। भोर होने पर क्या होगा ? फिर वही नील और हिमानी। फिर—? सहवर्गी देख

देख कर चुपचाप रोयेंगे। दो चार उबल पड़े तो उनकी भी यही गति होगी। क्या राजा कुछ न करेगा ?

चौथे पहर कपिञ्जल उठा और उठते-बैठते अयोध्या के बाहर हो गया। वह भाड़ियों में छिपता हुआ किसी ऐसे स्थान को जा रहा था जिसे वह नहीं जानता था—वहाँ कम से कम नील न होगा, हिमानी न होगी। भोर हो गया और सूर्य का उदय। इतने में उसे घोड़ों की टापों का शब्द सुनाई पड़ा। वह एक भाड़ी के पीछे सिमटकर बैठ गया।

टापों का शब्द और भी पास आया। देखा तो भुवन सवार है। चिन्ता कुछ कम हुई, फिर भी वह छिपा रहना चाहता था। भुवन ने उसे देख लिया। घोड़े को छोड़कर उसके पास आया।

‘कौन ? ऐं !’

‘जी ...’ कपिञ्जल के सूखे गले से टूटा शब्द निकला।

भुवन ने निकट से उसका निरीक्षण किया। फटे कपड़ों में होकर चोटों की सूजन और नीले निशान भाँक रहे थे। कपिञ्जल हाँफ को रोक रहा था।

‘यह दुर्गति तुम्हारी किसने की ?’

‘जी...जी...नील पणि ने...मेघ के कहने से...मुझे जाने दीजिये। उसके गए पीछे-पीछे आते होंगे।’

‘मैं तुम्हें घोड़े पर रख कर लिये चलता हूँ...वैद्य से उपचार कराऊँगा...’ स्वर में दुलार था।

‘नहीं नहीं...मैं मार डाला जाऊँगा...’ भुवन को हठ करने का अवसर नहीं मिला, क्योंकि उसका घोड़ा भटकता चला जा रहा था।

‘मैं तुम्हारी देखभाल करूँगा,’ कहता हुआ भुवन घोड़े की ओर सरपट हुआ। घोड़े ने तेजी पकड़ी और भागा। कपिञ्जल वहाँ से अब और अधिक गति के साथ काँखता कराहता चल पड़ा।

कहीं दूर जाकर भुवन ने घोड़े को पकड़ पाया। दिन चढ़ आया था। वह चक्कर काटता हुआ उसी स्थान पर फिर आया जहाँ कपिञ्जल मिला था। बहुत दूँड़ा, पर न मिला। किशोर का उत्साह ठंडा पड़ गया, घर लौट पड़ा।

## [ ५ ]

अयोध्या राजभवन के सामने लम्बा चौड़ा मैदान था । यहाँ अयोध्या के अनेक महापथ, राजपथ आकर मिले थे । राजभवन के एक ओर राजा के गोदाम थे जिनमें अन्न, वस्त्र और शस्त्र इत्यादि के भाँडार थे । दूसरी ओर अश्वशालायें थीं और प्रहरियों के रहने के लिये घर । ये सब एक मञ्जिल के थे । राजभवन तीन मञ्जिलों का था । तीन मञ्जिलों से अधिक का भवन किसी का नहीं होता था । बहुत बड़े साहूकार का भवन, अपेक्षाकृत सीमित क्षेत्र में, तीन मञ्जिलों का होता था, वैसे साधारण तौर पर दो मञ्जिलों का । महाशालों (सामन्तों सरदारों) के भी भवन ऐसे ही बनते थे । पत्थर का उपयोग बहुत कम होता था । बड़े लोगों के भवनों और छोटों के घरों में पकी ईंट और लकड़ी, खपड़े और फूस काम में लाये जाते थे ।

राजभवन के द्वार पर भीड़ इकट्ठी थी ।

भीड़ में एक चिल्ला रहा था—‘हमारा गोधन नष्ट होता चला जा रहा है ।’

दूसरा—‘उधर सरयू के उस पार गायों-बैलों और बछड़ों के कँकाल पर कँकाल फैलते चले जा रहे हैं ।’

‘अकाल पर अकाल पड़ रहे हैं ।’

‘किसके पापों का फल है, खोज-बीन करो ।’

रोमक अपने अमात्यों के साथ द्वार के बाहर आया । उसकी आयु चालीस के उस ओर होगी । देह से तगड़ा, चेहरे का सुरूप और रोबीला । रेशमी धोती, कुर्ता पहिने था और सिर पर लाल रङ्ग के रेशम का उष्णीश । कमर में म्यान पड़ी तलवार जो पीले रेशमी फेंटे से कसी लटक रही थी । जूते वे तीनों पहिने थे । अमात्यों का भी ठाठ अच्छा था । राजा के गले में मोतियों की माला, भुजा पर सोने के भुजबन्ध और कलाहियों पर कड़े, अमात्यों के गले में मूँगों का हार और हाथ पर चाँदी

के ही भुजबन्ध और कड़े थे । रोमक भीतर से भीड़ की बातों को सुन रहा होगा या जानता होगा कि किस उद्देश्य से राजभवन के द्वार पर इकट्ठी है । बोला, 'घबराओ नहीं तुम्हारे भोजन और वस्त्र का प्रबन्ध करता हूँ ।'

भीड़ ने अपनी बातें कुछ और प्रखरता के साथ दुहराईं । पानी न बरसने की शिकायत इन सबके ऊपर थी ।

'भाइयो, पानी का बरसाना मेरे हाथ में तो है नहीं । जो कुछ हो सकता है कर रहा हूँ । तुम सबको मालूम है कि कितने यज्ञ करवा डाले हैं और करवा रहा हूँ ।' राजा ने कहा ।

भीड़ की चिल्लाहट कम हो गई, केवल मरमराहट सायें सायें सी करती रही ।

'उन भाँडारों के पास आ जाओ,'—रोमक ने गोदामों की ओर संकेत करते हुये बतलाया,—'वहाँ अन्न और वस्त्र मिलेंगे ।'

राजा आगे बढ़ गया । भीड़ पीछे हो ली । गोदामों से किसी को कुछ और किसी को कुछ दिया जाने लगा । वितरण के लिये अमात्यों के सिवाय अन्य अधिकारी भी थे ।

रोमक जब एक गोदाम के कोने पर पहुँचा तो मार्ग में आते हुये उसने तीन व्यक्ति देखे । उनके वस्त्रों से उनकी दीन-हीन दशा चू रही थी । एक बुढ़ा था, साथ में उसके अधबूढ़ी स्त्री और एक बहुत सुन्दर लड़की जिसकी आयु लगभग तेरह-चौदह होगी ।

लोग इधर से उधर आ जा रहे थे । इनकी ओर कोई अधिक ध्यान नहीं दे रहा था । रोमक का ध्यान आकृष्ट हुआ । लड़की उन दोनों को उसी की ओर लिये आ रही थी । जब वे तीनों आ गये रोमक ने पूछा, 'कौन लोग हो ?'

बूढ़े ने उत्तर दिया, 'क्षत्रिय, अब ऐसे हो गये हैं ।' और वह कूल्हा । स्त्री उसके पीछे सिमट गई । लड़की उसकी फटी ओढ़नी को पकड़े हुये बड़ी बड़ी आँखों राजा को देखने लगी ।



रोमक पसीज उठा,—‘ठहरो, तुम लोगों को अन्न और कपड़े दिये जायेंगे।’

बूढ़े की कराह दब गई। स्थिर स्वर में बोला, ‘हम हो तो गये हैं ऐसे, परन्तु भीख नहीं लेंगे।’

रोमक का कुतूहल जागा,—‘फिर?’

‘हमको उधार अन्न और कपड़ा इतना मिल जाय कि नैमिषारण्य में जाकर कुछ समय काट लें। जब अच्छे दिन फिरेगे तब अयोध्या लौटकर सारा उधार चुका देंगे। सुनते हैं नैमिषारण्य में अकाल नहीं है, पानी बरसता रहा है, करने को कुछ काम मिल जायगा।’

रोमक ने हमीं भरदी और लड़की से बात करनी चाही—

‘तुम भी वहां जाकर काम करोगी?’

‘हां, क्यों नहीं? पढ़ूंगी भी।’

‘अवश्य, अवश्य,’ रोमक ने पुलकित होकर प्रश्न किया, ‘तुम्हारा नाम क्या है?’

‘गौरी’ लड़की ने कहा, ‘आपको मेरे नाम से क्या?’

‘हां उसके नाम से क्या प्रयोजन?’ बूढ़े ने दुहराया।

रोमक हँसकर बोला, ‘वैसे ही कहा बेटी। नैमिषारण्य में बड़े बड़े ऋषि मुनि रहते हैं। वहां जाकर पढ़ना, खूब पढ़ना।’

गौरी ने आँखें नीची करलीं। लजाकर केवल ‘हां’ की।

‘चलो मां,’—गौरी ने बूढ़ी से कहा,—‘अन्न वस्त्र उधर मिलेगा।’

रोमक उन तीनों को एक भांडार की तरफ ले गया। गौरी के वे दोनों माता पिता थे। अन्न वस्त्र लेकर वे तीनों वहाँ से चले गये। रोमक दूसरे लोगों को बँटवाने लगा। फिर उसने अपने भांडारों के कोठे गिनवाये। कुल पच्चीस थे। अभी तो शरद ऋतु ही है, कहीं अगली साल भी पानी न बरसा तो? यह भांडार कब तक भार सहेगा? कहीं अपने ही भूखों मरने की नौबत न आ जाय।

‘अन्न बाँटना कुछ कम कर दो, ‘रोमक ने अमात्यों को सम्मति दी।

‘प्रजा को बड़ा कष्ट होगा, असन्तोष बढ़ेगा ।’

‘एक दिन बिलकुल बन्द कर देना पड़ेगा; यदि फिर अकाल पड़ा तो क्या करेंगे ?’

अमात्य चुप हो गये ।

राजा ने विषयान्तर किया,—‘यज्ञ कर रहे हैं । इन्द्र देव कृपा करेंगे ।’

रोमक की ढुलमुल में अमात्यों को सम्बल मिला ।

‘अन्न का बाँटना जारी रखना चाहिये, भले ही उसके घंटे ऐसे कर दिये जावें, जब केवल बहुत अटक वाले ही आ सकें ।’

इस अव्यवहारिक सुझाव के प्रति रोमक अपने विचार को अनुकूल करने वाला ही था कि प्रतिहारी ने समाचार दिया,—‘उपाध्याय मेघ पधारे हैं । कुछ कहना चाहते हैं, इसी घड़ी बुलाया है ।’

राजा का ध्यान भुवन की ओर गया । प्यारा इकलौता लाड़ दुलार का पला बेटा । कोई उत्पात किया होगा । उन्हें, बालक उपद्रव न करें तो क्या मेघ की आयु के लोग करेंगे ? रोमक मेघ से अपने भवन में मिला ।

‘भुवन इतना बिगड़ गया है, इतना दुश्शील कि कितना भी सिखलाऊँ ध्यान ही नहीं देता ।’

‘माँ का लाड़ला है । गुरुकुल में न भेज कर आपको साँप चुका हूँ । ढङ्ग से सिखलाने पर एक दिन ठिकाने लग जावेगा ।’

‘ढङ्ग से ! हूँ...साँप का विष दूर करने के लिये उसका दाँत उखाड़ना पड़ता है, मार्ग में अबाध गति से चलने के लिये पैर में ठँसे काँटे को निकालना पड़ता है और जैसे बिना मोह त्याग किये मुक्ति नहीं वैसे ही बिना ठोके पीटे वह नहीं सुधर सकता ।’

अध्यात्म और भौतिकवाद की इस खिचड़ी को रोमक न पचा सका । तो भी उसने कुपच को प्रकट नहीं किया ।

‘आज ऐसी क्या बात हुई है ?’ रोमक ने पूछा । किसी ने नहीं देखा कि पास के एक कमरे के किवाड़ के पीछे भुवन आ चिपका था ।

‘आज क्या नित्य ही कुछ न कुछ होता रहता है । कहाँ तक सहूँ—क्या कहूँ, कितनी बार कहूँ ? किसी ने कुसमय ही उसे अथर्ववेद का एक मन्त्र रटा दिया है—यदि पुरुषार्थ मेरे हाथ में है तो जय बायें हाथ में बनी बनाई ! दाल भात में मूसल चन्द बन गया है ।’

रोमक मुस्कराया,—मेघ के उपहास के लिये नहीं, वरन अपने सन्तोष पर, यह मन्त्र मैंने ही तो भुवन को सिखलाया, और वह है भी बिल्कुल ठीक ।

विचार मग्नता की मुद्रा में बोला, ‘हाँ...आँ...बिना अपने ध्यान और परिश्रम के देवताओं की मित्रता प्राप्त नहीं हो सकती...’

यह भी वेद के एक मन्त्र की बात थी । मेघ को बहुत अखरी ।

रोमक ने अपनी बात पूरी की,—‘उसके ध्यान को सुचारूप से नियोजित करते रहिये तो वह उस मन्त्र को सार्थक करके रहेगा ।’

अर्थात् भुवन का कोई अपराध नहीं, दोष मेरा है—मेघ को गड़ गया ।

‘कभी बगुलों को ताकता है, कभी सरयू की लहरें गिनता है और हर किसी का अपमान करता रहता है । कल नीलपणि का अपमान किया वह अलग । मुझसे ही बदल पड़ा ! कपिञ्जल शूद्र ने अशिष्ट बर्ताव किया तो उसकी पीठ ठोकी—उसे तेजवान बतलाया !!’

भुवन किवाड़ की आड़ से ही चिहुंका,—‘मैंने कहा ही क्या ?’

‘चुप दुष्ट ! डण्डा न हुआ मेरे हाथ में नहीं तो उसी समय तेरी पीठ तोड़ देता ।’ मेघ आपे से बाहर हो गया । भुवन किवाड़ के पीछे खिसक गया ।

रोमक ने कहा,—‘जा यहाँ से ।’ पर उसके स्वर में भर्त्सना की टंकार नहीं थी ।

मेघ ने रोमक को चुनौती दी,—‘इस छोकरे के भीतर बैठा राक्षस क्या अब भी दण्डनीय नहीं है ?’

रोमक के कुतूहल ने मेघ की बात को अनसुना कर दिया। उसने मेघ से प्रश्न किया, ‘कपिञ्जल ने या उन शूद्र का जो कुछ भी नाम हो, क्या अशिष्टता की ? उसे क्या यों ही तेजवान कह दिया ?’

बेटे से बढ़कर बाप ! मेघ के आग सी लग गई। उसने क्रोध की ज्वाला रोमक पर दौड़ाई,—‘इस छोकरे के बिगाड़ने में आपका ही हाथ है। आप ही उससे मेरा अपमान कराते हैं, आप ही उसे बहकाते रहते हैं।’

ज्वाला ने ज्वाला को उत्पन्न किया। रोमक बोला, ‘यह लीजिये ! घर पर मैं उसे वेद मन्त्र सिखलाता हूँ तो वह चौपट करना हो गया !! आप आचार्य हैं, आपको संयम से काम लेना चाहिये। तभी तो आपका शिष्य संयमी बनेगा।’

उल्टा चोर कोतवाल को डाटे ! मेरे अपमान का यह प्रतिशोध हुआ !! मेघ भभक पड़ा,—‘तुमको अपने किये पर रोना पड़ेगा रोमक। तुम राज्य करने के योग्य ही नहीं हो। अकाल पर अकाल जो पड़ रहे हैं, इतने यज्ञों का जो कुछ भी फल नहीं मिल रहा है वह सब तुम्हारे और उस राक्षस छोकरे के पापों का फल है...’

रोमक भी न माना,—‘भुवन को छुटपन से ही सच बोलने की सीख दी गई है, पर आपका स्वभाव जब आपको नाक के आगे का देखने दे तब तो...’

मेघ बेलगाम हो गया,—‘तुम मिटोगे, तुम्हारा सर्वनाश होगा। तुमको जब तक गद्दी पर से नहीं उतारा चैन नहीं लूँगा।’ मेघ चला गया। रोमक सन्नाटे में आ गया। भुवन अपनी माता के पास पहले ही जा दौड़ा था।

उसकी माता का नाम रानी ममता था। अघेड़ अवस्था की सुन्दर गौरवशालिनी नारी। उस समय वीणा बजा रही थी। भुवन के इस

तरह आने पर उसने वीणा रख दी। भुवन ने कहा,—‘माताजी ! माताजी ! क्या सच बोलना पाप है ?’

‘नहीं तो। क्या बात है ?’

‘आचार्य मेघ के सामने मैंने एक शूद्र को कह दिया कि वह भला है तो बरस पड़े और मारने को दौड़े। मेरे ऊपर ढेले फेंके, पर मैं एक ऐसा कि आँधी की तरह बहा तो सब इधर उधर बिखर गये ! अब पिताजी पर खीझ पड़े हैं। शाप दे रहे हैं। तो क्या ऐसे की शाप से कुछ हो जायगा ?’

ममता ने थोड़ी देर में बहुत कुछ समझ लिया और चिन्ता में पड़ गई।

[ ६ ]

नील की दासता से कपिञ्जल क्या भागा, सूखी घास के ढेरों में बत्ती सी छुला गया। एक भागा दो भागे, फिर तो सौ में नव्वे बेपता हो गये। अयोध्या का जनपद छोड़कर कोई पंचाल गया, कोई मिथिला, कोई कुन्तिभोज और कोई दशार्ण। एक समूह नैमिषारण्य की ओर गया। वहाँ लुटेरों, डाकुओं के अड्डे थे, ऋषियों के आश्रम और दूर दूर बसे हुये गाँव। कोई उनमें जा मिले, किसी ने आश्रमों की आड़ पकड़ी। जिनसे बेट-बेगार (विष्टि) ली जाती थी उनमें से भी बहुत से इधर-उधर चल निकले। 'बैठे से बेगार भली' वाली कहावत ने उन्हें पराभूत नहीं पाया था; दासता से मर जाना भला उनकी भीतरी उमंग इस सिद्धान्त पर रीझ उठी। बड़े बड़े महाशालों तक के बेगारियों ने सिर उठाना आरम्भ कर दिया। चार-छः दिन के भीतर ही इस आँधी ने प्रचण्डता धारण कर ली। केवल राजा के बेगारी अभी कन्धे का जुआँ साधे थे, क्योंकि उसके बर्ताव में कटुता नहीं थी।

नील के सभी दास भाग गये। थोड़े से वेतनभोगी नौकरों से काम चल नहीं सकता था इसलिये थोड़े ही समय में कारबार के ठप हो जाने की विभीषिका सामने आ गई। नील घबरा गया। हिमानी भी बेचैन हो गई। नील ने दासों का पता लगाने और लौटाने के लिये अपने मुनीम और पहरेए छोड़े। हिमानी ने कुछ पक्षी पाल रखे थे। वह उनके चुगाने, उनके साथ खेलने और दासों के नाम ले लेकर उन्हें गालियाँ देने में लग गई—अपने भीतर का ताप वह इस तरह बुझाने लगी।

दास न पकड़े जा सके और न लौटाये जा सके।

नील की कृपण बुद्धि ने उसके भीतर विश्वास बिठलाया कि दास कपिञ्जल के बहकाने से भागे हैं। दासों के भाग पड़ने का सम्बन्ध उसके डण्डे और हिमानी के कोड़े के साथ कैसा और कितना है यह उसकी

सत्रभ के बाहर की बात थी। सहायता के लिये राजा के पास दौड़ा गया।

रोमक के समीप उस समय एक अमात्य बैठा था और भुवन। वह भुवन को उस दिन से अपने निकट रखने लगा था जिस दिन मेघ अपद-स्थता लेकर और शाप देकर चला आया था।

नील ने बहुत शिष्टाचार और इधर उधर की थोड़ी सी ही बात करके उसकी दुहाई दी,—‘मैं जितना कर देता हूँ उतना कोशल राज्य भर में कोई और नहीं देता।’

रोमक को कुछ असंगत सी लगी। बोला, ‘व्योपार और लैन देन भी तुम्हारा सबसे बड़ा है। खानें भी तुम्हारे हाथ में अधिक हैं—त्रपु (टीन), ताम्बे और लोहे की ...’

‘और सबसे ज्यादा कण्ट में भी मैं ही हूँ।’ रोमक सवेरे से साँझ तक कण्ट की ही गाथायें सुनता रहता था। उसने दूसरी ओर मुँह फेर लिया।

भुवन से पूछने लगा,—‘आज क्या सीख रहे हो?’

‘यही कि शरीर को हृष्ट पुष्ट और मन को वीर बनाओ।’ भुवन ने उत्तर दिया और इसी भाव का एक वेद मन्त्र सुनाया।

नील ने देखा कि उसके आने का उद्देश्य फिसला।

‘महाराज ! महाराज...’ उसने दीनता के साथ हाथ जोड़े और उस सम्बोधन के उपरान्त उसने जो कुछ कहा वह मुर्झा कर होठों पर रह गया, केवल बरबराहट सुनाई पड़ी।

अमात्य ने उसे पगडंडी सुभाई,—‘थोड़े में अपनी बात कह डालिये।’

‘थोड़े में ही सब कहना चाहता हूँ, लेकिन विपद तो इतनी बड़ी है कि ओफ।...’ बात यह है कि मेरा दास कपिञ्जल शूद्र जो कामचोर था, दुष्ट, अक्खड़, रिनचोर...’

रोमक ने उसकी ओर मुँह फेरा—‘थोड़े में ही कहो न—’

नील पिटपिटाया,—‘वह भाग गया। दूसरे दासों को भी बहका ले गया ! खेतीबारी सब चौपट हो रही है।’

अमात्य रोमक की नीति से परिचित था। उसने व्यङ्ग्य किया,—‘उन्हें पेट भर भोजन देते थे ?’

‘सबको देता था। वह दास कपिञ्जल तो दिन भर ही खाता रहता था...आलसी था...दो-तीन चाँटे मार दिये तो अकड़ गया और भाग गया।’

भुवन ने तुरन्त बात काटी,—‘ये दासों को बहुत मारते-पीटते हैं इसीलिये भाग गये—’

‘नहीं तो’, नील बोला।

भुवन ने अपनी बात पूरी की,—‘कपिञ्जल को ही इन्होंने इतना पीटा, इतना पीटा कि उसे अधमरा तो मैंने देखा है...शायद मर ही गया हो।’

अब रोमक ने ऊँचे स्वर में प्रश्न किया, ‘क्यों नील पर्ण ?’

‘भूठ है महाराज,’ नील का भी स्वर चढ़ गया।

‘मैंने अपनी आँखों उसकी दुर्दशा देखी है—पीठ सूजी हुई थी, घाव थे, लम्बे चौड़े नीले निशान, और, वह घिसट-घिसटकर चल रहा था।’ भुवन ने ओज के साथ बतलाया।

रोमक को नील की करराशि तो अच्छी लगती थी, पर उसके ढङ्ग नहीं भाते थे।

‘मैं दास प्रथा को अच्छा नहीं समझता हूँ। हमारे यहाँ कहा है कि ऊपर उठना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है...कपिञ्जल या किसी भी दास की पकड़-धकड़ में मैं कोई सहायता न कर सकूँगा।’

भुवन प्रसन्न हो गया। उसकी प्रसन्नता नील को बहुत अखरी।

अपने कपड़े के भीतर कसी हुई मुट्ठियों को और भी कड़ा करके बोला, ‘आगे मैं कर कैसे दूँगा ? नहीं दे सकूँगा।’



इतना तो उन सबने सुन लिया, परन्तु जब वह कुड़कुड़ाते हुये चला गया—‘मैं नहीं दूँगा कर’—तब किसी ने नहीं सुन पाया ।

राजा की समझ में अब आया कि नील के साथ कुछ अधिक मीठा बर्ताव करना चाहिये था । अपने पछतावे को वह प्रकट नहीं कर सका । अकालों को सहज-सह्य बनाने वाले ये बड़े कर-दाता ही तो थे । कुछ वर्गों में इसीलिये उनकी इतनी मान्यता थी ।

भुवन से कहा, ‘भीतर जाकर पढ़ो । मैं अकेले में कुछ बात करूँगा ।’

भुवन तो चाहता ही था । भीतर चला गया और किसी बखेड़े के सङ्कलन में लग गया । रोमक के सामने वही समस्या, जो बारबार सामने आने के कारण पुरानी पड़ चली थी, फिर आ खड़ी हुई—अब क्या हो ? उसे अपने अन्न भण्डार के बचाने की चिन्ता थी । स्वर्ण, रत्नादि अधिक नहीं बढ़ेंगे तो कम भी न होंगे । उसकी निजी भूमि पर जितने वेतन-भोगी श्रमिक, और बेगारी, काम कर रहे थे उतने तो करते ही रहेंगे, यह भी विश्वास था ।

‘जिस गति से अन्न बाँटा जा रहा है उससे कितने दिन और चलेगा ?’ रोमक ने वही प्रश्न फिर किया जिसे पहले कई बार कर चुका था ।

‘एक वर्ष तक तो अवश्य चलेगा,’ अमात्य ने उत्तर दिया और राजा के उतार-चढ़ाव को परखकर एक क्षण पीछे बोला, ‘कुआँ खेती करने वालों से अन्न मिलेगा, हमारे उत्साही सार्थवाह बाहर से टाँड़ों पर बहुत सा लाद लावेंगे । बहुत से व्यवसायों ने सहस्रों मन अन्न अपने आगारों में भरकर छिपा रक्खा है....’ राजा की रुचि में क्षीणता लक्ष कर के अमात्य चुप हो गया ।

रोमक ने कोई मन्तव्य प्रकट नहीं किया । मेरे भी बहुत से अन्न-भाण्डार हैं, उनसे मैं प्रजा की सहायता करता रहता हूँ । किसी से कुछ भी नहीं छिपा है ।...पर दूसरों के छिपे अन्नागार ? उनका क्या हो,

इस विषय पर उसने निश्चय के साथ कुछ नहीं सोचा । बात भीतर के किसी कोने में जाकर बैठ गई ।

केवल एक प्रश्न मुँह से निकला,—‘नील के पास भी अन्न होगा ?’

‘बहुत ।’

प्रसङ्ग और आगे नहीं बढ़ा ।

[ ७ ]

नील का भवन बड़ा था—दो खण्ड का। भवन के भीतर विस्तृत आंगन, दालानें और कमरे। कमरों के बीच में लम्बी सकरीं गैलें थीं। आंगन से ज़रा हटकर दो दालानों के कोने पर एक कमरा था जिसमें पणियों के देवता बाल की मूर्ति थी। इसका पूजन हिमानी और नील किया करते थे। यह आर्यों के किसी भी देवता का प्रतिबिम्ब नहीं था। रूपसरूप में केवल इन्द्र की कल्पना के वृत्त में 'बाल' को थोड़ा बहुत बिठला सकते थे। इस कमरे का सम्बन्ध भीतर के कक्षों से एक भीतरी द्वार से था।

हिमानी फूल चढ़ाने के उपरान्त अपने देवता से प्रार्थना करने लगी,—‘जो हमसे द्वेष करें उन्हें जला डालिये; हमारे शत्रुओं को मार दीजिये; जो हमें नुकसान पहुंचाना चाहें उनका तुरन्त सत्यानाश कर डालिये। हमको इस तरह की शक्ति दीजिये कि हम अपना पसारा दुनियां भर में कर सकें। हे महास्वामी, मुझे ओज और तेज दो।’ इतना तो उसने स्फुट स्वर में कहा। अकेली ही थी वहां। फिर उसने मन में जपा,—‘बड़े बड़े पुरुषों को नीचा दिखलाने की समर्थता दो मुझे।’

पूजन से निवृत्त होकर जब वह दूसरे कमरे में गई तब उसने दीर्घबाहु को बैठे, जमुहाई लेते, पाया।

दीर्घबाहु पच्चीस छब्बीस साल का युवा होगा। रंग गेंदुआँ, चेहरे पर चेचक के छोटे छोटे चिन्ह, आंखें बड़ी जिनकी पुतलियों में श्यामता कम और पानी कुछ अधिक जान पड़ता था। काया गठी हुई और लम्बी। चारतले वाले जूते चौखट के पास उतार आया था। धोती पर कमर बन्ध बाँधे था। तन पर ज़रतारी का रंग बिरंगा कंचुक पहने था। सिर के लम्बे काले बाल लाल कौषेय के साफ़े के नीचे गर्दन पर छहरा रहे थे। पांच सात पेवों का तिरछा ऊँचा मूँगिया रंग का मुड़ासा जमुहाई लेने के समय लगता था जैसे अब खिसका, पर

कसकर बँधा हुआ था। अयोध्या जनपद में इसके पास एक लाख निवर्तन भूमि हो गई थी। इसके थोड़े से भाग में कुर्ये थे जिसमें अब भी खेती हो जाती थी। बाकी पानी न बरसने के कारण पड़ी हुई थी। उसकी प्राकृति पर चिन्ता की कोई रेखा न थी।

हिमानी के आते ही दीर्घबाहु सतर्क हो गया। चौकी पर बैठा था। बैठा रहा। हिमानी अपना केश जूट लाल रेशम के फ्रीते से बाँधे थे जिसमें फूल खोंसे हुये थे। उन फूलों पर आंखें फिराते हुये दीर्घबाहु ने कहा, 'पूजन से निवट आई' ?'

'जी हाँ'

'मैं बड़ी देर से यहां बैठा हूँ।'

'कहिये।'

अब दीर्घबाहु को खड़ा होना पड़ा। हिमानी के स्वर और आचार में कोई आवाहन न था।

'बात तो वैसे कुछ बहुत बड़ी नहीं है। रात में राजा ने जुये के लिये बुलाया तो जाना पड़ा—निमन्त्रण अस्वीकार कर नहीं सकता था। दस सहस्र निवर्तन भूमि हार गया। उसका कोई विषाद नहीं, क्योंकि लाभ और हानि का जोड़ा है। पर राजा मेरी हार पर जैसा आड़ा तिरछा हँसा वह भीतर भीतर बहुत छिद गया है।'

हिमानी ने उसे बैठने के लिये कहा। वह स्वयं भी एक चौकी पर बैठ गई।

अब हिमानी ने वार्तालाप में रुचि दिखलाई,—'आप सरीखे महाशाल और सामन्त ही तो राजा को इतना सिर चढ़ाये हुये हैं। क्या फिर जुआ खेलने जायेंगे उसके घर ?'

'नहीं तो। नियम यह है कि अब जब मैं निमन्त्रण दूँ तो राजा को खेलने के लिये मेरे घर आना पड़ेगा। कहिये तो न बुलाऊँ ? बदला लेना चाहता हूँ।'

हिमानी दीर्घबाहु की बुद्धि की गहराई को जानती थी। बोली, 'आप फिर हार गये तो क्या बदला चुक जायगा ?'

'फिर क्या करूँ ?'

'आपने सुना या नहीं कि रोमक ने आचार्य मेघ का कैसा अपमान किया और उस छोकरे भुवन ने भी ?'

'सुना तो है।'

'फिर ?'

'फिर ! राज्य की जो दुर्दशा हो रही है, उसकी जिम्मेदारी किस पर है ?'

दीर्घबाहु की आंखों पर शून्य सा छा गया।

उस शून्य में हिमानी ने अपनी बात बिठलाई,—'रोमक की है जिम्मेदारी, रोमक की। ऐसा निकम्मा राजा कहीं भी होगा ?'

दीर्घबाहु हिमानी के आदेश या निर्देश की प्रतीक्षा में था। हिमानी ने कहा, 'रोमक को गद्दी पर से उतारने का उपाय करो—बस।'

दीर्घबाहु हिमानी के केशपुष्पों को निरखने लगा। हिमानी ने उस पर से अपनी आंख नहीं हटाई।

कहती गई,—'आचार्य मेघ अपने साथ हैं। उनका बहुत व्यापक प्रभाव है। मन्त्र और जादू टोना भी उनके बराबर कोई नहीं जानता। राजा को शाप देकर आये हैं। मिटाकर रहेगे। हम सबको उनका साथ देना चाहिये।'

दीर्घबाहु ने हमीं भरने में देर नहीं लगाई,—'मुझ से जो कुछ भी करने के लिये कहा जायगा आनाकानी नहीं करूँगा। आपके कहने से अपना सिर तक दे दूँगा। खिलाड़ी जो ठहरा।'

हिमानी के होठों पर एक मन्द मुस्कान आई। दीर्घबाहु को लगा जैसे हिमानी के केश सुमन उसके व्यक्तित्व पर मुस्करा रहे हों।

'आप सौगन्ध खा सकेंगे ? क्योंकि पुरुषों का कुछ ठीक नहीं क्या कहें और क्या करें,'—हिमानी की मुस्कान और भी विकसित हुई।

‘अवश्य, अवश्य,’ दीर्घबाहु ने दृढ़ता के साथ आश्वासन दिया ।

‘किस देवता की ?’

‘जिसकी आप कहें । मैं तो आपके कहने में जीवन भर चलने के लिये तैयार हूँ ।’

हिमानी उठ खड़ी हुई । दीर्घबाहु की ओर पीठ करके जटाजूट के पीते को सँभालने लगी जिसके फूल ढीले नहीं पड़े थे । दृष्टि उसकी खिड़की में होकर आने वाली किरणों पर थी । भौंहें सिकुड़ गई थीं । चेहरे पर ग्लानि थी । होठों पर व्यङ्ग्य की मरोड़ । कुछ क्षणों में ही उसने अपने भाव को बदला और दीर्घबाहु के सामने हो गई । होठों पर मृदुल मुस्कान आ गई थी ।

बोली, ‘बात तो आपने बहुत बड़ी कह डाली ! उसका निभाव बहुत कठिन है ।’

‘आपके कहने से यदि इसी समय अपनी गर्दन काट कर न फेंक दूँ तो रही ?’

हिमानी हँस पड़ी । उसके मोती जैसे दाँतों में आगे के दो कुछ टेढ़े थे, परन्तु वे भी दीर्घबाहु को अत्यन्त सुन्दर जान पड़े ।

‘अरे नहीं । यह नहीं । वही करना है जो मैंने अभी अभी बतलाया ।’

‘कोई कसर नहीं लगाऊँगा । इसी घड़ी से करने के लिये उद्यत हूँ ।’

‘मुझे विश्वास है । राजा को गद्दी से उतारने के बाद जैसे ही अवसर हाथ लगा अपने जहाज से फ़ारिश देश ले चलींगी । बाबुल भी घुमाऊँगी । बड़े बड़े भवन, मीनारें, क़िले और कोट हैं वहाँ । ऐसे ऐसे नर नारी और ठाठ बाट देखने को मिलेंगे कि हाँ……’

दीर्घबाहु की आँखों का पानी गहरा हुआ । बड़ी उमङ्ग के साथ बोला, ‘आपको देख लिया तो मानो सारी दुनियाँ देखली और पाली !’ दीर्घबाहु खड़ा हो गया । पर उसके निकट नहीं बढ़ा । हिमानी ने थोड़ा सा मुँह फेरा ।

‘अब एक बात कहे बिना नहीं रहा जाता,’—दीर्घबाहु कहते कहते अकचकाया । आँखें नीची पड़ गईं जैसे उसकी रत्नजटित सोने की चौड़ी करधोनी को देख रही हों जो वह अपने घाघरे पर कसे हुये थी । हिमानी ने कन्धों पर अपनी बारीक ओढ़नी सँभाली, आँखें तिरछी की और प्रोत्साहन दिया,—‘कहिये ।’

‘आप मेरी जीवन संगिनी हो जावे’... ‘दीर्घबाहु ने गला साफ़ किया ।

‘जी ?...मतलब ?’ जैसे हिमानी मतलब न समझी हो ।

‘मतलब यह कि मैं आपको बहुत समय से चाहता हूँ, परन्तु प्रकट करने का सौभाग्य अब मिला ।’

‘हूँ...’

दीर्घबाहु उसकी ओर बढ़ने को ही था कि वह तुरन्त मुड़ी ।

न होठों पर मुस्कान थी और न आँखों में कोई रसीलापन ।

बोली, ‘हमारे फगिश देश में और बाबुल में भी जहाँ से हमारे पुरखे फगिश देश को गये ब्याह का जो रिवाज है वह यहाँ से नहीं मिलता । हमारे यहाँ नारी नर की बँधुआ होकर नहीं रहती—काम पहले करती और कराती है, प्रेम पीछे ।’

उसके रंगढंग को देखकर दीर्घबाहु सिकुड़ा ।

‘जी...जी...वह सब ठीक ही होगा ।’

हिमानी फिर मुस्कराई । आँखों पर रंग आया । पीठ फेर ली । दीर्घबाहु के कानों में पड़ा—उसे लगा जैसे वीणा के ऊँचे स्वरों की झनकार हुई हो—‘पहले कुछ काम कर के दिखलाइये...फिर ऐसी-वैसी कुछ बातें...अभी-अभी आप मेरे कहने पर सिर देने को तैयार थे ।’ दीर्घबाहु ने नहीं देखा कि हिमानी के चेहरे पर कितनी अवहेलना खेल रही है ।

‘सो तो अब भी कहता हूँ और कहूँगा । आप जब चाहें तब परीक्षा ले लें,’ दीर्घबाहु ने जोर देकर कहा ।

हिमानी ने उसकी ओर मुँह फेरा । गले के मणिमणिकों का हार डोल गया मानो दीर्घबाहु के भीतर की हलचल को थपथपा रहा हो । हिमानी के चेहरे की सारी रेखायें स्थिर थीं ।

‘जब तक काम की सफलता पूरी तरह अपनी मुट्ठी में न आ जाय तब तक प्रेम की रत्ती भर भी बात मत करिये । प्रेम को बाधक मत बनने दीजिये, उसे साधक की भाँति अचल और स्तब्ध रहने दीजिये... मेरा स्वभाव यही चाहता है । आप मानेंगे न ?’

‘अवश्य, अवश्य ।’ दीर्घबाहु अपने चार तल्ले वाले जूतों की तरफ़ देखने लगा मानो उन्हें पहिनकर कहीं बाहर जाना चाहता हो और खुले में गहरी साँस भरना चाहता हो । हिमानी ने आधे निमेष के लिये उसको ऐसे देखा जैसे सिंहिनी ओधे पड़े हुये अपने शिकार को पड़ताल रही हो ।

‘बैठिये,’ हिमानी के स्वर में कोमल आग्रह था । वे दोनों अपनी-अपनी चौकियों पर बैठ गये ।

‘क्या सोच रहे हैं ?’ हिमानी ने पूछा ।

‘कुछ नहीं... यों ही... कठिनाइयाँ तो उस काम में सामने आयेंगी, परन्तु मैं जकूँगा नहीं, सबको सीधा करूँगा... आपके निकट रहने का अवसर तो मिलता रहेगा ?’

‘क्यों नहीं ? फिर जब जैसा काम पड़े ।’

‘मान लिया । अभी क्या करना है ?’

‘राजा की लाखों निवर्तन भूमि को बेजोत करना है ।’

‘कैसे ?’

‘ऐसे—हमारे दास भागे, आपके बेगारी भाग रहे हैं । राजा को बेट लेने का जो अधिकार है पहले उसे समाप्त करो । उसका जैसे ही यह सहारा टूटा कि गद्दी से उतारने का काम उँगलियों का खेल रह जावेगा । वह काम हम लोग मिलकर करें, ब्राह्मणों पुरोहितों और उनके यजमानों में गद्दी से उतारने का काम आचार्य मेघ और उनके साथी करेंगे ।’



‘आप जो कुछ कहेंगी सब करूँगा । बतलाती भर जाइये, कभी नहीं चूकूँगा । ओफ़, आप कितने दूर का सोचती हैं और इस आयु में !’

हिमानी हँस पड़ी । दीर्घबाहु के मन में लहर फिर उमड़ी, और—वहीं कुण्ठित हो गई ।

हिमानी के कान में बाहर से एक आहट आई । वह नहीं चौंकी ।

‘पिताजी आ गये हैं । आचार्य मेघ के घर गये थे । मैं आती हूँ थोड़ी देर में । आप बैठिये ।’ वह उठ खड़ी हुई ।

दीर्घबाहु थोड़ासा सकपकाया—

‘कैसे मालूम हुआ ?’ दीर्घबाहु ने कुछ नहीं सुना था ।

‘मेरे कान बहुत तेज़ हैं’, हिमानी ने विजय की मुस्कान के साथ बतलाया और चली गई ।

दीर्घबाहु अपनी नुकीली मूँछों को उमेठने लगा । कभी सोचता था हिमानी मुझे चाहती है, कभी सोचता था बरफ़ की चट्टान जैसी ठंडी है—निर्णय कुछ भी नहीं कर पाता था । अन्त में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि तकुये की तरह सीधी सच्ची और नुकीली है, और—मेरी जन्म-संगिनी अवश्य किसी दिन होगी ।

थोड़ी देर में अकेला नील उस कमरे में आया । सिर पर एक रंगीन रुमाल बांधे था, तन पर कमर के नीचे तक का बेलबूटेदार कंचुक, जिसके घेरे में छोटे छोटे फुँदने लटक रहे थे, जो कोई भी देखे कल्पना करले कि किसी बड़ी श्रेणी का है । पैरों में सुत्थन और चप्पल । उसने चप्पल नहीं उतारे ।

आते ही हर्ष के स्वर में बोला, ‘मुझे भी पसन्द है ।’

दीर्घबाहु ने भकुये की तरह मुँह उठाकर प्रश्न सूचक मुद्रा अपनाई । नील अपने भीतरी भाव के अनुकूल सिर हिला रहा था ।

नील ने स्पष्टीकरण किया,—‘मुझे हिमानी के साथ तुम्हारा ब्याह करना अच्छा लगेगा, पर है यह कि जब उसकी इच्छा हो तब । उसने जो शर्त लगाई है वह मुझे भी रुची है ।’

दीर्घबाहु का संकोच दूर हो गया। चेहरा खिल गया। दृढ़ स्वर में बोला, जैसे सिर पर लदे किसी भारी कर्तव्य का पालन कर डाला हो,—‘मैंने सब मान लिया है।’

नील ने उसे उत्साहित किया,—‘आचार्य मेघ से जब तुम्हारे सहयोग की चर्चा चली तो उन्होंने तुम्हारी सराहना की थी।’

दीर्घबाहु ने हँसकर अपने पराक्रमों का सार सक्षेप में सुनाया,—‘मैंने इस थोड़ी सी आयु में अनेक बाघ, तेंदुये, रीछ, वराह और न जाने क्या क्या मारे हैं।’

नील ने साथ दिया,—‘तुम्हारे छुटपन का एक हाल तो मैं कभी नहीं भूला। तुम्हारे भुवन में भोज होने को था। स्त्रियाँ घी का कढ़ाव चढ़ाये पुये सेंक रही थीं कि तुमने एक पत्थर कढ़ाई में फेंक दिया! कई स्त्रियों पर घी के बड़े बड़े छींटे जा पड़े और उन्हें फलक पड़ आये।’

दीर्घबाहु की प्रसन्नता ने अधिक हँसी पकड़ी। नील गम्भीर हुआ।

‘अब दूसरे काम करने हैं। पहला तो यह है कि जैसे बने तैसे कपिञ्जल को पकड़ना है। वह नैमिषारण्य की तरफ गया है। उसके साथ और भी अनेक दास भागकर गये हैं। इनके पकड़ने के लिये मेरे सिपाहियों के साथ तुम्हारे भी जावें। तुम्हारे भी बहुत से भगेड़ू बेगारी वहीं कहीं होंगे। उन्हें भी घेरा और पकड़ कर लाया जावे।’

दीर्घबाहु सहमत हो गया।

[ ८ ]

जहाँ से नैमिषारण्य की सीमा का आरम्भ होता था वहीं से छोटी-छोटी नदियाँ, नाले और भाड़ी भंकाड़ की बढ़ती भी दिखाई पड़ती थी। सीमा के निकट वाली नदियों के डबड़ों में थोड़ा थोड़ा जल था फिर ज्यों ज्यों भाड़ी वन की बड़ी वृक्षावलि में समाई पानी अधिक, और हरियाली तो बसेरा सा डाले जान पड़ती थी।

नैमिषारण्य की एक ऐसी ही कुञ्ज के पेड़ की छाया में दिन के तीसरे पहर थका-माँदा कपिञ्जल फटे पुराने कपड़ों की एक पोटली लिये लाठी टेकता टेकता आ बैठा। मन के साहस और शरीर की क्लान्ति के द्वन्द्व की रेखायें चेहरे पर थीं।

बैठा ही था कि जिस पगडण्डी से वह इस स्थान पर आया था वृक्षों के पीछे से उसने किसी के बढ़ते आने का शब्द सुना। उसने तुरन्त अपने को समेटा और ओट लेने को ही था कि एक बूढ़े के साथ एक बुढ़िया और लड़की को आते देखा। कपिञ्जल स्थिर हो गया। जब वे निकट आ गये तब फिर वृक्ष से टिक गया। तीनों वहीं आकर खड़े हो गये। उनमें से एक गौरी थी, दोनों उसके माता पिता। तीनों धूल और पसीने की रेखाओं में सने थे।

गौरी के मुँहयि हुये चेहरे पर हर्ष की एक क्षीण आभा आई। आगे बढ़कर उसने कपिञ्जल को निरखा-परखा और बोली, 'मैंने तुम्हें अयोध्या में देखा है .....'

'मैं अयोध्या का रहने वाला नहीं हूँ,'—कपिञ्जल के बैठे हुये गले से निकला।

गौरी के पिता ने अपनी निर्बल आँखों से जाँचने क चेष्टा की, परन्तु न पहिचान सका।

गौरी की माँ ने चीन्हा लिया; नील के भवन से कुछ दूर रहते हुये भी उसने कपिञ्जल को अयोध्या में कई बार देखा था। मार्ग में सुनती आई थी कि नील इत्यादि के दास भाग खड़े हुये हैं और उनकी पकड़-धकड़ के लिये सिपाही छूटे हैं। मार्ग में साथ के लिये अपने ही नगर के व्यक्ति को पाकर उसको अच्छा लगा। वह सिपाहियों से नहीं डरती थी। पर यह भी नहीं चाहती थी कि कपिञ्जल किसी संकट में पड़े। उसने गौरी पर आँख तरेरी, परन्तु गौरी नहीं समझी।

गौरी ने कहा, 'नहीं नीलपणि के एक दास से सूरत बिलकुल मिलती जुलती है.....'

गौरी की माँ की थकी देह में स्फूर्ति उमड़ी। 'सूरतें तो संसार में बहुतेरों की मिल जाती हैं तो इससे क्या' गौरी की माँ ने टोका।

'नहीं माँ, मैं जानती हूँ....' गौरी ने हठ किया।

गौरी की माँ ने गौरी की ओर मुँह किये हुये कपिञ्जल को सान्त्वना दी,—'चुप रह ! बड़ी जानकार बनी फिरती है। चलो भैया, हम सब एक दूसरे की सहायता करते चलेगे। आश्रमों के पास वाले किसी गांव में कोई का मिल जायगा। बहुत थक गये होंगे, तुम्हारा कुछ बोझ मैं ले लूँ ?'

कपिञ्जल को ऐसा भाव और ऐसे शब्द न जाने कितने समय बाद सुनने को मिले थे।

उसकी थकावट दब गई और पुरुषार्थ मुखरित हो पड़ा,—'नहीं माँ जी, मैं आपका बोझ लूँगा न कि आप मेरा, वैसे मेरे पास है ही क्या ?' कपिञ्जल ने इधर-उधर आहट ली।

गौरी की माँ ने कहा, 'डाकू लुटेरे यहाँ कोई नहीं मालूम होते। अपने पास है भी कुछ नहीं।'।

उसकी बात कपिञ्जल ने समझ ली। वे सब वहाँ से चल दिये।

धीरे धीरे चलकर, गाँव-गाँव बसेरा लेते हुये ये लोग दो तीन दिन में आश्रमों के पास जा पहुँचे। उस दिन दोपहर हो गया था। गौरी को

इस बीच में मालूम हो गया था कि कपिञ्जल कोई विपद ग्रस्त दुखिया है, पर ठीक ठीक नहीं जान सकी थी।

थोड़े से विश्राम के लिये एक कुञ्ज के नीचे बैठे ही थे कि कुछ दूरी के वृक्षों की सघनता के पीछे बहुत से लोगों की भारी पदचाप सुनाई पड़ी। कपिञ्जल चौका और गौरी की माँ भी। गौरी की माँ का संकेत पाकर गमनोद्यत कपिञ्जल वहाँ से तुरन्त चल दिया और कुछ क्षण में विलीन हो गया। गौरी कुछ पूछना चाहती थी तो उसकी माँ ने उँगली से वर्जित कर दिया।

थोड़ी देर में पाँच-छः हथियार बन्द सिपाहियों का एक दल उनके पास आ धमका।

एक ने पूछा, 'एक मनुष्य यहां देखा?'

गौरी के पिता के मुँह से निकला—'ऐ' ?'

गौरी की माँ और गौरी के मुँह से एक साथ,—'कैसा?'

'कौनसा?'

'कपिञ्जल नाम का शूद्र दास, अयोध्या का?' सिपाही ने बतलाया।

गौरी की माँ ने नाहीं की,—'मनुष्य तो बहुत देखे हैं, पर नाम किसी का नहीं जानते...'

'कहाँ देखे हैं?'

'बहुत दूर पीछे।'

गौरी ने मिलाया,—'और न यह जानते हैं कि कौन कहाँ का है। हम तीनों अवश्य अयोध्या के रहने वाले हैं, पर हममें से दास कोई नहीं है।'

'वैसे ही चबड़ चबड़ करने पर लगी है!' माँ ने डाँटा।

सिपाही आपस में कहते हुये चले गये - 'चलो आगे, यहीं कहीं होगा। इन मूर्खों से पता नहीं लगेगा।'

उनके चले जाने पर वे तीनों एक दूसरी पगडंडी पर चले गये । फिर उन्हें कपिञ्जल नहीं मिला क्योंकि चक्कर काटता हुआ भटक गया था ।

कुछ दूर चलकर गौरी और उसके माता पिता वन के एक ऐसे भाग में पहुँचे जहाँ उन्हें कुछ स्त्रियाँ दिखलाई पड़ीं । देह पर रङ्ग-बिरङ्गी कंचुकियाँ और मोटी रंगीन धोतियाँ पहिने हुये फलमूल इकट्ठे कर रही थीं । हँसती जाती थीं, बातें करती जाती थीं । इन तीनों को अपने पास आते देखकर ज़रा चौकन्ना हुईं । परिचय पूछने पर उन्हें उन तीनों की व्यथा और विपत्ति का हाल मालूम हुआ । उन्होंने तुरन्त अपनी टोक-नियों में से इनके खाने के लिये फल बढ़ाये ।

गौरी के पिता ने कहा,—‘तुम्हारा कुछ काम किये बिना यों ही ग्रहण नहीं करोगे ।’

एक लड़की उनमें कुछ अधिक बातूनी थी ।

बोली, ‘तो थोड़े से फलमूल बिनवादो, फिर हमारे घर चलकर विश्राम करना ।’ अन्य स्त्रियाँ चुप रही ।

उन तीनों ने स्वीकार किया । फलमूल के संग्रह पर जुट पड़े । परन्तु उन स्त्रियों ने इन्हें यह परिश्रम अधिक समय तक नहीं करने दिया ।

एक ने उस लड़की से कहा,—‘बहुत हो गया अम्बिका । ये सब दूर से आये हैं । बूढ़े बाबा बहुत थके हुये हैं । इन्हें अपने घर ठौर दो ।’

‘फिर कुछ काम ?’ बूढ़े ने विनय की ।

अम्बिका ने उत्तर दिया,—‘काम भी मिल जायगा । ये...इनका क्या नाम है बाबा ?’

‘इसका नाम गौरी है, मेरी पुत्री है । बड़ी भोली है ।’

‘और मेरा नाम अम्बिका है । ठीक रहा । सौ गायें कोई साल भर चरावे तो दो गायें मज़ूरी में मिलती हैं और दोनों जून दूध पीने को । करोगी गौरी ? मैं भी गायें चराती हूँ, और गायें चराने के समय गीत भी गाती हूँ ।’

‘सब बखान करदे इसी घड़ी ।’ एक स्त्री ने हँसकर कहा, ‘अब लेजा इन्हें अपने साथ, भूखे प्यासे होंगे बिचारे । देखो तो इनका शरीर कैसा हो गया है ! और यह गौरी, जैसे कुम्हला रही हो ।’

गौरी प्रतिवाद के लिये हँसी । उन स्त्रियों को गौरी बहुत भली लगी ।

उस स्त्री ने बूढ़े और बुढ़िया को काम बतलाया,—‘तुम्हारे योग्य भी काम मिल जायगा । ऊन का बांटना, रुई का घुनना कातना, कंडों का थापना, ईंधन का इकट्ठा करना और न जाने कितने काम हैं । जितना बने उतना करते रहना । अन्न और कपड़े मजूरी में मिलेगे । एक घर भी रहने को मिल जायगा ।’

वे तीनों प्रसन्न हो गये । धन्यवाद देते हुये अम्बिका के साथ गाँव चले गये ।

[ ६ ]

कपिञ्जल कभी इस दिशा में तो सिपाही उस दिशा में इस तरह उस वन खण्ड में उन्हें चक्कर काटते हुये काफी देर लग गई। कपिञ्जल को गाँव का मार्ग नहीं मालूम था, परन्तु सुना था कि यहीं कहीं आस-पास है। ऋषियों के आश्रम भी दूर नहीं थे, कपिञ्जल नहीं जानता था। उन स्त्रियों का कण्ठ स्वर सुनकर उन्हीं की दिशा में बढ़ा।

स्त्रियाँ फल मूल संग्रह कर रही थीं और एक गीत भी गाती जाती थी जिसका भावार्थ यह है—

‘हम नाना प्रकार के सत्कर्म करते हुये सौ बरस जीवित रहें; हमारा बल पराक्रम और ज्ञान बढ़े; फलफूल और गो धन से भरी पृथिवी सदा हरियाती रहे और मुस्कराती हुई शरद ऋतु सौ बरस तक हमारी आँखों के सामने बार बार आती रहे; हमारे देखने और सुनने की शक्ति सौ बरस तक ज्यों की त्यों सशक्त बनी रहे; स्वजन और धन धान्य सदा भरे पूरे रहें; और हम अदीन होकर कल्याणकारी संकल्पों को सदा मन में बसाये रहें।’

कपिञ्जल एक पेड़ की आड़ में ठिठक गया। कुछ समय के लिये अपनी दीन हीन स्थिति को भूल कर दंग रह गया—यहां की ये स्त्रियाँ उन गीतों को गाती है जिनको वहां के पुरुष दूसरों से बचा बचा कर न जानें कितनी जटिल रीतियों के साथ गाते हैं ! गाने का ढंग अवश्य इनका उस श्रेणी का नहीं है, परन्तु सिध्दाई का निरालापन कितना है !!

कपिञ्जल और आगे नहीं सोच सका। एक स्त्री फल मूल का संग्रह करती हुई उसके पार्श्व में आ गई। देखते ही तन कर सीधी खड़ी हो गई।

कर्कश स्वर में बोली, ‘तुम कौन ?’ वह डरी नहीं।



कपिञ्जल थरथरा गया। उसे आड़ छोड़नी पड़ी। अन्य स्त्रियां सतर्क होकर आत्मरक्षा और आक्रमण के लिये सिमट आईं।

‘मैं विपद का मारा एक साधारण दीन जन हूँ। यहां किसी आश्रम की छाया और शरण मिल जाय तो प्राण बच जायेंगे।’ कपिञ्जल का गला कांप रहा था।

‘इस लम्बे चौड़े वन में ऋषियों के आश्रम हैं, गांव हैं और इधर उधर भगेड़ चोर लुटेरों के भी अड्डे हैं। हम किसी से नहीं डरतीं। ठीक ठीक बतलाओ तुम कौन हो?’

‘ठीक ठीक मेरी पीठ के घाव बतला देगे।’

कपिञ्जल ने अपने फटे कपड़े को थोड़ा सा और उघाड़ा। स्त्रियों ने देख लिया, पिघलने लगीं।

‘किसने मारा तुम को?’

कपिञ्जल ने थोड़े में अपनी दासता का इतिहास और वर्तमान दुर्गति का कारण बनला कर कहा, ‘तीन दिन से अधपेटा हूँ बहिनो। किसी ऋषि का आश्रम निकट ही तो बतलादो, चला जाऊँ।’

‘आश्रम कुछ दूर है, हमारा गाँव वह रहा।’

‘नहीं बहिन। उस साहूकार के गण मेरे पकड़ने के लिये आये हैं। गांव से बांध ले जायेंगे, आश्रम में रक्षा हो जायगी।’

एक स्त्री ने हाथ का संकेत करके बतलाया, ‘धौम्य-ऋषि वहां हैं। सबसे निकट।’

कपिञ्जल चलने लगा तो कुछ स्त्रियों ने उसे खाने के लिये फलमूल बढ़ाये। भूख बहुत खरी थी ही उसने ले लिये और खाने बैठ गया। खाते खाते उसने जानना चाहा कि किसके घर क्या होता है। उन्होंने बतलाया कि सब आर्य स्त्रियां हैं—किसी के घर दर्जी का काम होता है, किसी के घर लुहारी का, और किसी के यहां बुनकरी का, घुनाई का, बढ़ई का; खेती और पशु पालन तो सभी के यहां।

कपिञ्जल काफ़ी खा चुका होगा जब उसे एक दिशा में कई लोगों की आहट मिली । तुरन्त कांप कर खड़ा हो गया ।

बोला, 'वे आ रहे हैं ।'

एक ने धीरज दिलाया, 'मत डरो, हम उस दिशा में जाती हैं ।'

दूसरी ने ढाढ़स दिया, 'उस पुरानी सीख को न भूलना—उठो ! जागो !! और बड़ों के पास जाकर सीखो !!! चले जाओ वहीं कहीं ।'

वे सब उस दिशा में चली गईं जिससे आहट आ रही थी । कपिञ्जल दूसरी दिशा में चला गया ।

स्त्रियां थोड़ी ही दूर गई होंगी कि उन्हें पांच छः सशस्त्र सिपाही मिले ।

एक सिपाही ने पूछा, 'तुम लोगों ने हट्टाकट्टा सा सांवला दास देखा है ?'

एक बोली, 'दास ! और हट्टाकट्टा सा !! यहां कोई आस-दास नहीं । चोर लुटेरे दूर उस दिशा में कही होंगे ।'

'कितनी दूर ?'

'हम क्या नापने गईं ? होगा कोई पाव योजन, आधा योजन ।'

'या एक योजन...कौन जानें ।'

उन सबों के स्वर में तीखापन था ।

'और गांव ?'

'वह रहा पास ।'

जब सिपाही चले गये स्त्रियों के नेत्रों और होठों से विजय की मुस्कानें भर पड़ीं ।

[ १० ]

नैमिषारण्य के एक दूसरे खुले भाग में फलदार पेड़ों की कुन्जें थीं और ऋषियों के आश्रम । फूल से छाई हुई हवादार कुटियां जिनमें आंधी, मेह बूंद और धूप से बचने का भी प्रबन्ध था । बीच-बीच में शाक भाजी के छोटे छोटे खेत थे । इनसे हट कर आश्रमों की छोटी बड़ी गोशालायें भी थीं ।

धौम्य ऋषि का आश्रम इस वन खण्ड के किनारे था । इससे थोड़ी सी ही दूरी पर अरण्य की सघनता का आगम हो गया था ।

सन्ध्या हो चली थी । अस्ताचलगामी सूर्य की कोमल किरणों पर आश्रमों के हवन के धुआँ का पुञ्ज ओढ़नी सी उड़ा रहा था । वृक्षों की लम्बी छाया हरी सुनहली दूबा पर मन्थर पवन के भोकों के साथ मन्द-मन्द धिरक रही थी । कहीं कहीं से आने वाला ऋचाओं का गान चिड़ियों की चहक के साथ गुँथ कर उस छाया को स्फूर्ति सी दे रहा था ।

धौम्य संध्या कार्य से निबट कर एक वृक्ष के नीचे पड़ी हुई छोटी-सी पीढ़ी पर जा बैठे । उनके अन्य शिष्य तो इधर-उधर के कार्यों में व्यस्त थे, तीन उनके पास आ बैठे; आरुणि, वेद और कल्पक—ये तीन मुख्य थे ।

धौम्य की अवस्था कितनी होगी, कोई नहीं कह सकता था । कम से कम एक सहस्र के समझे जाते थे । सिर दाढ़ी के बाल भूरे थे, परन्तु आँखों का तेज और देह की लहरें एवं चमक बतलाती थीं कि नौजवान हैं । कोपीन पहिने थे । कटि में मुञ्ज । काठ के पीढ़े के नीचे खड़ाऊँ रखी थीं । उनकी आयु को चाहे कोई भी न जानता हो, परन्तु स्वभाव विख्यात था ।

नित्य की भाँति वे जो प्रवचन संध्या के समय किया करते थे इस समय भी किया—

‘अब तुम प्रातःकाल किये संकल्पों को सोचो, फिर कृत्यों का स्मरण करो—कितना सोचा था, कितना कर पाया?’

तीनों शिष्यों के सिर के बाल लम्बे थे। तीनों स्वस्थ थे। आरुणि अधिक पुष्टकाय। नारंगी रंग के कोपीन उनके स्वास्थ्य और चेहरों की अनुपातमयी रेखाओं को शरद संध्या की अरुणिमा में दीप्ति दे रहे थे।

ऋषि की आँख संध्या के क्षितिज पर थी। वेद पहले बोला, ‘गुरुदेव, मैंने जितने संकल्प किये थे, उनमें से एकाध ही पूरा होने से बचा होगा।’ वेद प्रकृति का अधीर था, परछिद्रान्वेषण करने में चुस्त, अपने दोष देखने में सुस्त, दूसरों की छोटी छोटी सी बातों पर हँसने वाला, पर उसकी भूल पर कोई हँस दे या उसके हठ में कोई आड़े आ जावे तो उसकी हिंसा जाग पड़ती थी। वैसे बहुत कुशाग्र बुद्धि और अध्यवसायी।

धौम्य ने आरुणि से प्रश्न किया।

आरुणि ने उत्तर दिया, ‘पूरे प्रकार से एक संकल्प को भी कृत कार्य नहीं कर पाया।’

आरुणि मितभाषी था। जितना करता था उससे कम बतलाता था। धुन का पक्का, ऊपर से रूखा, भीतर बहुत उदार प्रकृति का।

जरा सा भिन्न कर बोला, ‘गाँव की मंगल वीथि का जो मार्ग बना है उसको आज भी भलीभाँति स्वच्छ नहीं कर पाया।’

‘गाँव के पशु वीथि में बार बार गोबर जोर देते हैं ! इधर गाँव वालों में कर्तव्यशीलता मानो है ही नहीं।’ वेद ने हँसी को दबाकर टिप्पणी की।

धौम्य अपने होनहार शिष्यों को बोलने की स्वतन्त्रता दिये हुये थे। जब उसका दुरुपयोग देखते थे तब अनुशासन में चूकते न थे।

‘हैं। तुमने कल्पक?’ धौम्य ने तीसरे से पूछा। यह भी कुशाग्रबुद्धि और अध्ययन शील था, परन्तु आरुणि के धीरे व्यक्तित्व और वेद की मनमौजी बातों के बीच उसका मन डाँवा डोल हो जाया करता था,

कभी इधर; कभी उधर । कल्पक ने बतलाया,—‘थोड़ासा सोचा था, वह कर सब लिया—गांव से भिक्षा ले आया और वेद पाठ करता रहा।’

‘कल से एक महीने तक वन में फल संग्रह करने जाया करो’ धौम्य ने आदेश किया ।

आरुणि ने पहले स्वस्ति की,—‘जो आज्ञा गुरुदेव’

‘नहीं, तुम नहीं, वेद जाया करेगा ।’

‘मैं अकेला या मेरे साथ कल्पक भी ?’

‘नहीं अकेले ही ।’

वेद को चिन्ता लगी । संध्या का सूर्य अपनी किरणों समेट चुका था । अंधेरा सिमट उठा था ।

उसी समय कपिञ्जल निकटवर्ती कुन्ज के एक वृक्ष के पीछे आकर खड़ा हो गया । उसने मन ही मन धौम्य को आदर समर्पित किया ।

‘उस घने जङ्गल में बाघ, सुअर, और कभी कभी हाथी भी सामने आ पड़ते हैं,—वेद की हँसी-चली गई थी ।

धौम्य ने समझाया,—‘तुममें संकल्प की दृढ़ता नहीं है । उसकी साधना इसी प्रकार होगी । दृढ़ संकल्प की साधना कामधेनु गाय है । निःस्वार्थ भाव ही उसे दोह पाता है । डरो कभी मत । मनको हीन और क्षीण कभी मत होने दो । वायु और अन्तरिक्ष किसी से डरते हैं ? मौत, सत्य और शौर्य किसी से भय खाते हैं ? भूत और भविष्य किसी से भयभीत होते हैं ? फिर तुम्ही क्यों किसी से डरो ?’

वेद स्पन्दित हुआ । उसने धौम्य की बात को गांठ में बाँधा । भाव प्रवण था, फिर आगे जितना निभा सके । धौम्य जानते थे ।

कपिञ्जल के भी कानों में धौम्य की बात पड़ी, और, उसके हृदय में जाकर बैठ गई । उसी समय उसने अपने पीछे आहत पाई और मुड़कर देखा तो नील के सशस्त्र सिपाही उसी पर टूट पड़ने के लिये आ रहे हैं !

कपिञ्जल दौड़कर धौम्य के सामने आया और उनके चरणों में गिर पड़ा ।

‘आपकी शरण में आया हूँ ऋषिवर, अभयदान दीजिये ।’  
 शिष्य चकित हुये । सिपाही आकर थोड़ी दूर पर ठिठक गये ।  
 धौम्य ने अभय मुद्रा का हाथ उठाया—  
 बोले, ‘डरो मत । कौन हो ?’  
 ‘अयोध्या का एक दीन दरिद्र शूद्र, दास ।’  
 ‘सुखी रहो ।’ धौम्य ने सिपाहियों से पूछा, ‘तुम कौन ?’  
 उन्होंने परिचय दिया, — ‘अयोध्या के प्रसिद्ध श्रेष्ठी नीलपरिण के  
 सिपाही हैं हम लोग । यह उनका दास है...’

परिचय पूरा नहीं हो पाया था कि आरुणि उठ खड़ा हुआ । इसके  
 पहले ही वेद लपक कर उन लोगों के पास जा पहुँचा था ।

‘आश्रम में कैसे घुस आये जी ?’ उसने चुनौती दी ।

धौम्य ने नहीं रोका ।

एक सिपाही ने कुछ धृष्टता के साथ उत्तर दिया, ‘यह हमारे स्वामी  
 का दास है । रिन चुकाया नहीं, यहाँ भाग निकला है । दूसरे दासों  
 को भी बहका भड़का ले आया है ।’

कपिञ्जल गिड़गिड़या,—‘मुझे बेभाव, मारा पीटा है ।’

‘यह भागता नहीं तो और क्या करता ?’ धौम्य ने सघे हुये स्वर  
 में कहा ।

अब आरुणि अपनी बलिष्ठ बाह को तान कर बोला, ‘यह महर्षि  
 धौम्य का आश्रम है । जाओ यहाँ से ।’

‘लौट जाओ । यहाँ से तो इस दुखी शरणागत को तुम्हारा राजा  
 रोमक भी पकड़ कर नहीं ले जा सकता ।’

‘हटो !’ उन तीनों शिष्यों ने मुक्के तान कर लौट पड़ने की दिशा  
 पकड़ने वालों को दिखलाई ।

नील के अनुचरों के हाथ पैर ढीले पड़ गये और हथियारों की  
 ठसक मोथरी हो गई । वे सब चले गये ।

‘तुम भूखे होगे ?’ धौम्य ने पुचकार के स्वर में कपिञ्जल से प्रश्न किया ।

कपिञ्जल का गला भर आया था —

‘मैं भूखा नहीं हूँ । वन में फल मूल मिल गये थे । कुछ साथ लाया हूँ । मुझे अपनी सेवा में लेने की दया करें तो मैं अमर हो जाऊँगा ।’

धौम्य ने बारीकी के साथ कपिञ्जल को परखा ।

‘अर्थात्—मेरे शिष्य बनना चाहते हो ?’ वेद और कल्पक ने अपनी तलानि युक्त मुस्कान को धौम्य से छिपाने की चेष्टा की । धौम्य से वह नहीं छिपी ।

‘मैं शूद्र हूँ महर्षि, अपात्र और असमर्थ—’

‘परन्तु मैं तुम्हारे भीतर कुछ और देख रहा हूँ जो विरलों में ही दिखलाई पड़ता है ।’

अब वेद और कल्पक सिकुड़े ।

कपिञ्जल हिचकिचाया,—‘देव, बिना राजा की आज्ञा के...या... अर्थात् अनुमति के...इस आश्रम में कैसे मैं—’

धौम्य ज़रा सा हँसे । अब आरुणि मुस्कराया, जैसे किसी लम्बे तड़ङ्ग आम पर मोर आ गया हो ।

धौम्य ने कहा,—‘तो तुम शास्त्र की भी एकाध बात जानते हो । मैं शास्त्र की अनुपयुक्त या अनुचित बातों को नहीं मानता । श्रुति की एक बात सब के लिए सदा लागू है—ऊपर उठना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है । मैं तुमको अपना शिष्य बनाऊँगा ।’

कपिञ्जल की कृतज्ञता का पार न रहा । उसे लगा जैसे यकायक बहुत ऊँचे उठ गया हो ।

धौम्य ने उसकी ऊँचाई को साधा—

‘तुमको योग सिखलाऊंगा । योगी बनोगे, पढ़ना लिखना सीखोगे— सब कुछ सीखोगे ।’

‘धन्य गुरुदेव !’ उन तीनों शिष्यों के मुंह से निकला—आरुणि का स्वर अधिक गम्भीर था, वेद और कल्पक का अपेक्षा कृत निर्बल ।

सन्ध्या हो चुकी थी । अँधेरे की चादरों पर चादरें पूर्व दिशा की ओर से इकट्ठी होती चली आ रही थीं ।

धौम्य बोले, ‘अब सब कुटी में चलो और रात्रि की गोद पकड़ो । वह शान्ति देती है, सुलाती है, व्यथा हरती है । सूर्य की रश्मियाँ प्रकृति के अञ्चल में जो सामर्थ्य छोड़ जाती हैं उसे रात्रि निद्रा के शून्य में पक्षपात रहित होकर बाँट देती है । अपने फल उठा लो कपिञ्जल, भोर खा लेना ।’

कपिञ्जल की पोटली खुल गई थी और उसमें से नारङ्गी, सेव और केले बिखर गये थे ।

कपिञ्जल ने उन्हें बीनते हुये बहुत नम्र स्वर में निवेदन किया, ‘कुछ फल गुरुदेव ग्रहण करलें.....’

धौम्य हँस पड़े । वेद की भ्रुकुटि तन गई । धौम्य ने कपिञ्जल की पीठ पर हाथ फेरते हुये कहा,—‘आश्रम-प्रवेश-संस्कार के उपलक्ष में एक केला लूंगा । दे दो ।’



[ ११ ]

कपिञ्जल को एक कुटी में स्वच्छ स्थान मिल गया और वस्त्र भी । दूसरे दिन स्नान के उपरान्त कपिञ्जल को गेरुए रङ्ग की कोपीन दी गई । धौम्य ने उसे योग की कुछ क्रियायें सिखलाई और अन्त में बोले, 'तुमको जो कुछ बतलाया है उसका लगातार अभ्यास करो । यह न भूलना कि ध्यान धारी निडर ही पराक्रमी होता है । एक दिन आयगा जब तुम्हें अपने भीतर चमत्कार दिखलाई पड़ेगा । विद्या आती है नम्रता से, प्रश्न पर प्रश्न खोज पर खोज करने और दूसरों की सेवा करते रहने से ।'

कपिञ्जल ने गुरु के पैरों में अपना माथा रक्खा और उसी समय से निर्दिष्ट कार्य में जुट गया । अब उसके मन में न नील का डर था न किसी और का ।

नील के भवन और व्यवसाय संस्थान में जो चहल-पहल रहती थी उसका चौथा अंश भी न रहा । बहुत सा सामान इधर उधर बिखरा पड़ा था । उठाने धरने वालों की कमी के कारण भूखसी मार रहा था । कुआँ खेती का भविष्य भी अन्धकार में जा पहुँचा था । खेत में कहीं हल पड़े थे, कहीं बैल भटक रहे थे । जिन खेतों में गेहूँ और जवा की फ़सल चार चार-छः छः अंगुल ऊपर निकल आई थी वहाँ क्षेत्र स्वामियों के ही बैल उसे चरे जारहे थे । देखने भालने वाला कोई नहीं । किसी कुर्ये पर सूखा चरसा पड़ा था जिसके आंसू तक सूख गये थे !

राजा और सामन्तों की खेती भी संकट में पड़ने वाली थी ।

राजा के कुर्ये से पानी दिये हुये एक खेत में दो महीदार काम करते करते कह रहे थे—

‘बेगार करते करते मरे ही तो जाते हैं ।’

‘भुगतो जब तक निकल चलने के लिये कोई और मार्ग नहीं मिला है ।’

राजा अपने सिद्धान्त दूसरों के प्रति बर्तने पर तो उतारू हो जाता था, परन्तु निज के काम में उनका व्यवहार करने की लगन उसमें न थी।

नील और मेघ के वर्ग से सतर्क रहने लगा था, फिर भी अपने व्यवहार की त्रुटियों की ओर उदासीन था।

नील के भवन के सामने चौड़ी सड़क के पार उसकी पशुशाला थी जिसमें उसकी गायें, भैंसें, खच्चर और घोड़े बँधते थे। पशुशाला बड़ी थी। एक भाग को एक लम्बा चौड़ा कमरा घेरे हुये था जिसमें घास भरी रहती थी। पशुओं के सामने चारा डालने के लिये कोई नहीं ! जो थोड़े से नौकर रह गये थे वे क्या क्या करते ? एक दिन दर्प में आकर बाप-बेटी आत्मनिर्भरता के आकस्मिक मद में पड़ गये और पिल पड़े उस कमरे में से घास निकाल निकाल कर पशुओं के सामने डालने पर ! 'अरे रे रे ! यह क्या ? यह क्या ?' कुछ नौकर दौड़ पड़े। ये दोनों पसीने में डूबे हुये और घास के छोटे छोटे तिनकों से लिपटे हुये थे। इस दर्प का प्रभाव बहुत ही क्षण स्थायी रहा। उन्हें शीघ्र अवगत हो गया कि ऐसे काम नहीं चलेगा।

'कुछ वेतन भोगी नौकर रखने पड़ेंगे,' नील ने हिमानी से कहा।

हिमानी को सारी परिस्थिति काँटे सी चुभ रही थी।

'रखना ही पड़ेंगे। राजा की ढिलाई और अयोग्यता के कारण यह भोगमान भुगतनी पड़ रही है। अपना कारबार जब भी सुधरे उसके तो हर एक काम में आग लगानी पड़ेगी। देखूँगी।'।

'हाँ देखूँगा,' नील ने धीमे और अधिक निश्चय के स्वर में समर्थन किया।

कन्जूस तो थे ही, प्रतिहिंसा की भावना ने उन दोनों को और भी सङ्कीर्ण बना दिया।

उसी दिन जब घास के तिनकों और पसीने को पोंछ-पाँछकर दूर किया ही था कि पड़ोस की एक दरिद्र स्त्री आई।

नील को उसके आते ही लगा जैसे काँटों से लदी आँधी आ गई हो । हिमानी से पूछा, 'यह कौन घुसी आ रही है यहाँ ?'

'होगी कोई, मैं नहीं पहिचानती,' हिमानी ने कहा और रुखाई के साथ उस स्त्री से बोली, 'क्या बात है ?'

स्त्री ने रुआँसे स्वर में उत्तर दिया, 'मेरा पति घर में बीमार पड़ा है । दवा के लिये दाम नहीं । भीख माँगती नहीं । कुछ उधार दे दो ।'

'हूँ ! उधार दे दो !! राजा से लो जिसका यह कर्तव्य है । हमारे पास देने के लिये कुछ नहीं ।' नील ने अपनी घृणा व्यक्त की ।

'जाम्रो यहाँ से,'—हिमानी कुढ़ी । वह नील से किस बात में कम थी ?

'धरे रहो अपनी निधि और निरख-निरखकर जुड़ाते रहो लालच भरी छाती को,'—स्त्री चिड़चिड़ाती हुई चली गई ।

'है कैसी ये ! चिथड़े तो पहिने है । पर घमंड कितना ! ओफ !! पापा, क्या दिन आये हैं !!!'

'रोमक के राज्य में जो कुछ भी न हो थोड़ा है, नील ने उस दरिद्र स्त्री के आहत स्वाभिमान को भी राजा के मत्थे मढ़ा ।

उसी दिन संध्या समय नैमिषारण्य से उसके वे अनुचर लौटे । नील को सारा समाचार सुनाया । नील जानता था कि नैमिषारण्य के ऋषियों पर किसी का बस नहीं । वह और उसके सजातीय ऋषियों मुनियों से अपने को दूर रखते थे । उनके लिये मन में कोई श्रद्धा नहीं थी । नील ने मेघ से कहा । शायद कुछ कर सके, क्योंकि वह मेघ की शक्ति को नापतौल से कहीं अधिक मानता था ।

मेघ ने धीम्य के लिये केवल इतना कहा, 'बड़ा उल्टा मनुष्य है, बहुत आयु का हो जाने के कारण सनकी हो गया है ।' फिर तान रोमक पर आकर टूटी,—'इसका अड़्डा मिटाया कि सब कुछ सीधा हो जायगा ।' वे दोनों साधनों और उपायों पर बात करते रहे ।

[ १२ ]

जनपद की आर्थिक अवस्था बराबर बिगड़ती चली जा रही थी। राजा पशु-बलि के विरुद्ध था। अन्न, घी और चन्दन ही होमता था। उसने ऐसे यज्ञ पर यज्ञ किये, परन्तु कुछ न हुआ। अग्निदेव को कुपच-सा हो गया !

आर्यों का एक सम्प्रदाय इस प्रकार के यज्ञों के भी विरुद्ध था, उसने व्यङ्ग्य कसे। अनेक जन की श्रद्धा यज्ञों पर से हटने लगी। रोमक को इसकी चिन्ता न थी। उसे चिन्ता थी जनता में बढ़ते हुये असन्तोष की।

इस असन्तोष को दूर करने के लिये रोमक ने कुछ यत्न किये, परन्तु उनके करने में तारतम्य न था और न विवेक से काम लिया गया। सौ कुर्ये खुदवाने का संकल्प किया; संकल्प ने निश्चय का रूप पचास पर और प्रण का पच्चीस पर पकड़ा ! पन्द्रह खुद गये, दस अधखुदे पड़े रह गये !! तालाबों से कुल्याओं के खुदवाने बनवाने की भी यही गति हुई। रोमक ने उत्साह में आकर निजी कोष खोला—टीन, तांबा, लोहा, पत्थर इत्यादि की खानों से जो कर आता था वह राजा का निजी धन समझा जाने लगा था। मजूरों को अच्छी मजूरी मिली। असन्तोष में कमी आई, परन्तु फिर उसने अपना हाथ सिकोड़ना आरंभ जो किया तो असन्तोष दुगुना हो गया। इस काम को पकड़ा, उसे छोड़ा इस नीति में उसे मितव्ययता दिखलाई पड़ती थी, परन्तु यह धारा उसे बहुत घाटे की पड़ी।

श्रमिकों की मजूरी कम कर दी। उन्होंने काम आधा कर दिया, राजा ने कोष का प्रदर्शन किया तो उसके शत्रुओं की संख्या बढ़ने लगी।

हाट बाज़ार का हाल बुरा हो गया। बहुत सी दूकानें तो वैसे ही बन्द हो गई थीं; जो किसी बेबसी के कारण खुलती भी थीं वे बन्द होने के दिन गिन रही थीं। लोगों की क्रय शक्ति बहुत क्षीण हो गई थी।

दूकानदार, ग्राहकों को पुकारता—‘बहुत सस्ता कर दिया है’ तो वे अनसुनी कर देते। सामान के देखने तक की इच्छा उनके मन में नहीं जागती थी। पण्यशालाये भिनकती रहती थीं।

अयोध्या नगर के महापथों तक का हाल बहुत बुरा हो गया था। राजा ने बरसों से नहीं सुधरवाये थे। सड़कों के जल छिड़काव और रात में स्तम्भ दीपों के प्रकाश की व्यवस्था युगों से राजा के कर्तव्य में मानी जाने लगी थी। यह सब बन्द हो गया। भोजगृहों और जुआघरों से जब लोग अन्धेरी रात में घर लौटते थे और सड़क के गड्ढों में गिर कर धूल समेटने लगते थे तब खुलकर राजा को गाली देते थे—

‘मर गये ! मर गये !! सत्यानाश हो जाय इस राजा का !!’

राजा के मुँह पर भी खरीखोटी कहने का साहस साधारण जन के मन में बढ़ गया।

रोमक राजभवन में पड़ा नहीं रहता था और न वह विलासी था। वह तत्कालीन वातावरण की उपज और अपनी प्रकृति का खिलौना था।

मजदूर काम चाहे कुछ कम करे, पर मजूरी कम ले, खेलता नाचता रहे चाहे पेट को खाली रखे—मजदूरों के साथ उसका इस प्रकार का बर्ताव था।

एक दिन एक तालाब खुदाई के काम पर गया। मजदूर ठिकाने से हाथ-पैर नहीं चला रहे थे। तो भी रोमक ने उनकी पीठ ठोकी,—‘खूब कर रहे हो। तैयार होने पर इस ताल का नाम भुवन सागर रखूँगा ठीक है न ?’

कुछ ने हमीं का सिर हिलाया, कुछ एक दूसरे की तरफ देखने लगे।

‘यह काम हो ले तो फिर नहरें खुदवाऊँगा। किसी के लिये भी काम की कमी नहीं रहेगी।’

मजदूरों का उत्साह नहीं जागा।

‘मजूरी भले कुछ कम मिले, क्योंकि भाई मेरे पास श्रैत्र और धन की बहुत कमी हो गई है, परन्तु काम तो तुम्हें मिलता रहेगा।’

‘जो कुछ मिल जाता है उसी में तो हमारा पेट नहीं भरता ।’

‘तो मैं क्या करूँ ? यह सब तुम्हीं लोगों के लिये तो कर रहा हूँ । तुम्हारे यहाँ अपनी अपनी कुआँ खेती भी तो होती है । परोपकार का भी थोड़ासा ध्यान रखो ।’

‘पहले बेगार में आपके दस निवर्तन जोतते थे तो अब हमें दस से तीस जोतने पड़ते हैं ! पहले लगान में उपज का सोलहवाँ भाग लिया जाता था, फिर दसवाँ हुआ, उसके बाद छठवाँ, और अब चौथाई लिया जाने लगा है ! उधर अकालों की विपत्ति, इधर बढ़े लगान का बोझ !!’

पहले थोड़े से लोग बातचीत में भाग ले रहे थे, फिर इनकी संख्या बढ़ गई । चायँ चायँ होने लगी । रोमक ने सोचा किसी ने बहकाया है । पूछा तो रौरा मच गया ।

एक ने गला फाड़ कर कहा,—‘हमारे पेट ने ।’

डाँट फटकार व्यर्थ थी, इसलिये रोमक ने फुसलाया—

‘अरे भाई यह सब तो होता ही रहेगा, चलता ही रहता है—चलो तुम सबको आज से सभा-प्रेक्षिणी में और खुले में नर्तकियों के नाच, नटों के नाटक और खिलाड़ियों के खेल दिखलाऊँगा ।’

भोले भाले श्रमिक राजा को ही अपनी विपत्तियों का एक मात्र कारण नहीं समझते थे,—भाग्य या दुर्भाग्य का भी तो लम्बा हाथ है । असन्तोष की धारा आमोद प्रमोद की लहर में पलट गई ।

सभा-प्रेक्षिणी—आमोद प्रमोद के लिये सार्वजनिक भवन—कुछ दिनों खचाखच भरा रहा । फिर वह लहर ठडी पड़ गई । मध्यम श्रेणी और ऊँची श्रेणी के विचारकों में एक धारणा बनने लगी—रोमक मानव-चरित्र के ध्वंस करने की धुन में है !

समाज में जुए का रिवाज था ही, अब उसकी व्यापकता में घनत्व भी आ गया । जुये के लिये कोई बराबरी वाला न्योता भर दे दे फिर इनकार करने का किसमें साहस ? जो इनकार करदे वह घोर कायर ! और उस युग में कायर से बढ़ कर तो कोई और गाली कदाचित ही रही हो ।

परन्तु बालकों के लिये यह नियम लागू नहीं था । चिन्तकों ने प्रथ की निन्दा भी की, फिर भी उन दिनों उसका बहुत प्रभाव नहीं पड़ा ।

दीर्घबाहु ने किसी के सुभाव पर या अपनी ही समझ की उपज से एक दिन भुवन को जुआ खेलने के लिये निमन्त्रित किया । आवारा सा हो ही रहा था, माता पिता से छिपाकर उसके घर जुआ खेलने पहुँच गया और ताव में आकर दाँव पर अपना कंठा, वलय इत्यादि सब हार गया ।

तब दीर्घबाहु ने प्रस्ताव किया, 'अबकी बार वह भूमि लगा दो दाँव पर राजकुमार, जो तुम्हारे पिता जी ने मुझ से जीत ली थी ।'

भुवन क्षुब्ध होकर खड़ा हो गया । बोला, 'वह मेरे पिता की है । उसे दाँव पर नहीं लगा सकता ।'

'तो अपनी देह को लगा दो । भागते कहाँ हो ?'

'चुप !'

'चुप बे ! छोकरा कहीं का !!'

भुवन ने जूते पहिनते पहिनते चोट पर चोट की,—'एक दिन जूते से सिर गंजा कर दूँगा तेरा,' और भाग-गया । वह पकड़ा नहीं जा सका ।

दीर्घबाहु के बिना जूते कें ही जूते से पड़ गये—उसके मन में विष की गाँठ बँध गई । रोमक के प्रति असन्तोष को गहरा करने में उसने भी अपने को समर्पित कर दिया ।

बढ़ते हुये असन्तोष को हलका करने के लिये रानी ममता अपने ढङ्ग पर कुछ और कर रही थी । रोमक ने अन्न का बाँटना बहुत कम कर दिया था, ममता ने फिर बढ़ाया और काम को अपने हाथ में लेकर सन्तुलन और विवेक से नित्य अन्न वितरण करने लगी । दे चाहे थोड़ा थोड़ा, परन्तु निराश किसी को नहीं लौटने देती थी । रोमक उसके काम में बाधा नहीं डालता था । उसने अपने अन्नागार को अक्षुण्ण बनाये

रखने का एक उपाय ढूँढ़ निकाला । वह कुछ चुने हुये लोगों के गुप्त भांडारों को पकड़ पकड़ कर अपने में मिलाने लगा—दीन दुखियों को बाँट देने के लिये किया हमने यह !

एक दिन नील पणि की भी घिराई हुई, परन्तु वह प्रबचतर बैठा, इसलिये राज कर्मचारी को चुपचाप लौट-आना पड़ा । इसने नील और उसके वर्ग वालों के लिये चुनौती का काम किया । राजा ने तै किया कि फिर किसी दिन देखूंगा इसे ।

अन्नागार के सामने नित्य की तरह एक दिन ममता एक बड़ी भीड़ को अन्न बाँट रही थी । भुवन घोड़े पर सवार आया । दालान के एक मोटे खम्बे से घोड़े को बाँध कर ममता के पास जा बैठा । हाथ में चाबुक लिये था । उसे कभी इधर नचाता, कभी उधर । जिस दिन वह दीर्घबाहु से हारा उसी दिन से ममता की आँख उस पर कुछ कड़ी रहने लगी थी, परन्तु स्नेह के हाथ में अनुशासन की लगाम बहुत दिनों एक सी कड़ी नहीं रह सकी । तो भी उसने भुवन को शान्त रहने के लिये तरेरा ।

भीड़ में अधीरता की भड़भड़ाहट थी । ममता ने समझाया, 'घबराओ मत, धीरज धरो । ये दिन भी नहीं रहेगे । धीरज ही मनुष्य का सच्चा साथी होता है ।'

भीड़ के पिछले भाग में एक अध-बहरा खड़ा था और उसके निकट दो दाढ़ी मूँछ वाले युवक । एक गोरा एक सांवला ।

गोरे युवक ने अधबहरे के कान में कहा, 'कह दो कि धीरज से भूख तो मिटती नहीं ।' अधबहरे ने दुहरा दिया ।

भीड़ के बहुत से लोगों को अच्छा लगा ।

अन्न बँटने के साथ ही असन्तोष की लहर में कुछ प्रचंडता आई ।

ममता ने सँभालने का प्रयत्न किया,—'कुल्याओं और कुओं के खुदवाने की योजना की जा रही है । खेतों पर बैधियाँ डलवाई जा रही हैं । एक बार पानी बरसा नहीं कि फिर बरसों आकाशी पानी के लिये न भीकना पड़ेगा, न हाथ जोड़ने पड़ेंगे ।'



उस गोरे युवक ने फिर बहरे के कान में डाला, 'कह दो—तब तक क्या खावें ? किसे खावें ?'

'महाराज के अन्न भांडार से अन्न मिलेगा । कुछ अपनी खेती भी करते जाओ ।'

उसने फिर कान में फूँका, 'महाराज बेगार कराते हैं सो वह बन्द होनी चाहिये' और वहरे ने दुहरा दिया ।

साँवले युवक ने उसके दूसरे कान में फूँका, 'चाहे मर जावें हम बेगार नहीं करेगे ।' इसको न केवल उसने दुहराया बल्कि कुछ और कंठों से भी खरखराहट के साथ निकला ।

भुवन का ध्यान उन दोनों युवकों की ओर गया । ममता पहले से ही देख रही थी, पर तरह दे रही थी ।

अबकी बार शोर बढ़ा । गोरे युवक ने बहरे के कान में कुछ भी न कह कर, अपने को ज़रा सा छिपाते हुये, ऊँचे स्वर में कहा, 'राजा अन्यायी है, बड़ा अधर्मी है ।'

वह पुकार उस शोर में नहीं डूबी, ऊपर उतरा पड़ी । ममता थोड़ी-सी विचलित हुई क्योंकि कुछ के गलों से यह वाक्य भी दुहराया गया था ।

भुवन तपाक से उठा और भीड़ को चीरता हुआ दौड़कर उन दोनों युवकों के ऊपर झपटा । भीड़ तो सन्नाटे में आ गई, पर वे दोनों युवक वहाँ से दो भिन्न दिशाओं में भागे । भुवन गोरे युवक के पीछे पड़ गया ।

ममता चिल्लाई,—'क्या करता है भुवन ?' परन्तु उसने नहीं सुन पाया ।

गोरा युवक बस्ती में न घँसकर गांव के बाहर भागा और तब तक भागता चला गया जब तक कि भुवन उस पर आकर नहीं टूट पड़ा ।

भुवन ने उसकी पीठ पर चाबुक फटकारे । वह तिलमिला गया, चीखा और उबटा खाकर गिर पड़ा ।

युवक चिल्लाया,—‘बचाओ दीर्घबाहु !’ भुवन सज्जाटे में आ गया । जब हांफते हांफते उसने गोरे युवक को सामने पहुंच कर देखा तो उसके चेहरे पर से दाढ़ी और मूँछ एक ओर खिसक गई थी—वह हिमानी थी ! आधी चित पड़ी हुई हांफ रही थी और कराह रही थी । भुवन डर के मारे तुरन्त तेजी के साथ लौट पड़ा । क्षमा प्रार्थना का साहस नहीं हुआ ।

न मालूम कितनी देर बाद हिमानी अपने घर पहुंच पाई । नील ने जब सुना तब उसके क्रोध का ठिकाना न रहा । पर उस समय कर क्या सकता था ? उसने प्रतिशोध की भावना को अपने हृदय के एक बड़े कोने में बसा लिया । चाहे जो कुछ भी करना पड़े रोमक और भुवन से बदला चुकाया जावेगा—नील और हिमानी के स्वर भिन्न भिन्न थे, परन्तु निश्चय किसी का किसी से कम न था । मेघ को बात नहीं बतलाई गई—कौन अपनी जांघ उघाड़े । परन्तु उसे पूरे सहयोग का दृढ़ आश्वासन दिया गया । और अधिक उत्तेजित भी किया गया ।

रोमक और ममता को चाबुक मारने की घटना की कभी कोई सूचना नहीं मिली । भुवन के मन में रह रह कर उठता था,—‘इसे न पीटकर दूसरे को, जो निस्सन्देह दीर्घबाहु था, ठोक पाता तो अच्छा रहता ।’

[ १३ ]

नगर में भी किसी को यह बात नहीं मालूम हुई। केवल एक दीर्घबाहु जानता था सो वह मन ही मन बहुत कुसमुसाया हुआ था। वह एक दिशा में भागा था और हिमानी दूसरी में। कुछ कर पाता या नहीं और कैसे कर पाता यह सोच सोच कर मन को समझा रहा था। हिमानी को उस पर भी क्षोभ था, परन्तु प्रकट नहीं कर रही थी। उसके अन्तर की आग भुवन को झुलसाने के लिये जल रही थी।

हिमानी का एक मात्र विनोद कुछ पले हुये मुर्गे मुर्गियों को खिलाना और उन पर अपना प्यार पुचकार बरसाना था। उसने एक का नाम भुवन रक्खा, दूसरे का रोमक और तीसरे का दीर्घबाहु।

दाँत भीच कर भुवन नामधारी से कहती, 'मरजा, जलजा, नीच कमीने !' जिसका नाम रोमक रक्खा था उससे कहती,—'तेरी छाती पर दाल पकाऊँ !'

'मूर्ख; मिट्टी के ढेले, काठ के मेंढक !' यह सम्बोधन था दीर्घबाहु नाम वाले के लिये। था पुचकार के साथ।

'भुवन' और 'रोमक' को जोर के साथ उठाया हुआ चाँटा जब धीरे से मार देती थी और वे टायं टायं करते हुये फड़फड़ा जाते थे तब उसे मुर्गे पर दया आ जाती थी और आँखों में दुबला सा आंसू। परन्तु वह आंसू भीतर का भीतर लौट जाता था और उसके भीतर की ज्वाला पर घी का काम कर देता था। यह सब होता अकेले में था।

कुछ तो अपने आप और कुछ मेघ वर्ग के प्रयत्नों से अयोध्या नगर में रोमक के विरुद्ध वातावरण में कहीं सनसनी और कहीं उष्णता बढ़ी। रोमक से अधिकतर वे ही लोग मिलते थे जो उसके अनुकूल थे और मेघ वर्ग से वे जो उसके विरोधी थे। एक पक्ष दूसरे पक्ष को निर्बल समझता था। मेघ और उसके सहयोगियों को जल्दी पड़ रही थी रोमक को राज्यच्युत कर देने की, उधर रोमक और उसके पक्षपाती

सोचते थे कि थोड़े से बुदबुदे इधर उधर उठे हैं जो समय पाकर वहाँ के वहीं समा जायंगे ।

नगर सभा थी और उसका सभापति पुरोहित सोम था । सभा में सभी 'श्रेणियों' के लोगों को अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था— तन्तुवाय (धुनकर) तुल्लवाय (दर्जी) कर्मकार, तक्ष (बढ़ई और पत्थर काटने छीलने का काम करने वाले) रथकार, सूत, कर्मार (लुहार) सभी को ।

पुरोहित सोम उदार वृत्ति का विवेकी वेदज्ञ ब्राह्मण था । सब की सुनने वाला और बहुमत का आदर करने वाला ।

मेघ वर्ग के आग्रह पर एक दिन सभा भवन में नगर सभा के प्रतिनिधि सदस्यों का अधिवेशन किया गया, सभा भवन लकड़ी के मोटे मोटे ऊँचे खम्भों और पायों का था । दीवारें पकी हुई ईंटों की । ऊपर से लकड़ी के बड़े बड़े बँडेरों पर बांस के ठठरों की छवनर । सबसे ऊपर फूस और खपड़े, द्वारों पर हरे पत्तों के बन्दनवार लटकाये गये थे—जैसा कि ऐसे अवसरों पर किया जाता था ।

लम्बे-चौड़े भवन के सिरे पर एक मन्च था जिस पर रुई भरे गद्दे और लोढ़ रक्खे हुये थे । इसके दोनों पाश्वर्कों पर अपेक्षाकृत नीचे पीठों और पटों की पंक्तियाँ थीं । इनके बीच में मोटा सूती छादन । यह साधारण सदस्यों के बैठने के लिये था । पीठ और पट गण्यमानों के लिये, मन्च सभापति और राजा के लिये । अधिवेशन में रोमक नहीं आया । उसके अमात्य आये और उनके पीछे आ बैठा भुवनविक्रम । गण्यमानों में मेघ दीर्घबाहु, नील इत्यादि अपने अपने स्थानों पर बैठे थे । मन्च के बिलकुल निकट आचार्य और वेदपाठी ब्राह्मण ।

श्रेष्ठी, अमात्य, महाशाल (सामन्त) हाथों में सोने के मोटे कड़े, वलय; गले में मुक्ता हार; कमर में चौड़ी करधोनियाँ पहिने थे । कोई बंडियाँ पहिने थे, कोई कुर्ते; कोई चादर ओढ़े थे । थे सब रङ्ग-बिरंगे साधारण सदस्यों में कोई हिरन की खाल के, कोई बकरी की खाल के

और कोई कोई तेंदुये की खाल की बंडियाँ पहिन कर आये थे। ये आच्छादन उनकी दरिद्रता के द्योतक नहीं थे, प्रत्युत उनके दर्प के। कृत्याधिकरण (काररवाई) का आरम्भ प्रार्थना और नृत्यगान से होता था, परन्तु वातावरण नृत्यगान के उपयुक्त नहीं समझा गया। इसलिये सोम ने केवल प्रार्थना की—

“...जहाँ सर्वत्र वनस्पति और वृक्ष तने खड़े हैं उस विश्वधारिका पृथ्वी का हम गुण गावें, जिसकी चार दिशायें हैं, जहाँ कृषि की जाती है, जो अनेक प्रकार से प्राणियों की रक्षा करती है। वह मातृभूमि हमें गौश्रों और अन्न से संयुक्त करे। मातृभूमि, तेरे जो प्रदेश हैं वे, रोग, क्षय और भय से रहित हों, हम दीर्घायु हों, हम सदा सजग रहें, तेरे लिये अपने प्राण और सब कुछ बलिदान करने को प्रस्तुत रहें” “अब हम इन्द्र की स्तुति करें—”

इस पर मतभेद उठ खड़ा हुआ। किसी ने कहा वरुण की स्तुति करो, किसी ने अग्नि और वायु की स्तुति का आग्रह किया। कृत्याधिकरण तो दूर रहा, यह भ्रमेला पहले खड़ा हो गया।

सोम ने सँभाला—

‘परमात्मा एक है। न दूसरा, न तीसरा, न चौथा। उसी के अनेक नाम हैं। आत्मा दर्पण है। उसी में अपनी अपनी श्रद्धा के अनुसार परमात्मा को देख कर आज का काम आरम्भ करो।’

कुछ क्षण के लिये सबने अपना अपना सिर नीचा कर लिया, मन ही मन कुछ सुमिरा और मेघ ने अपनी बात कही—‘राजा अन्न धन का संग्रह किये जा रहा है, कर्मकारों को मजदूरी कम देता है, अपने निर्वर्तन बढ़ा दिये, दूसरों के छीन लिये, कर चौगुना कर दिया है, और जितने भी काम करता है सब अधूरे छोड़ देता है। साधारण जन को अश्लील आमोद-प्रमोद देकर फुसलाता और गिराता चला जा रहा है। विद्वान और ब्रह्मचारी जो जनपद के सच्चे स्तम्भ हैं उनका कोई आदर नहीं, उल्टे उनका अपमान करता रहता है।

शिल्प श्रेणियों के लोगों ने राजा की सराहना की और मेघ की बात को मान्यता नहीं दी। मेघ उत्तेजित हुआ। बोला, 'सभापति सोम ने प्रार्थना में जो कहा था कि जहां वनस्पति और वृक्ष तने खड़े हैं, जहां कृषि की जाती है वह कहां है? चारों दिशाओं में वृक्षों के ठूठ खड़े हैं! किसके पापों का फल है? हम दीर्घायु हों! हम सजग रहें!! कैसे? मैं पूछता हूँ, कैसे? भाइयो, तुम्हारा पुरुषार्थ कहां गया?.....'

भुवन ने तुरन्त टोका,—'मेरे दायें हाथ में पुरुषार्थ है तो बायें में जय बनी बनाई!'

'चुप मूर्ख! अवसर कुअवसर समझे बिना चाहे जो बक बैठता है,' मेघ चिल्लाया,—'सब लोग सुनो, मैं बाल-ब्रह्मचारी, मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण करने वाला ब्राह्मण हूँ, मेरी मानो। राजा को तत्काल गद्दी से उतारो, नहीं तो अकाल पर अकाल पड़ते चले जावेंगे। फिर मातृभूमि के लिये प्राण देने और सब कुछ बलिदान करने का क्या अर्थ रह जावेगा?'

नील ने समर्थन किया,—'दास भाग भाग कर बीहड़ स्थानों में जा छिपे हैं। और वहां से लूटमार करने लगे हैं, डाके डालने लगे हैं। इनसे जनता की रक्षा कोई नहीं कर रहा है।'

अमात्यों ने राजा की ओर से सफ़ाई दी और एक ने प्रतिवाद किया,—'आचार्य मेघ कृषि नहीं करते। इनको सभा में बोलने का अधिकार नहीं है।'

मेघ किड़किड़ाया,—'एक भी सच्चा तपस्वी विद्वान जो वेद वेदान्त का मर्म जानता हो उसके मत को मानना चाहिये, न कि दस सहस्र की संख्या तक के अज्ञानियों के मत को।'

इस पर सोम ने समझाया—'शान्त होकर सोचिये, समझिये और बोलिये। विरोध सहन करने की शक्ति संस्कृति और सम्यक्ता की कसौटी है।'

मेघ बोला, 'मैं निर्भीक मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण हूँ। आप राजा के पुरोहित हैं, इसीलिये—'

सोम ने टोका,—'सभा का अपमान मत करिये।'

मेघ न माना, 'आप रोमक के पुरोहित न होते तो आप भी कहते कि राजा नीच और पापी है। मनु महाराज कहते हैं कि जनपद के दुःख राजा के पापों के फल होते हैं।'

भुवन फिर खड़ा हो गया,—'मनु महाराज ने कुपथ गामी ब्राह्मणों के लिये कहा है—'

भुवन ने बात पूरी नहीं कर पाई कि मेघ ने अपने क्रोध को जलता हुआ रूप दिया।

'रे दुष्ट पिशाच ! तेरे ही कारण तेरे पिता का नाश होगा। मेरा शाप भूठा नहीं पड़ेगा—'

भुवन को कुछ सभासदों की उकसाहट मिली—

'क्या कहा मनु महाराज ने ?'

भुवन ने अपनी बात पूरी कर डाली,—'पाखण्डी, बुरे कर्म वाले, बिल्ली और बगुले के ऐसे व्रत का रूप धरे हुये अहंकारी क्रोधी ब्राह्मणों का मुँह न देखे, उन्हें पीने के लिये पानी तक न दे।'

सोम ने शिष्टता के साथ वर्जित किया,—'बैठ जाओ राजकुमार।'

भुवन अमात्य के पीछे सिकुड़ कर बैठ गया। मेघ आपे से बिलकुल बाहर हो गया। उसके पक्षपातियों ने बाहें चढ़ा लीं।

सोम के उस शिष्टाचार पर मेघ ने तीर सा छोड़ा,—

'यह छोकरा नहीं बोल रहा है, इसका बाप बोल रहा है, इसके बाप का यह पुरोहित बोल रहा है ! क्या तुम सब मेरे इस अपमान को सह लोगे ?'

सभासदों में विवाद बढ़ा, सभा भवन काँपने-सा लगा।

सोम ने सांत्वना का प्रयास किया,—

‘आज की बैठक में राजा नहीं आये हैं। आरोपों का उत्तर देने का उन्हें अधिकार श्रुति ने दिया है। नगरसभा विचार भर कर सकती है। जनपद समिति उस विचार पर अन्तिम निर्णय करेगी...’

शान्ति नहीं हुई, रौरा मचा।

दीर्घबाहु ने बहुत सोच विचार कर कहा, ‘जनपद समिति की बैठक में देखना हम क्या क्या करते हैं !’

मेघ ने घोषणा की,—‘मैं जनपद की एक एक अंगुल भूमि की यात्रा करूँगा। जनता को जगाऊँगा। शीघ्र जनपद समिति की बैठक होगी और रोमक को अपने मुँह की खानी पड़ेगी।’

मेघ-वर्ग ने भाँप लिया कि सभा भवन में उसका बहुमत नहीं है, तब फिर कुछ और हो। कुछ तो भड़काने के कारण और कुछ अपने ही आवेश की प्रेरणा से दोनों पक्ष वालों के कुछ उतावले हाथाबाही पर आ गये। मेघ और नील इत्यादि सभा भवन छोड़कर चले गये। सोम को सभा अशान्ति में विसर्जित करनी पड़ी।

भुवन ने अपने को अपनी आयु से अधिक बड़ा अवगत किया और रोमक एवं उसके वर्ग ने सोचा कि असन्तोष की आँधी का एक छोटा सा भोंका आया और थोड़े से बकवादियों की सांसों के साथ बह गया है।

मेघ के वर्ग ने समझ लिया कि अपनी शक्ति की तौल म्रम के बाँट बखरों से की थी, जनपद समिति को रोमक के विरुद्ध जगाने उठाने के लिये बहुत कुछ करना पड़ेगा—शायद सिर का पसीना एड़ी पर चुआना पड़े।



[ १४ ]

मेघ के मन की नीचे से नीची तली के पोखरे में न मालूम कपिञ्जल क्यों उसे घृणा का एक बड़ा कीट दिखलाई पड़ता था, फिर भुवन और रोमक वहां आ जुटते थे और वह विस्मृत हो जाता था। नील और हिमानी के लिये तो वह कारणों का कारण था ही। रोमक को जहां गद्दी से उतारा कि फिर अपने वर्ग का शासन स्थापित होने में देर ही कितनी लगेगी ? दीर्घबाहु के मन में उमंगता था—रोमक के स्थान पर क्या मैं राजा नहीं बन पाऊंगा ? इस वान्छा को मन में रखकर वह मेघ और नील के कहने पर चलने के लिये कमर कसे था।

अयोध्या नगर में जो कुछ हो रहा था उसके समाचार कम बढ़ रूप में बाहर भी पहुँचते रहते थे। गाँवों में अधिक और नैमिषारण्य के आश्रमों में कम, अलग अलग चिन्तन और भिन्न भिन्न विचार की धारायें प्रमुख थीं। वहां विचार विनिमय तो होता ही रहता था, जब कभी टक्करें भी होती थीं तो उनमें हाथ पैर किसी के नहीं टूटते थे। सहिष्णुता का एक विस्तृत वातावरण युगों पहले बन गया था। उसमें पेड़ों पहाड़ों के पूजकों और जादू टोनों वालों से लेकर एक ईश्वरवादी और नास्तिकों तक के लिये स्थान था। राजनैतिक प्रसङ्गों पर भी बात चलती थी, परन्तु आध्यात्मिक विषयों पर बहुत अधिक। राजा को गद्दी से उतारे जाने की चर्चा असाधारण नहीं थी। आश्रमों में उसे सुन लिया और बिना कुतूहल के छोड़ दिया। अपने सामने के काम ही क्या कम है जो ऐसी बातों पर सिर खपी करें ?

धौम्य के आश्रम में कपिञ्जल ने शिष्य होते ही अपना तन मन गुरु की सीख पर ऐसा लगाया, इतना जमाया कि उसके साथी चकित हो गये। गुरु ने उसे योगाभ्यास सिखलाया और उसने तल्लीनता की हद करदी।

अयोध्या के समाचार छोटे मोटे रूप में आश्रमों तक आये और कानों को छूकर चले गये।

कपिञ्जल को गुरु ने आश्रम के निकट वाले वन खण्ड में जाकर अभ्यास और ध्यान करने की स्वतन्त्रता दे दी, इसलिये भी वह अपने संसार के बाहर वाले समाचारों से बिलकुल वंचित रहने लगा ।

वन के उस भाग में कभी कभी गौरी और अम्बिका अपने पशु चराने और फल संग्रह के लिये आया करती थी । पहले दिन जब इन दोनों ने कपिञ्जल को उस एकान्त स्थान में ध्यान मग्न देखा तब गौरी उसे पहिचानने के लिये अधिक निकट गई और आंख गड़ा कर देखने लगी ।

अम्बिका ने उसके पास आकर धीरे से पूछा, 'क्या इन्हें पहिचानती हो ?'

'यों ही, थोड़ा सा । अयोध्या के हैं,' इतना कह कर गौरी यकायक रुक गई । उसकी गाये इधर उधर भटकने को थी । बोली, 'उन्हें देखलूँ । कहीं खो न जावें ।' और वह तुरन्त चली गई ।

अम्बिका अपने ढोरो को इकट्ठा करने के लिये दूसरी दिशा में चली गई । वहां उसे अचानक वेद मिल गया । वाचाल तो था ही और हलके फुलके मनका भी । अम्बिका को जानता था, उसने वैसे ही पूछा, 'कहां जा रही हो अम्बिका ?'

'काम पर' और कपिञ्जल की दिशा में सङ्केत करके उसने अपने कुतूहल का समाधान चाहा,—'ये कौन हैं ?'

वेद ने बिना कटुता की भावना के कहा, 'अयोध्या का एक भगेड़ू शूद्र दास जिसे गुरु महाराज ने शिष्य बना लिया तो अब योग साधने पर डट गया है ।'

'तभी' हमारे गांव में अयोध्या से एक लड़की आई है वह इन्हें पहिचानती है ।'

'इसकी कोई सम्बन्धी होगी... ।'

'होगी, क्या करना है ।' अम्बिका चली गई । जब अम्बिका को गौरी मिली उसने बात चलाई—'तुमने बतलाया नहीं वह कौन है ?'

'मैं नहीं जानती ।'

‘बतलाते बतलाते यकायक क्यों रुक गई थीं ?’

‘गायें जो भटक रही थीं ।’

‘या मन ?’

‘हिश !’

‘मैं सब पता लगा आई हूँ । शूद्र है । तुम्हारा कौन है ?’

‘न कोई ।’

‘न बतलाओ । एक दिन जब बात खुल पड़ेगी तब क्या करोगी ?’

‘क्या बकती हो ? किसने क्या कहा है ?’

गौरी के क्षोभ को देखकर अम्बिका सहम गई और उसे शान्त करने पर जुट पड़ी । गौरी को शान्त होने में बहुत देर नहीं लगी ।

[ १५ ]

धौम्य ने वेद को आज्ञा दे रखी थी कि जिस दिन कपिन्जल अपने लिये फलमूल इकट्ठे न कर पावे उस दिन वह अपने संग्रह में से गिन कर थोड़े से उसे दे दिया करे। उस दिन जब वेद दोपहर के समय कपिन्जल के पास होकर निकला तब उसने देखा कि कोरा बैठा है तो बात करने के लिये बैठ गया। थका हुआ था और बातें करने की इच्छा मन में चुलबुलाया ही करती थी। जब बैठे बैठे उकता गया तब बोला, 'हमतो भाई कपिन्जल जमुहाते जमुहाते आधे रह गये। खोलो भी इस बगुला समाधि को और बात करो।'।

वेद के ढंग में आत्मदम्भ था और कपिन्जल के प्रति अवज्ञा। पर कपिन्जल नहीं हिला।

तब वेद ने चोट की,—‘अरे वह लड़की……क्या नाम है जी उसका जो अयोध्या से कुछ महीने पहले आई है……तुम्हारी…? कपिन्जल का ध्यान उचट गया और उसने आंखें खोलीं। उसके मुख पर आत्म संयम की छाप थी।

विनय के स्वर में बोला, ‘मुझे छोड़ दो वेद भाई।’

‘अजी वह जब तुम्हें अकेला छोड़े तब तो।’

‘कौन?’ कपिन्जल के स्वर में कम्प तक न था।

‘अच्छा जी ! अब बनते हो !! पर मुझे क्या करना है। ब्रह्मचारी जो ठहरा। ऐसा न हो कि किसी दिन तुम्हारा वह सब उघड़ पड़े तो यह सारा योगाभ्यास गड़बड़ में पड़ जाय और……’

कपिन्जल की आंखें तरल हो आईं और उसने हाथ जोड़ कर कहा,—‘गले में उसके कम्प भी था,—‘मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ मुझे अकेला छोड़ दो।’

अब वेद द्रवित हुआ,—‘अच्छा, अच्छा, मैं निर्दय नहीं हूँ। तुम्हारे लिये थोड़े से फल छोड़े जाता हूँ।’

कपिञ्जल की 'ना' पर भी उसने गिन कर फल रख दिये और कहता चला गया,—'बुरा न मानना । फल रक्खे जाता हूँ । मैं दिया दान नहीं लौटाता ।'

कपिञ्जल कुछ क्षण अस्थिर रहा, फिर बिना कुछ खाये पिये ध्यान-मग्न हो गया ।

चौथा पहर लगा था कि गायें चराते-चराते गौरी वहाँ आई । अञ्चल में कुछ फल लिये थी । कपिञ्जल अब भी ध्यानमग्न था । गौरी ने ज़रा-सा सिर झुकाकर प्रणाम किया और थोड़े से फल उसके पास रखकर चली गई । एक घड़ी पीछे कपिञ्जल ने आँखें खोलीं । फलों को अपने पास देखकर सोचने लगा । आसपास दृष्टि फेरी तो यहाँ वहाँ गायों का टटका गोबर पड़ा पाया । उसने फल उठाये, माथे से छुलाये और अपने एक छोटे से पटके में बाँध लिये । उसने नहीं देखा कि थोड़ी दूर आड़ से धौम्य यह सब देख रहे थे । जब सन्ध्या के पहले आश्रम में उन फलों को लेकर पहुंचा तब धौम्य आश्रम में थे ।

सन्ध्या के उपरान्त धौम्य अपने दो शिष्यों—वेद और कपिञ्जल—के साथ अकेले रह गये तब उन्होंने वेद से प्रश्न किया, 'कपिञ्जल कितने समय में पढ़ना-लिखना सीख लेगा ?'

वेद नहीं उत्तर दे पाया कि कपिञ्जल बोला, 'मुझे तो गुरुदेव वही बहुत भा रहा है जो आपने बतलाया और कर रहा हूँ ।'

वेद ने तुरन्त कहा, 'व्याकरण की पहली सीढ़ी तो बहुत दूर, कहीं दो चार महीने में अक्षर पहिचानने योग्य हो पावें ।'

धौम्य मुस्कराये और वेद हँसा । कपिञ्जल ने मुँह फेर लिया । धौम्य ने कपिञ्जल की पीठ पर हाथ फेरा ।

'तुमने अभी तक कुछ नहीं खाया । पटके में जो फल बाँध लाये हो उन्हें खालो । कल से अपने लिये फलों का संग्रह स्वयं कर लिया करो । तुम्हें वेद या कोई भी फल देने नहीं जायगा ।' धौम्य के स्वर में स्नेह था । कपिञ्जल को अच्छा लगा । वेद ने सोचा छुट्टी मिली ।

दूसरे दिन प्रातःकाल के उपरान्त ही कपिञ्जल जङ्गल में दूर फल इकट्ठे करने के लिये निकल गया। फलों को ढूँढ़ते ढूँढ़ते जैसे ही वह एक वृक्षकुञ्ज में पहुँचा कि बड़े पेड़ों के नीचे छोटे बड़े पौधों की भाड़ी में निकट ही उसे एक बाघ दिखलाई पड़ा। कपिञ्जल एक क्षण के लिये सन्नाटे में आ गया फिर उसने तुरन्त अपने को सँभाला। हाथ में उसके एक छोटासा डंडा था, पर बाघ के पन्जों और दाढ़ों के सामने उसका डंडा कर ही क्या सकता था? कपिञ्जल ने बाघ की आंखों से अपनी आँखें मिलाई—और मिलाये रहा। पहले बाघ पिछली टांगों के बल सधा, होंठ लटकाये और पन्जों से बाहर लम्बे नुकीले नख निकाले। जान पड़ता था कि एक छोटी सी छलांग भर कर कपिञ्जल का कचूमर किये देता है। कपिञ्जल अडिग था। उसने बाघ की आंखों के सिवाय उसका और कुछ नहीं देखा। वह बाघ की जलती आंखों के पीछे जो कुछ अपनी आंखों में देख रहा था उसमें भय या आतङ्क की कोई बात नहीं थी। बाघ की पिछली टांगों की बैठक ढीली पड़ गई और लटके हुये होंठ सिमट गये और उसकी आंखें नीची पड़ गईं। वह तुरन्त मुड़ा और धीरे धीरे गुराता हुआ दूसरी दिशा में चला गया। कपिञ्जल फल संग्रह करके अपने टीले पर आ पहुँचा। जब उसने ध्यान लगाने का प्रयास किया तो बाघ बार बार मुँदी आंखों के भीतर आने लगा। कपिञ्जल ने कुछ कठिनाई से उसको अपने ध्यान से दूर कर पाया।

जब उसने सहज साधारण ढङ्ग से अपने साथियों को बाघ के मिलने की बात सुनाई तब वेद ने फबती कसी,—‘सौ डग की दूरी से देखते ही महाशय जी सिर पर पैर रखकर लौट पड़े होंगे न कि बाघ वहाँ से चुपचाप चल दिया होगा!’

कपिञ्जल केवल मुस्कराकर रह गया।

धौम्य के पास भी बात पहुँची। उनके कान में शिष्यों की सभी मुख्य घटनायें पड़ जाती थीं, और वे देखते तो बहुत सूक्ष्म दृष्टि से थे ही।

‘कपिञ्जल’, एक दिन धौम्य ने उसे अपने साथ जङ्गल में दूर ले जाकर कहा, ‘वह स्थान आ गया ।’

कपिञ्जल हाथ जोड़कर नतमस्तक खड़ा हो गया ।

धौम्य ने बतलाया,—‘वह जहां गोमती उन वृक्ष समूहों में होकर बहती आती है तुम्हारा स्थान रहेगा । यह अरण्यानी है । किसी को नहीं मारना चाहती । साधारणजन के लिये बाघों और चोरों का भय भले ही हो पर तुम निर्भय हो, निश्शङ्क होकर रहना । देह को पालने वाले फलमूल यहां प्रचुर मात्रा में हैं ।’

कपिञ्जल ने गुरु के चरणों में अपना माथा टेक दिया ।

धौम्य ने उसे उठा लिया । बोले,—‘मैंने तुम्हारी परीक्षा ले ली । योग का अभ्यास पहले पूरा करलो फिर कुछ और बतलाऊंगा ।’

‘गुरुदेव के आशीर्वाद से कुछ पाजाऊंगा, वैसे तो मैं अत्यन्त तुच्छ हूँ ।’

‘अपने को तुच्छ मत समझो, नम्र अवश्य बने रहो । सदा स्मरण किया करो—देव, मुझ नीचे पड़े हुये को पुनः ऊपर उठाओ और मेरे भीतर वाले को तेजस्वी करो, मुझे ज्योति दो ।’

कपिञ्जल ने दुहराया ।

धौम्य ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुये कहा,, ‘योग के दो मार्ग हैं; एक अन्धकार का, दूसरा प्रकाश का । वान्छाओं वाला अन्धकार का है । इस पर चलकर मनुष्य अभीष्टों की प्राप्ति भर कर सकता है, परन्तु अन्त में गड़बड़े में जा गिरता है । प्रकाश वाला मार्ग निरन्तर आगे बढ़ाता है । जो कुछ इससे पाओगे वह मेरे आश्रम में नहीं मिल सकता था,’ और वे चले गये ।

कपिञ्जल को थोड़ी देर लगा जैसे उसका रखवाला चला गया हो । अनमना हुआ ही था कि उसे उन क्षणों की याद आ गई जब उसका बाघ से साक्षात्कार हुआ था । आत्मबल की प्रेरणा से पुलकित हो गया और वहीं एक टेकड़ी पर अपना स्थान बनाने की धुन में लग गया ।

[ १६ ]

विचार. विवेक, तप, अध्ययन और वर्चस्व जितना आश्रमों में बढ़ रहा था उसका थोड़ा सा ही अंश नगरों और गांवों में बस रहा था। राजनैतिक और आर्थिक परिवर्तनों और संघर्षों का प्रभाव जितना नगरों और गांवों पर पड़ता था उसकी बहुत थोड़ी सी आंच आश्रमों तक पहुँचती थी। आश्रम अध्यात्म के केन्द्र बन चले थे और ये क्रान्तियों के। दोनों केन्द्र एक दूसरे से अलग अलग पड़ने लगे। आश्रमों के प्रति श्रद्धा का आतङ्क अवश्य बाहरी क्षेत्रों पर छाया रहता था, यद्यपि आश्रम वाले इधर बहुधा विक्षेप नहीं डालते थे।

गांवों और नगरों में प्रकृति के अगम्य और अबोध रूप का भय साधारण जन के सामने सदा खड़ा रहता था। इसका उपचार पूजन, बलिदान, जादूटोने इत्यादि से किया जाता था। आश्रम के ऋषियों की वैज्ञानिक जानकारी या आध्यात्मिक ऊँचाई इनकी बुद्धि की पहुँच के बाहर हो गई थी।

जादूटोने से दृष्ट और अदृष्ट व्याधियों को दूर करने की धारणा और आस्था घर कर गई थी। पूर्व काल का मानव प्रकृति के अङ्ग अङ्ग को प्यार करते करते उस पर मुग्ध हो जाता था और निर्भीकता उसकी चिरसङ्गिनी बन गई थी। इस काल के मानव को निर्भीकता ने बिलकुल तो नहीं छोड़ दिया था, परन्तु आश्रम और आश्रम से बाहर वाले क्षेत्र में जो अन्तर आ गया था वही उस काल के निर्भीक और इस काल के जादू विश्वासी साधारण मानव के अन्तर का नाप और द्योतक था।

मेघ को अपनी मन्त्र विद्या में जैसा और जितना भरोसा रहा हो उसमें अपने व्यापक प्रभाव का आत्म विश्वास था। उसकी शक्ति को अहंकार सदा पालता-पोषता रहता था। षड्यन्त्र रचना की प्रतिभा उसमें थी ही।



जैसा कि वह सभा के अधिवेशन में घोषित कर आया था उसने, नैमिषारण्य को छोड़कर, अयोध्या जनपद के चप्पे चप्पे का भ्रमण आरम्भ कर दिया।

बीमारियां तो होती ही रहती हैं, ऋतु-विपर्यय के कारण और भी बढ़ गईं। मेघ ने गांव गांव जाकर अपने मन्त्रों का प्रयोग किया। कुछ अच्छे हो गये—वैसे भी होते। मेघ के मन्त्रों ने निरोग किया ! कुछ मर गये—तो अपने दुर्भाग्य से। मेघ किसी से कुछ नहीं लेता था। स्वल्प भोजी, सो खाने पीने पर उसको इतना संयम कि जहां देखा कि बिलकुल कोरे रहने से अधिक लाभ में रहेंगे तो बिलकुल लम्बी तान जाता। बदले में और कुछ नहीं चाहिये, साधारणजन का केवल वचन—सौगन्ध के साथ वचन—कि रोमक को गद्दी से गिराकर रहेंगे।

भ्रमण करते करते एक ऐसे गांव में पहुँचा जो नैमिषारण्य के निकट था। गांव के निवासी अधिकतर जङ्गली जाति के थे। सीधे, श्रद्धालु और भूतप्रेतों तथा मन्त्र फूकने वाले साधुओं में विश्वास करने वाले। गांव में उनके नेवते और सयाने भी थे। पर कहां मेघ का आत्म विश्वास पूर्ण घोर दम्भ और कहां उन बिचारों की सीधी फूँकाफांकी !

एक सयाना मेघ से डर तो गया पर उसके अन्तर्निहित स्वाभिमान ने एक चोट करवा डाली—बोला, 'महाराज आचारीजी, थोड़ी दूर उस जङ्गल में एक योगी रहते हैं जिनको लोग सबसे ज्यादा मानते हैं।'

'कौन ?'

'हमी लोगों सरीखे कोई शूद्र हैं। बड़े भारी योगी हैं। कुछ महीने ही हुये हैं उन्हें प्रकट हुये। बहुत लोग दर्शन करने जाते हैं, पर वे बात-चीत तक नहीं करते किसी से। दर्शन करना चाहें तो आप भी करलें।'

'शूद्र और योगी !! रोमक का राज्य जो ठहरा। क्या नाम है ? नाम जानते हो उसका ?'

'महात्मा कपिञ्जल।'

‘महात्मा कपिञ्जल ! कपिञ्जल महात्मा !!’

मेघ के कलेजे में बर्छी सी छिद गई । पर वह बिना आह भरे रह गया । उसने दूसरे ढंग से इस गांव के लोगों को रोमक के विरुद्ध उभाड़ने का प्रयास किया ।

उसी दिन वहां भुवन अपने कुछ शिकारी मित्रों के साथ आया । थोड़े से सिपाही भी थे । नैमिषारण्य के उस भाग में जङ्गली जानवरों की सूचना मिली थी । उसे जानवरों पर तीर चलाने का व्यसन लग गया था ।

जंगल के जानवर राजा के माने जाने लगे थे और उनका शिकार करने में हाँके की सहायता निकटवर्ती ग्रामीणों को करनी पड़ती थी । हाँका करना उन ग्रामीणों के लिये राजा की बेटबेगार थी । बदले में अन्न वस्त्र कुछ नहीं मिलता था । जानवर मर गया तो उसमे से कुछ मिल जाता था ।

भुवन के आते ही मेघ एक घर में रह गया । घर में जो लोग थे उनसे कहा, ‘मैं बेगार लेने वाले राजा या राजकुमार का मुँह नहीं देखता ।’

उन्हें यह भाव अच्छा लगा । मेघ को उन्होंने अपने मित्र के रूप में देखा । मेघ प्रकट नहीं होना चाहता था, इसलिये उसने गांव वालों को बेगार करने से नहीं रोका । वे लोग हाँके में गये । गये थोड़ी किनर मिनर करके ।

[ १७ ]

नगरों के आसपास से वसन्त ऋतु अपना डेरा समेट कर जङ्गल में बसेरे के लिये चली आई थी। पेड़ों के आधे पीले पत्तों के बीच बीच फूल अब भी थे जो टपक टपक कर नीचे के गुंजान पौधों की अध पीली पत्तियों में उलझ उलझ जाते थे। कहीं कहीं छोटे छोटे खुले मैदानों में दूबा के चकत्ते थे और उनमें छिपी लुकी सी शंखा हूली की छोटी छोटी रेंगती हुई सी डालियां। उन डालियों पर दूबा की छाया में कटोरी-दार सफेद फूल भांक रहे थे। पवन में थोड़ीसी उष्णता थी।

दूर से भुवन को दृश्य बड़ा सुहावना लगा, परन्तु जैसे जैसे वह अपने दल के साथ जङ्गल में घुसा सुनसान में उसका जी उकताने लगा। हांके वाले बेमन होकर कुछ पीछे चल रहे थे।

भुवन ने अपने एक साथी से कहा, 'ये गांव वाले बहुत ढीठ हो गये हैं।'

'जङ्गल के सारे जानवर मार कर खा गये हैं ये लोग। भटक चाहे जितना लें, हाथ कुछ नहीं पड़ता दीखता है।'

भुवन ठहर गया और उसके साथी भी। उसने हांकेवालों को हाथ झुलाकर बुलाया तो भी वे धीरे धीरे ही आये। भुवन को क्रोध आ गया—'जी चाहता है कि एकाध का सिर छेद डालूं। पग बढ़ाते आओ रे अभागो !'

हांके वालों ने सुन लिया—उन लोगों के कान ज्यादा तेज थे,—और उनका मुखिया आगे आकर बोला, 'आ तो रहे थे। आप जूते पहिने हैं, हम नङ्गे पैर हैं। कांटे लग जायं तो क्या करें?'

'गंवार ! नीच !!'

'ऐ' ! क्या कहा ? हम किसी की भी बात नहीं सहते।' हांकेवालों की आंखें लाल हो गईं।

भुवन ने अपना धनुषवाण सँभाला । उसकी छोटी सी देह के भीतर बैठा हुआ अन्धा पराक्रम बौखला गया ।

हांकेवाले इस तरह दबना नहीं जानते थे । एक ने छाती फुला कर चुनौती दी,—‘देखू तो कैसे—आओ—’

परन्तु बात आगे नहीं बढ़ने पाई । भुवन के कुछ समझदार साथी बीच में पड़ गये और अन्य हांकेवाले भी ।

भुवन ने धनुषवाण नीचे कर लिया और फूली हुई सांसों को साधने लगा ।

एक हांकेवाले ने हँसी को उकसाया—‘हांके में सुअर, बाघ, रीछ कुछ न कुछ अवश्य मिलेगा । न मिले तो दांव पर मैं अपना तीर कमान हार दूंगा ।’ क्षोभ पर पर्दा डालने के लिये भुवन भी हँस पड़ा ।

इसके उपरान्त उन लोगों ने शिकारियों को जहां तहां छिपाकर बिठला दिया और वे हांके के लिये दूर चले गये ।

उसी जङ्गल में थोड़ी दूरी पर वेद और कल्पक उसी समय आ गये । उस स्थान पर कई पगडंडियां थीं । दोनों उल्लास में थे ।

वेद बोला, ‘इन पगडंडियों को देखकर पुरानी कविता की याद आ जाती है । हे अरण्यार्नी, तुम देखते देखते आंख की ओभल हो जाती हो ! तुम क्यों नहीं गांव में जाने का मार्ग पकड़ती ? इस बड़े विपिन में अकेली रहते क्या तुम्हें डर नहीं लगता ? इस गहन अरण्य में कोई जन्तु बैल की भांति बोलता है तो कोई चींचीं करके मानो उसका उत्तर देता है !—जैसे वीणा के घट घट में बोल कर वनदेवी का यश गाते हों !!’

कुल्लक का भी मन सुरसुराया,—‘इस वन के किसी छोर पर गायें चरती हैं, रंभाती हैं और कहीं लता गुल्म आदि के निवेश से दिखलाई पड़ते हैं ।’

‘जब प्रातःकाल के समय स्त्रियां ऊषा का स्तुतिगान करती हैं तब लगता है जैसे ऊषा हम सब के लिये दोनों हाथों ओज बांटती चली आ रही हो और अपनी दान शीलता पर मुस्कान का कुंकुम लगा रही हो ।’

‘कपिञ्जल उस टीले पर तपस्या कर रहा होगा जो यहां से अब थोड़ी ही दूर रह गया है। गुरुदेव उसे यहां तक पहुँचाने आये थे’, कल्पक ने कविता की बात को वहीं छोड़ कर उस दोपहरी में जो सामने था उसकी चर्चा की।

वेद अपने हलके पन पर उतर आया—

‘बड़े मनीषियों की गतिमति कुछ विलक्षण होती है।’ उन्होंने कपिञ्जल में जो कुछ भी देखा हो मुझे तो ऐसा कुछ नहीं दिखलाई पड़ा। गुरुदेव के आशीर्वाद से आगे कुछ पा जावे तो कह नहीं सकता। अभी तो निरक्षर ही है।’

इस समय इनको दूर से हाँके का शब्द सुनाई पड़ा। वे दोनों खड़े होकर सुनने लगे।

कल्पक बोला, ‘यह क्या ? कोई आखेट कर रहे हैं। इस वन में भी आखेट !’

वेद ने सुझाया, ‘पेड़ पर चढ़ जावें। नीचे खड़े रहना ठीक नहीं है। वहीं से चढ़े चढ़े देखेंगे। काम इसके उपरांत।’

वे दोनों पास के एक बड़े वृक्ष पर ऊँचे चढ़ गये। हाँके का हो हल्ला बढ़ता चला आया। भाड़ियों में छिपे हुये शिकारियों ने अपने अपने तीर कमान सँभाले।

एक बड़ा सुअर भुवन के सामने आया। भुवन ने उस पर तीर छोड़ा। सुअर को लगा और उसने हुंकार लगाई। थमा और गिरा। भुवन ने सोचा कि दो एक क्षण में ही मर जायगा। भाड़ी में से निकलकर उसके समीप गया। सुअर चट से खड़ा हुआ और उस पर झपटा। भुवन ने किनारा काट कर दौड़ लगाई और दौड़ता चला गया। सुअर में दम थी। उसने भुवन का पीछा किया और तब रुका जब उसने भुवन को एक भाड़ी में पटक दिया। भुवन चिल्लाने लगा—‘दौड़ना, बचाना !’ सुअर के लिये भाड़ी की बाधा पड़ गई थी नहीं तो वह उसे दो चार सपाटों में ही ढेर कर देता। सुअर अपने प्रयत्न में कभी भाड़ी को तोड़ता

कभी भुवन को घायल करता। भुवन की पुकार को सुनकर कपिन्जल अपने टीले पर से दौड़ आया। उसके हल्ले पर थका हुआ घायल सुन्नर दूसरी दिशा में भाग गया।

जब कपिन्जल ने भुवन को बचाया तब वह अचेत हो चुका था। कपिन्जल ने उसे झाड़ी से बाहर निकाला और अपनी कमर की धोती फाड़कर उसका उपचार करने लगा। थोड़ी देर में हांके वाले आ गये। पानी का प्रबन्ध हो गया। भुवन के घाव पोंछे और धोये-बांधे गये। जब उसने पानी के लिये मुँह बाया तब कपिन्जल ने पिलाया।

हांके वाले कपिन्जल को जानते थे। उनके मन में उसके प्रति बहुत आदर था। अब और बढ़ा।

कपिन्जल ने भुवन को पहिचान लिया। हांके वाले तो उसे जानते ही थे।

कपिन्जल ने कहा, 'इसको अयोध्या पहुँचाने का प्रबन्ध करो।'।

भुवन के साथी भी आ गये। वे कपिन्जल को नहीं जानते थे। उन्होंने भुवन को आराम के साथ अयोध्या ले जाने का वचन दिया।

उसी समय वहाँ वेद और कल्पक आ गये।

वेद ऊँचे स्वर में बोला, 'तुम्हारे पास आ रहे थे कि—' कपिन्जल ने उँगली से वजित किया। वेद और कल्पक अपने स्वभाव के विपरीत चुप हो गये। वे भुवन को निरखने-परखने लगे।

कपिन्जल ने हांके वालों के मुखिया से कान में कहा, 'यह प्रकट न होने पावे कि राजकुमार को मैंने बचाया।' मुखिया ने वचन दिया। वे सब भुवन को उठाकर चले गये।

कपिन्जल ने वेद और कल्पक से पूछा, 'यहाँ कैसे निकल पड़े भाई?'

वेद ने बतलाया, 'गुरुदेव ने तुम्हारी कुशल और प्रगति के समाचार के लिये भेजा है।'।

'गुरुचरणों की कृपा से सब ठीक चल रहा है।'।

‘सो तो देख ही रहे हैं। तगड़े भी हो। फलमूल खूब मिल जाते होंगे।’

‘हां भाई।’

‘तुम्हीं ने उस युवक की रक्षा की, नहीं तो निस्सन्देह मारा जाता। सुभ्रर बड़ा था। हम एक पेड़ पर चढ़े सब कुछ देख रहे थे। तुम तो हम लोगों से आगे बढ़ गये!’

‘नहीं तो, वेद भाई। गुरुदेव की बतलाई हुई बातों में से एकाध ही तो गाँठ में बाँध पाई,—मेरा मन कल्याणकारी संकल्प वाला हो, बस।’

‘गुरुदेव को तुम्हारी आज की करनी बतलाऊँगा।’

‘नहीं भाई। मैंने किया ही क्या है? कुछ मत कहना।’

‘गुरुदेव से कुछ निवेदन करना है?’

‘मेरी ओर से उनके चरणों में बार-बार साष्टांग प्रणाम।’

‘कह तो दूँगा, परन्तु स्वयं वैसी क्रिया करने में तो मेरी देह चूर-चूर हो जावेगी, शायद घिस-घिसाकर तिनके जैसा रह जाऊँ!’

और कल्पक हँस पड़े।

कपिन्जल उन्हें अपने टीले पर ले गया। कुछ फल खाने को दिये और ठण्डा जल पीने के लिये। उन्हें आश्रम को लौटना था जो दूर था। इसलिये अविलम्ब चल पड़े। चलने के समय कपिन्जल ने फिर निवारण किया, ‘आज जो कुछ तुच्छ सेवा मुझसे बन पड़ी है नहीं चाहता कि वह किसी पर भी प्रकट की जावे।’ उन दोनों ने वचन दिया।

भुवन के साथी जब उसे गाँव से ले गये तब मेघ ने गाँव वालों से कहा,—‘आगे कभी राजा या राजकुमार की बेगार मत करना। इनमें से कोई भी राज्य करने के योग्य नहीं है। मेरे आशीर्वाद ने तुम्हें बचा लिया, नहीं तो वह दुष्ट भुवन तुम में से कई को मार डालता और उसके साथी गाँव में न जानें कौन-कौन से अत्याचार करते।’

हांके वालों को भुवन की धमकी और धनुष की डोरी पर वाण का चढ़ाना नहीं भूला था । उसे बचाया तो उन्हीं के एक सहवर्गी ने । मानो स्वयं उन्हीं लोगों ने बचाया हो ।

मेघ के मन में उठा कि मेरे शाप का आरम्भ हो गया है, गहरी चोटें खाई हैं, सम्भव है घर पहुँचते-पहुँचते मर जाय ।

उसने गाँव वालों को अपनी शाप की कुछ कहानी बतलाई और शाप का जो परिणाम हुआ वह तो उसी दिन की बात थी । उस गाँव के लोगों के मन में एक स्थान कपिन्जल के लिये था तो दूसरा मेघ के लिये भी बना ।



[ १७ ]

भुवन के घाव कुछ दिनों में पुर गये और वह चङ्गा हो गया । माता-पिता की एक चिन्ता दूर हुई तो और अनेकों ने आ घेरा । भुवन ने शिकार में उस दिन जो एक हाँके वाले पर तीर चढ़ाया था, उसका रूप पंख का परेवा बन गया । कुछ लोगों ने अपवाद फैलाया कि भुवन ने जंगली जाति के कई मनुष्यों को मार डाला ! मेघ उसके विरुद्ध जो आग भड़काता फिरता था वह फैली और उसके फैलने में अकालों और रोमक के कुप्रबन्धों के साथ इस घटना के कई रूपों ने भी अपना काम किया ।

जनपद में समिति की बैठक के बुलाये जाने और राजा के विरुद्ध कुछ करने की चर्चा बढ़ने लगी ।

मेघ वर्ग के ब्राह्मणों, महाशालों, और कहीं कहीं के मुखियों ने निश्चय किया कि तीन महीने के भीतर बैठक बुलाई जावे, परन्तु बहुत से गाँव उदासीन और कई राजा के पक्षपाती भी मेघ वर्ग नगर सभा की तरह अबकी बार मुंह की नहीं खाना चाहता था इसलिये बैठक की अवधि छः महीने की कर दी । राजा के उथले पुथले विश्वास में बैठ गया कि अबकी बार भी कुछ नहीं हो सकेगा, समिति के अधिवेशन में स्वयं जाऊँगा और अपने व्यक्तित्व तथा उत्तरों से सहज ही विरोध का विध्वंस कर लूँगा । उसे चिन्ता भुवन के भविष्य की अधिक थी ।

भुवन आखेट के लिये फिर जाने लगा । जब न जा पाता तब राज-भवन के आंगन में, कभी उद्यान में तो कभी अपने कमरे में ही मिट्टी के नाहर सुन्नर बना बनाकर लक्ष्यवेध करने लगा । नौकरों से हाँके की नक़ल करवाता और जब वे हँस पड़ते या दूसरे कार्यों में लग जाते तब उन पर हाथ भी उठा देता ।

रोमक ने एक दिन पुरोहित सोम को बुलाया, 'पुरोहित जी, मेरे ऊपर आपके बहुत से उपकार हैं । भुवन को आप अपनी देखरेख में ले

लीजिये । अपढ़ कुपढ़ सा बना रहा तो इसको राजगद्दी नहीं मिलेगी, क्योंकि शास्त्र की आज्ञा है,' रोमक ने निवेदन किया ।

‘हां महाराज, शास्त्र की आज्ञा तो यही है ।’

‘तो बस कल से ही भुवन विक्रम की बागडोर अपने हाथ में ले लीजिये ।’

‘आखेट के लिये कहीं बाहर गया होगा ?’

‘नहीं तो...कभी कभी ही जाता है...राजभवन में या उद्यान में, या...’

‘कहीं न कही उपद्रव कर रहा होगा । जुआ भी खेला करता है । दांव पर कभी पांच थप्पड़ और कभी दस तक लगा देता है—पीटने और पिटने का उसे व्यसन सा हो गया है...’

‘आपके शासन में सुधर जावेगा ।’

सोम ने स्पष्ट कहा,—‘महाराज, अब वह मेरे बस का नहीं रहा । हां छुटपन से मेरे हाथ में आ गया होता अथवा उसे किसी गुरुकुल में भेज देते तो संभव है वह कुछ हो जाता । परन्तु अब तो मेरे बूते के बाहर की बात है ।’

रोमक मन ही मन खिसिया गया । ऐसे सुन्दर, होनहार बालक की इतनी निर्मम निन्दा ! परन्तु मन मारकर रह गया । सोम ने समिति की होने वाली बैठक की बात चलाई तो उसने टाल दी । सोम के चले जाने पर रोमक के कानों में उसके वे शब्द बार बार ठोकर देने लगे—जुआ भी खेला करता है...पर इसका तो व्यापक रिवाज है, स्मृति में कहीं कहीं निषेध भी है; ऐसे तो बहुत से निषेध हैं जो परम्परा के कान नहीं उमेठ पाते...और वह दांव पर थप्पड़ें लगाता है, जब हार जाता है तब पिटता भी है ! राजकुमार होकर चाहे जिसके हाथ से पिट जावे !! ओफ़ !!!

रोमक के तिलमिली सी छूट गई । वह भुवन की ढूढ़ खोज न करके सीधा अन्तःपुर गया ।

उसके चेहरे पर चिन्ता की छाप देखकर रानी ममता ने उद्बोधन किया,—‘समिति का अधिवेशन अभी दूर है। आपको उसमें विजय प्राप्त होगी।’

‘देवी मेरी चिन्ता का कारण वह विषय नहीं है। कारण भुवन है।’

‘क्या उसने कोई उपद्रव किया?’

‘सो तो बालक है, कुछ न कुछ करता ही रहता है। क्या क्या बतलाऊँ...’ रोमक ने कुछ क्षण चुप रहकर भुवन के कुछ उपद्रव सुनाये।

मां ने ऊपर ऊपर भय की भीति प्रदर्शित की, भीतर भीतर उसे न कोई डर लगा और न आश्चर्य हुआ।

रोमक ने कहा,—‘यहां कोई बड़ा विद्वान या उपाध्याय दिखलाई नहीं पड़ता जो उसे ठीक ठिकाने पर ला सके। सोचता हूँ किसी ऋषि के आश्रम में दो चार वर्ष के लिये भेज दूं, परन्तु ऐसा कोई ध्यान में नहीं आ रहा है जो उसे अपने गुरुकुल में ले ले, क्योंकि अब सोलह वर्ष का हो गया है।’

‘देव, एक ऋषि हैं ऐसे—’

‘कौन हैं? कहाँ हैं?’

‘अपने नैमिषारण्य में—धौम्य ऋषि।’

रोमक का उत्साह धीमा पड़ गया। भुवन के उपद्रव दूर चले गये और उसकी कोमल देह का चित्र सामने आ खड़ा हुआ। बोला, ‘हैं तो वे सभी शास्त्रों और विद्याओं के पारङ्गत, परन्तु हैं कठोर। उनका अनुशासन कैसे सह पायगा यह कोमल किशोर?’

ममता का क्षत्राणी-हृदय मुंह पर आ गया—

‘देव! क्षत्रिय होकर ऐसी बात करते हैं! आप इसी आयु में क्या नहीं सहन करते रहे होंगे? विद्या और शक्ति को सरस्वती फूलों की सेजगाड़ी पर बिठलाकर नहीं भेजतीं। उनका वाहन तो नियम-संयम और आज्ञापालन है। उन्हें तो वही ग्रहण कर पाता है जो गुरु के शासन में रहकर भीतर के सोये ओज को दृढ़ता के साथ जगाता रहे.....’

एक क्षण के लिये ममता की उमङ्ग की धारा रुकी । उसके स्वर में कम्प आ गया था ।

उसने सधकर अपनी बात पूरी की,—‘महर्षि धीम्य समाज को निर्बल बनाने वाली परम्पराओं की कसनों के तोड़ने में एक हैं ।’

रोमक निर्णय पर पहुँच गया—

‘उसे मैं आजकल में ही धीम्य के आश्रम में भेज आऊँगा । फिर देखूँगा इस समिति के कुचक्र को एकचित्त होकर । खेद यही है कि बहुत प्यार-दुलार के कारण छुटपन में ही इसे गुरुकुल में न भेज सका ।’

दूसरे ही दिन भुवन को नैमिपारण्य ले जाने का निश्चय किया गया ।

वहाँ जाने के लिये तैयार उसे ममता करेगी—रोमक ने अपने सिर पर भार नहीं लिया । उसे अन्न-संग्रह की समस्या पर अमात्यों से अविलम्ब बात करनी थी । बच्चा आश्रम में बरसों रहने की बात सुनकर रो पड़ा तो कौन सहे ?

ममता ने अवसर निकाल कर भुवन से बात की—और बात करते ही गला भर आया ।

‘बत्स—’

‘अरी माँ, यह क्या ?’

‘तुम अभी कोमल हो, परन्तु—’

‘मेरी भुजाओं को टटोलो माँ । लोहे समान हो गई है । तुम्हारे चरसों की कृपा से एक दिन सिंह को पछाड़ूँगा !’

माँ की आँख में आँसू आ गया, होठ पर हँसी बिखर गई ।

‘ओहो, बड़ा सहस्रबाहु हो गया है न !’

‘तो आप मुझे कोमल न कहा करें । पिता जी को भी निषेध कर दें । मैं अब घुटनों के बल तो फिरता नहीं हूँ । हूँऊँ... ये आँसू क्यों ? मुझसे ऐसा क्या हो गया है, माँ ?’

माँ ने अपने गले को ठीक किया, आँसू पोछे ।

‘अच्छा तो सुन । तुझे नैमिषारण्य में धौम्य ऋषि के आश्रम में शिक्षा प्राप्ति के लिये जाना पड़ेगा ।’

‘अरे बस ! इतनी सी बात !! अयोध्या की टीटी-चीची से जङ्गल बहुत बढ़िया ।’

अयोध्या की टीटी-चीची ! जहाँ उसकी माँ भी रहती है !! जिसने उसके धूल भरे अङ्गों से अपनी गोद मैली की !!!

परन्तु इकलौते प्यारे बेटे की यह बात भी उसकी तोतली बाणी का ही दूसरा रूप लगी माता को ।

भुवन ने एक ‘परन्तु’ की,—‘पिता जी से पूछना पड़ेगा ।’

माँ ने बतलाया,—‘उनसे बात हो चुकी है । तुम्हें कल प्रस्थान करना है । महाराज पहुँचाने स्वयं जायेंगे ।’

‘अरे ! मुझसे अभी तक कुछ नहीं कहा !!’

‘आज अभी थोड़ी देर पहले ही तो निश्चय हुआ है’, बड़े प्यार के साथ ममता ने कहा,—‘मैं तुम्हें ब्रह्मचारी का साज सजाऊँगी । कमर में मुञ्ज बांधूँगी’ . . . और आगे कुछ न कह सकी । हिलकियों रौने लगी ।

भुवन उससे लिपट गया ।

‘माँ तुम रोओगी तो मैं नहीं जाऊँगा, चाहे कुछ हो जाय यहीं अयोध्या में रहूँगा ।’

‘नहीं,—’ ममता ने अपने को सम्भाला, ‘आश्रम का जीवन कठोर होता है । उसकी याद आ गई थी । मैं भी छात्रीशाला में रही हूँ न ।’

भुवन ने अपना बड़प्पन प्रकट किया,—‘शिकार के जीवन से भी कठोर होगा आश्रम का जीवन ? भूखों-प्यासों रह सकता हूँ । मार खा सकता हूँ । कांटे छिदते चले जावें तो परवाह नहीं करता । मैं अपना धनुष-बाण भी साथ ले जाऊँगा । जङ्गली जानवरों से आश्रम वालों की रक्षा किया करूँगा ।’

ममता को हँसी आ गई—

‘पागल, वहाँ के अस्त्र-शस्त्र संयम और सत्य के आचरण हैं। संयमी और सच्चे आचरण वाला ही अजेय होता है। पर हां, धनुष-बाण भी तू ले जा सकेगा। महर्षि धौम्य इस विद्या के भी पारङ्गत हैं। सिद्ध पुरुष हैं।’

वे चित्र भुवन की आँखों के सामने नहीं आये। आया केवल किसी जटा-जूटधारी दिग्गज की असीम महानता का धुँधला अस्पष्ट आकार।

ममता ने उसकी पीठ पर बार-बार हाथ फेरकर कहा, ‘आश्रम से बहुत बड़े, बहुत अच्छे बनकर आना, भला। इन्द्र, आग्न, वरुण—परमात्मा—तुम्हें सूपों भर-भर सुख दें।’

‘सूपों भर-भर सुख को रक्खूँगा कहाँ माँ?’ भुवन खिलखिला पड़ा। माँ का परिताप घुल गया।

‘चल हट। जनपद की जनता को बांटते रहना। इश्वाकु के वंश की रीति जो चली आई है। जैसा तेरा नाम है वैसा ही बनना।’

भुवन गम्भीर हो गया—

‘परमात्मा, मुझे अपनी माता के आशीर्वाद का पात्र बनाइये।’

माँ ने स्वस्ति की और कहा, ‘जब तुम जङ्गल से चोट खाकर लौटे, मैंने तुम्हारे लिये एक कुर्ता अपने हाथ से बनाया और सिया। सोने के तारों में मोती जड़कर उसमें पेशकारी मैंने ही की है। उसको अभिमंत्रित भी किया है। सब प्रकार की व्याधि, सङ्कट, भूत प्रेत, शत्रु तुमसे दूर रहेंगे; किसी भी कठिन या दुष्कर काम करने के पहले पहिन लिया करो सब सहज हो जायगा। उसे दूगी साथ ले जाना।’

‘अवश्य, माँ अवश्य’—भुवन को कुतूहल के लिये सामग्री मिल गई। ‘उसे सावधानी के साथ रक्खूँगा।’

‘जब तक आश्रम से लौटकर आओगे तब तक और भी कई अच्छे अच्छे बनाकर रक्खूँगी।’

भुवन को भेजने की तैयारी होने लगी। दूसरे दिन प्रातःकाल ही प्रस्थान करना था। पुरोहित सोम ने वही मुहूर्त रक्खा था।

चलने के समय मां ने कुछ सीख दी—

‘अपने स्वास्थ्य की चिन्ता करना, जो स्वास्थ्य की चिन्ता नहीं करता वह पापी है ।’

‘करूँगा मां । अभी तक बराबर करता आया हूँ ।’

‘गाली देना पाप है ।’

‘नहीं भूलूँगा ।’

‘जैसे ब्राह्मण बुद्धि के, वैश्य राष्ट्र सम्पत्ति के, शूद्र श्रम की पवित्रता के प्रतीक माने गये हैं । वैसे ही क्षत्रिय वीरता और बलिदान के । और, चिरन्जीव, अहङ्कार से सदैव बचना । अहङ्कार अधःपतन का द्वार है ।’

‘याद रखूँगा मां ।’

भुवन अपने पिता के साथ रथ में जा बैठा । उसकी मां ने देखा कि भुवन के हाथ में चूड़े, कड़े, वलय और गले में हार इत्यादि कुछ नहीं हैं, कमर में केवल मूँज की रस्सी जिसे उसने स्वयं पहिनाया था, तब वह मुंह फेर कर रो पड़ी ।

[ १८ ]

रोमक के रथ और अनुचरों को नैमिषारण्य के किनारे तक पहुंचने में कई दिन लग गये। मार्ग में धूल और सूखे पेड़ों के सिवाय कुछ नहीं मिला। शरद ऋतु फिर आगई थी, परन्तु नाम मात्र के लिये। छोटे छोटे पौधों में जिनकी जड़ें गहरी थी घुड़िया निकलते ही झुलस गई। नरनारी उस गीत के भाव को सुस्मित शरद सौ बरस फिर फिर सामने आती रहे—कई प्रकार से गाते हुये तो सुनाई पड़े, परन्तु शरद के किसी भी अङ्ग पर स्मित कही न दिखलाई पड़ी। गांव के गांव उजड़े हुये से थे। गांवों के साहूकार और साधन सम्पन्न शाल और महाशाल अवश्य पनप रहे थे। साधारण जन दुबला पड़ गया था। पर भुका नहीं था, बह अच्छे दिनों को लौटा लाने के लिये छाती ताने था।

रोमक नैमिषारण्य के छोर पर, बिखरे हुये जंगल में बसे हुये एक गांव में संध्या समय पहुँचा। वहां से धीम्य के आश्रम तक रथ नहीं जा सकता था। भुवन को आश्रम में छोड़कर अयोध्या लौट पड़ने की उसे आतुरता थी। मार्ग में उसने जो कुछ देखा और सुना था उससे वह अपने भविष्य के सम्बन्ध में कुछ भयभीत हो गया था।

एक पहर रात रहे ही वह मार्गदर्शक को लेकर भुवन के साथ पैदल चल दिया।

भोर होते होते उसे नैमिषारण्य के घने जंगल में शरद का भिन्न रूप दिखलाई पड़ा। हरसिंगार के फूलों की सुगन्धि ऐसी जान पड़ रही थी जैसे पग पग पर स्वागत कर रही हो। थोड़ी दूर आगे बढ़े कि चीतलों और करसार हिरनों के झुण्ड के झुण्ड चरते कुदकते फुदकते मिले। चौंके और फिर चरने में लग गये। ललित का मन तीर चलाने को ललचाया। पवन में होम के सुगन्धित धुयें की बाढ़ पर बाढ़ उन चीतलों और हिरनों को छू छूकर आरही थी। समझ गया कि आश्रम निकट है और आश्रमों के निकट आखेट करने का निषेध है। संभव है ये जानवर आश्रमों के



पालतू हों। फिर उन सबको कुछ स्त्रियों की हँसी के साथ बातचीत भी सुनाई पड़ी। रोमक ठिठककर चलने लगा। चलते चलते उसे सुनाई पड़ा—

‘पौ फट गई। अंधेरा जा रहा है।’

‘आज कुछ जल्दी निकल पड़ें घर से।’

‘दूध दोह लिया और चलीं आईं। ज़रा उजाला और हो जाय तो फल इकट्ठे करें।’

‘आकाश में पक्षी उड़ने लगे। कू कू चीं चीं करके ऊषा की अगवानी कर रहे हैं।’

‘शुभ्रवर्ण ऊषा, तुम सारे उजियालों की रानी हो, सबसे अधिक सुन्दर, मंजुल और उज्ज्वल। उधर तुमने अपने लाल-पीले पट बिने और बुने इधर दोपाये चौपाये और पक्षी अपने अपने काम में जुटे।

‘वह देखो, स्वर्ग की बेटी प्रभात के माथे पर रोरी लगा चली है।’

‘नन्ही नन्ही कोपलों के भीतर छिपी हुई बड़ी बड़ी कलियां दिखलाई पड़ने लगी हैं जैसे ऊषा से मुस्करा मुस्कराकर कुछ कह रही हों।’

ये लोग थोड़ा सा ही आगे बढ़े होंगे कि गाय के रंभाने के शब्द के साथ ऋषियों की मन्त्रध्वनि सुनाई पड़ी।

एक पुरुष के स्वर में सुनाई पड़ा—

‘ऊषा, जैसे तुम दूबा को ओसकण, गायों को बलभद्र चारा और ऋषियों ज्ञानियों को सत्य प्रदान करती हो वैसे ही कर्मकारों को महानता दो।’

दूसरे के में—

‘ऊषा के सहस्र वरद हाथ हैं। इधर वह हमें वरदान दे रही है उधर सूर्य का स्वागत करने में भी तल्लीन है।’

ये लोग एक छोटे से आश्रम से कुछ दूर होकर निकले। एक विद्यार्थी दूसरे से कह रहा था—

‘धन्य हो ऊषा ! नित्य ऐसे ही ओज, साज, सलोनेपन और स्मित के साथ हम सब को वर्चस्व बाँटने के लिये आती रहो । अनादिकाल से ऐसा करती आई हो और अनन्त समय तक करती जाओगी । हमारे पुरखों ने तुम्हारे दर्शनों से अपने को कृतकृत्य किया अब हमें सजीव करो ।’

‘जगन्नि-उदग्नि हो और आगे आने वाली पीढ़ियों को भी आलोक और चेतना देती रहोगी ।’

रोमक पुलकित हो गया । भुवन के मन पर आतङ्क छा गया । तो यहाँ इस प्रकार की बातें होती हैं ! जुआ, शिकार, अधम-उपद्रव कुछ नहीं !! हिंसा !!! कुछ बढ़िया भी मिलेगा ।

आगे बगल में थोड़ी दूर एक गाँव मिला । फिर थोड़ा सा जङ्गल ।

एक वृक्ष की कुञ्ज के पीछे कुछ लड़कियां बातें करती हुई आ रही थीं ।

‘अरी यह वही ऊषा तो है जो नित्य नये ठाठबाट के साथ आकर गहरे अन्धकार को भगा देती है ।’

‘और सूरज के सामने जाने में उसे कोई लाज नहीं आती !’

‘वह सब के लिये कुछ न कुछ करती है, पक्षपात किसी का नहीं करती । जो अब भी आड़े-तिरछे पड़े होंगे उन्हें कान में कूके देकर जगावेगी । किसी को यज्ञ करने, किसी को धन कमाने के लिये चेतावेगी ।’

‘अब अपने लाल होठों और मोतियों जैसे दाँतों की दमक भरी मुस्कानों द्वारा हमें-तुम्हें फल संग्रह करने के लिये कह रही है । जुट पड़ो कहीं ।’

‘वह देखो, नर्तकी की तरह सूर्य को कभी यह रंग और कभी वह ग दिखलाने लगी है !’

रोमक और उसके संगियों को अपने पास आते हुये देखकर लड़कियाँ ठिठक गईं । इनमें एक गौरी थी दूसरी अम्बिका ।

अधिक निकट पहुँचने पर रोमक ने गौरी को कुछ अधिक ध्यान के साथ देखा—जैसे पहिचानने का प्रयत्न कर रहा हो । भुवन उसके पीछे खड़ा था ।

‘बेटी, धौम्य ऋषि का आश्रम यहाँ से कितनी दूर होगा ?’ रोमक ने पूछा ।

‘बहुत दूर’ उसने भुवन की ओर देखते हुये उत्तर दिया ।

मार्गदर्शक ने कहा, ‘मुझे मालूम है । एक पहर दिन चढ़े के पहले पहुँच जावेंगे । वहाँ पहुँचने के पहले आपको स्नान भी तो करना है ।’

रोमक कुछ बात करना चाहता था ।

‘तुम कहाँ की हो बेटी ?’

‘इसी गाँव की ।’

म्बिका ने संशोधन किया,—‘बहुत दूर की—अयोध्या की ।’

भुवन टकटकी लगाकर उसकी ओर देख रहा था । गौरी ने सिर नीचा कर लिया । भुवन की आँख इधर-उधर भटकने लगी ।

‘तुमको मैंने अयोध्या में देखा है...स्मरण नहीं आता कब ।’ रोमक ने कहा ।

गौरी ने सिर उठाया और रोमक को देखा, परन्तु आँखें भुवन की ओर फिर गईं । वह उसकी ओर देखने लगा था ।

गौरी ने फिर सिर नीचा कर लिया । बोली, ‘देखा होगा ।’

मार्गदर्शक रोमक को लेकर आगे बढ़ा । भुवन ने लौटकर देखा तो गौरी उसी की ओर दृष्टि किये थी ।

उन सब के चले जाने पर अम्बिका ने गौरी से पूछा, 'ये कौन थे ?'

'अयोध्या के राजा ।'

'और वह ?...लड़का ?'

'मैं क्या जानूँ ?'

'हूँ...ऊँ...'

गौरी फलों की खोज करने लगी ।

[ १६ ]

धौम्य ने भुवन को अपने आश्रम में ले लिया । वैसे छोटी आयु के ही बालक आश्रमों में प्रवेश पाते थे, परन्तु रोमक के विनय भरे अनुरोध और अपनी उदार वृत्ति के कारण धौम्य ने आनाकानी नहीं की ।

उपनीत करने के बाद धौम्य ने कहा, 'मैं भुवन को वार्त्ताशास्त्र की भी शिक्षा दूँगा । कहाँ से किसका पेट कितना और कैसे भरा जावे वार्त्ताशास्त्र का यही सार है । पेट पहले, सिर पीछे । मन्त्रों के रटने मात्र से कुछ नहीं होता । इसने अभी तक कुछ नहीं सीखा है ।'

'आचार्य मेघ ने ढङ्ग से नहीं सिखलाया पढ़ाया', रोमक ने सफ़ाई दी ।

धौम्य बोले, 'हो सकता है, परन्तु जिस वातावरण में यह पला है उसका दायित्व अधिक है ।'

'मैंने धनुर्विद्या सीखी है, गुरुदेव',—भुवन से न रहा गया ।

धौम्य हँस पड़े ।

'सीखने के पहले तुम्हें बहुत से अभ्यास भुलाने पड़ेंगे । धनुर्विद्या तो जीवन का केवल एक अङ्ग है । आदर्श है उचित अनुपात में शरीर, मन और आत्मा का समन्वय, उनका समीकरण । अपने निज को सन्तुलित रखना जीवन का दृढ़ सङ्कल्प और ध्येय होना चाहिये ।' धौम्य ने समझाया ।

'गुरुदेव, मेरी माता ने चलते समय कहा था कि स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखना',—भुवन यह समझा !

'और यह भी कहा था कि मौज के साथ मनमाना भोजन करना और दिन-रात सोना !'

धौम्य की बात पर रोमक हँस पड़ा और भुवन सिकुड़ गया ।

धौम्य ने कहा, 'मैं रानी ममता को जानता हूँ। ममता ने छात्रीशाला में शिक्षा पाई है। उन्होंने तुमसे कहा होगा कि अहङ्कार अधःपतन का द्वार है ?'

जैसे धौम्य वहाँ कहीं खड़े हों जब उसकी माँ ने यह बात कही थी ! सफेद जटा जूट वाले दृढ़ शरीर धारी धौम्य की जब पैनी आंखों को देखा और खनकती हुई वाणी सुनी तब भुवन सहम गया।

धीरे से बोला, 'जी...कहा था उन्होंने यह।'

फिर पुचकार कर धौम्य ने कहा, 'तुमको ठीक कर लूंगा। अच्छे बनने के लक्षण हैं तुम में।'

रोमक ने अपनी बात चलाई—

'अयोध्या की ओर छह सात साल से बरसा नहीं हो रही है, यज्ञ पर यज्ञ किये, परन्तु कोई फल नहीं मिला।'

धौम्य ने कहा, 'सुगन्धि और रोग हरण के लिये सीमा भीतर का यज्ञ उचित है, पर अति तो सर्वत्र निषिद्ध है। उस धी और अन्न को जो यज्ञों में फूका, दुखी जनों के मुहमें पहुँचाते रहते तो अधिक कल्याणकारी होता।'

'अब कैसे पार पाऊँ गुरुदेव ?'

'सोचो समझो और विवेक से काम लो। इस समय इससे अधिक कुछ नहीं कहूंगा।'

चलते समय रोमक बार-बार इच्छा करते हुये भी भुवन के सिर पर या पीठ पर न तो हाथ फेर सका और न उससे कोई बात कर सका। गला रुँध गया था। वह नहीं चाहता था कि धौम्य या उनके आश्रमवासी उसे निर्बल समझें।

ममता के दिये हुये जड़ाऊ कुर्ते की पोटली जिसमें कमर पेटियाँ और बहुमूल्य कंचुक भी थे रोमक ने धौम्य की ओर बढ़ाते हुये कहा, 'आज्ञा हो तो कुर्ता और कंचुक छोड़ जाऊँ भुवन के लिये ? इसकी माता ने इन्हें अभिमन्त्रित किया था।'

धौम्य ने अपनी कुटी के एक कोने में उस पोटली को टंगवा दिया । मुस्कराकर बोले,—जैसे वैशाख जेठ की दोपहरी में ठंडी हवा का भोंका आया हो,—‘यह अपने ही मन्त्र से अपनी रक्षा करेगा । अभिमन्त्रित वस्त्रों में रक्षा करने का सामर्थ्य नहीं होता ।’

[ २१ ]

जैसे जैसे रोमक अयोध्या की दिशा में बढ़ा शरद पीछे छूटती गई । धौम्य के आश्रम और वहां के वातावरण से उसने जो ओज अपने भीतर प्रतीत किया था वह भी अयोध्या पहुँचते पहुँचते क्षीण हो गया । भुवन को छोड़ आने पर जो जी बार बार भर आता था अयोध्या में उसकी अनुपस्थिति के शून्य में अकाल की प्रचण्डता और अपनी असमर्थता को बढ़े हुये रूप में पाने लगा ।

कभी कुछ नहीं और कभी यकायक कुछ कर डालने के स्वभाव ने उसके प्रयत्नों को विकृत और लचर बना दिया ।

साधनहीन किसानों की संख्या अनगिनत हो गई । बड़े भूमिस्वामियों, महाशालों से बँटिया की खेती पर उन्हें उपज का सातवां भाग मिलता था । रोमक ने अपनी कुआँ खेती पर उन्हें उपज का पाँचवां भाग देने का वचन दिया तो अपने पशुओं के चराने की मजदूरी घटादी—छः गायों के चराने पर एक गाय का दूध और सौ के चराने पर दूध के अतिरिक्त गायो की एक जोड़ी मजदूरी में मिलती थी, वह दर कम करदी । श्रमिकों को, जिसकी जैसी योग्यता हो, एक पण से लेकर छः पण रोज तक मजदूरी की दर थी । वह घटाकर पाव पण से एक पण करदी गई ! कुओं नहरों इत्यादि के खुदवाने का काम उसी गति से जारी रखना चाहता था । जब प्रतिवाद खड़ा हुआ तब कह दिया कि पणियों और वणिकों ने भोजन के उपकरण छिपा लिये हैं, हमारा कोई दोष नहीं । राजा के अन्नागारों से अन्न वितरण का काम ममता को कम कर देना पड़ा, क्योंकि स्वयं भूखों मरने की नौबत आती । अकाल पीड़ित प्रजा में हाहाकार मच उठा । रोमक ने उपदेशों से प्रजा का पेट भरना चाहा । विफल रहा ।

राजा, उसके अमात्य और अन्य वेतन भोगी कर्मचारी परस्पर खींचा-खांची करने लगे । केवल एक साधन पर सहमत हुये—जिन व्यापारियों ने अपने अपने भंडारों में अन्न छिपा रक्खा है उनका अपहरण किया



जावे। महाशालों के अन्न भंडारों पर भी आंख लगाई गई। जिन महाशालों ने विरोध किया उनकी भूमि छीनने की आज्ञा रोमक ने निकाली—ये भूमियां मैंने या मेरे पुरखों ने ही तो दी थीं तुम्हें ! उन्होंने दस्युओं और भागे हुये दासों से डाके डलवाना शुरू कर दिया ! अकाल और अराजकता का गठबन्धन होने लगा।

एक दिन आतुरता में आकर रोमक ने नील के अन्नागार पर आक्रमण करवा दिया।

आधी रात का समय। रूखी बरफीली वायु सूखे पेड़ों तक को कँपा रही थी। हिमानी और नील अपने अपने कमरे में मोटे मोटे कम्बल ओढ़े सो रहे थे कि उन्हें अपने आंगन में किसी के धम्म से कूदने का शब्द सुनाई पड़ा। हिमानी ने किवाड़ खोलकर देखा तो आंगन में राजा के कई सिपाही मशालें लिये कुछ दूढ़ रहे थे। कुछ के हाथ में ताले और किवाड़ तोड़ने के औजार भी थे।

हिमानी चिल्ला पड़ी—‘डाकू ! डाकू !!’

उन लोगों में से एक ने कहा, ‘डाकू नहीं हैं। राजा के दण्डक हैं। तुम्हारा अन्न ले जाने के लिये आये हैं। बतलाओ कहां छिपा रक्खा है।’ नील भी आ गया।

बहुत हाय हाय की फिर भी वे लोग न मानें। नील अड़ गया—

‘हम अन्न चोर नहीं हैं। कोई दूसरा घर देखो। अपने को यों ही नहीं लुटने देंगे। हमें मार डालो तब हमारे माल को मार सकोगे।’

सिपाहियों ने उनको बांध लिया। ताले तोड़े, किवाड़ फाड़े और बहुत सा अन्न उठा ले गये। बाहर सड़क पर गाड़ियां खड़ी थीं। उनसे ढोकर राजा के अन्नागार में रख दिया।

सूर्योदय के उपरान्त पीड़ितों को अन्न दिया गया। लगी हुई आग पर पानी के छीटे पड़े और पड़ते रहे, परन्तु वह बुझी नहीं। कुछ समय के उपरान्त फिर धायं धायं करने लगी।

यह आग मेघ और उसके वर्ग के हाथ का हथियार बनी।

[ २१ ]

‘भोजन की बेला आ रही है, थोड़ा सा काम और हो जाता तो अच्छा रहता’ एक किसान ने दूसरे से कहा ।

‘वह देखो, उन स्त्रियों के हाथ पैर ढीले पड़ रहे हैं । हम लोग जब इस खेत की कटाई कर लेंगे तभी चैन लेंगे, स्त्रियों को चेताओ ।’ दूसरे ने उत्तर दिया ।

धूप तो खरी हो गई थी, पर वायु में ठण्डक अब भी थी । अयोध्या से दूर एक गांव में कुआं खेती होती थी । किसान गेहूँ की फसल काट रहे थे । एक पुरुष स्त्रियों के दल के पास पहुँचा जो दूसरे खेत की कटाई कर रही थीं । उसने हँसकर उनसे एक बात की और गा गाकर सपाटे के साथ हँसिया चलाने लगी । उनके गीत का भाव यह था—

‘पृथिवी के पौधे मीठे दूध सेभरे खड़े हैं । हमारे बोलों में भी तो अमृत की बूँदें हैं ।

भगवान शुद्ध सुरस से भरे हैं वे निराले हैं । कौन जानें कहां बसते हैं और फिर भी सारे जग को उजियाला देते रहते हैं । अलख हैं । हमारी विनती सुनते हैं और हमारी विनय मात्र के बदले में ढेर का ढेर अन्न हमें वे देते हैं । वे सौ बाहों से इकट्ठा करते हैं और सहस्र से बाँट देते हैं ।

हम गृहदेवी को चार पुरीं चढ़ाते हैं, गन्धर्वों को तीन तुम्हें एक ही चढ़ा दें तो हम पुञ्ज के पुञ्ज पा जाते हैं । हे प्रजापति संग्रह और उत्कर्ष तुम्हारे दो चेरे हैं । ये दोनों अनन्त सम्पदा हमारे घरों में लावें ।’

गीत के ओज ने उनके हाथ के हँसिये को बल और चमत्कार सा दे दिया । उन्होंने गीत को दुहरा-तिहरा नहीं पाया था कि चुपचाप खड़ी होकर एक ओर देखने लगी । उस दिशा से मेघ आ रहा था ।

जटाजूटधारियों को बहुत सम्मान मिलता था। एक कृषक ने आगे बढ़कर उसे नमस्कार किया। मेघ ने आशीर्वाद दिया। किसान ने श्रद्धा प्रकट की,—‘आप हमारे अतिथि हैं। मधुर अन्न का भोजन करिये।’

‘मुझे अन्न की भूख नहीं है। तुम्हारी श्रद्धा का भूखा हूँ,’ मेघ ने आतङ्क बिठलाया।

थोड़ी देर में मेघ किसानों के जमघट में पहुँच गया। सब छाया तले जा बैठे। स्त्रियाँ एक किनारे। वे सब भूखे थे। मेघ से शीघ्र छुट्टी पा जाना चाहते थे, परन्तु सङ्कोच में थे। मेघ अपने उद्देश्य में आधा पागल हो गया था। वह कह रहा था,—‘राजा जो जनपद की छाया कहलाता है, पापों का पुञ्ज बन गया है। तुम दुर्बल होते जा रहे हो वह मोटा पड़ता चला जा रहा है।’

एक बोला, ‘बहुत दिनों से नहीं देखा। क्या उसके तोंद निकल आई है?’

‘उसकी देह नहीं, उसका भीतर वाला मोटा हो गया है। खानों से धातुओं के निकालने वालों से आधा कर ले लेकर उसने अपना कोष भर लिया है। तुम्हारे हित पर कुछ खर्च नहीं करता।’ मेघ ने बतलाया।

अवेष्ट अवस्था की एक स्त्री ने कहा, ‘हमें किसी से कुछ नहीं चाहिये। परमात्मा का और अपनी भुजाओं का भरोसा रखते हैं।’

यह स्त्री इतनी फूहड़! मुँह लगकर बात करती है !! शूद्र तपस्या करने लगे हैं और स्त्रियों के सिर फिर गये हैं !!! मेघ ने सोचा। एक क्षण ध्यान का ढोंग करके चुप रहा।

‘तुम थोड़े से कुछ अन्न पा गये तो क्या हुआ ? सारे जनपद में हा हाकार मच रहा है। राजा ने यज्ञों में पशुओं का बलिदान बन्द करके देवताओं को रुष्ट कर दिया है। अग्नि के मुँह में अन्न और घी भोंकने से देवता सन्तुष्ट नहीं हुये और न होंगे ! उसने ऐसे बहुत से यज्ञ किये—सब व्यर्थ गये। कोई कहे कि हमें किसी से कुछ नहीं चाहिये ! परमात्मा का और अपनी भुजाओं का भरोसा करते हैं !! तो वह अपने

को अन्य बड़ी जनता से अलग विलग करता है ।' मेघ बोला और उसकी आँखों पर रोष आ गया ।

एक किसान ने अपनी आस्था व्यक्त करने और बात को शीघ्र समाप्त करने के लिये प्रश्न किया, 'ऋषि महाराज हमें तो थोड़े शब्दों में बतला दीजिये कि क्या करना है ?'

'राजा ऋषियों का अपमान करता है । राज्य में अराजकता फैल गई है । वह अपना कोष बढ़ाता चला जा रहा है और तुम्हें भूखों मार रहा है । भोर और सांभ उसे कोसो और समिति की बैठक करवा के उसे गद्दी के नीचे पटक दो । सदा के लिये कीड़े मकोड़े की भांति कर दो । मेघ आवेश से भर गया ।

'अभी तक हम सीखते आये हैं कि सब एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें, किसी की सम्पत्ति की लालच न करें । हमारा द्वेषी कोई न रहे; आज यह सब क्या सुन रहे हैं ? धौम्य एक बड़े ऋषि हैं । वे भी यही कहते हैं ?' एक अधबूढ़े किसान ने साहस के साथ कहा ।

'धौम्य की बात मत करो, मन्त्रों के भौतिक प्रभाव को न वह जानते हैं और न मानते हैं । मानो अथर्व कुछ है ही नहीं ।' मेघ ने आवेग के साथ व्याख्या की ।

दूसरे वयोवृद्ध ने संभाला,—'अरे तो यह कब कहते हैं कि राजा को लूट लो ? हमने भी सुना है कि जनपद में जगह जगह पर घोर अकाल पड़ रहा है । एक यहां कुछ सुख है सो हम उन सबसे अलग तो हो नहीं गये । और ऋषियों का अपमान तो कोई भी नहीं सह सकता ।'

मेघ ने विजय का मार्ग पा लिया—

'मैं ही हूँ वह ऋषि बालब्रह्मचारी तपस्वी और वेद पाठी । मेरा ही घोर अपमान किया गया है । देवगण तपस्वी को छोड़कर दूसरे के मित्र नहीं होते, जानते हो ?'

मेघ भय के साधकों का साथी था—अन्ध विश्वासों का बढ़ाने वाला; इन लकीरों को यों खींचो, उनको यों; इनके भीतर रहो, उनके भीतर मत आओ इत्यादि के द्वारा मानव की विकास-प्रेरणा और निर्भीकता को कुण्ठित करने वाला वेदवादरत कर्म कांडी, क्रिया विशेष कुशल । जनता का एक विशेष अङ्ग भयभीत, भ्रान्त, उद्विग्न और विषण्ण रहता ही आया है, मेघ ने उन्हें प्रभावित कर दिया ।

और थोड़ी ही देर में उसने उन सीधे भूखे किसानों के बहुमत को अपनी ओर कर लिया । समिति की बैठक शीघ्र करवायेंगे और राजा को ठीक करके ही रहेंगे उन्होंने बचन दिया ।

मेघ को भोजन कराके वे सब खाने पीने लगे ।

दो पुरुष अलग बैठकर धीरे धीरे बात कर रहे थे—

‘यह ऋषि तो बड़ा घमण्डी और क्रोधी जान पड़ता है ।’

‘अरे चुप ! मन्त्र जानने वाला ब्राह्मण है !’

‘अरे तो उससे थोड़े ही कुछ कह रहा हूँ । अरे भाई तुमसे कहता हूँ कि प्यास बुझाने के कई साधन हैं—अञ्जलि बाँधकर पीलो, लोटे से, चाहे मुँह से ही पी लो । होना चाहिये पानी निर्मल । परन्तु केवल इस बात पर ओज का पटकना कि बस यों पियो, यों खाओ और उसी उसी पर ध्यान को रमाओ कुछ उल्टा जान पड़ता है । मैंने तो अच्छे लोगों से यही सुना है ।’

‘जिधर अपने यहां के सब जायगे वहीं हमें तुम्हें भी चलना पड़ेगा ।’

‘.....देखा जायगा ।’

[ २३ ]

कही थोड़ी सी फ़सल आगई तो अधिकांश खेतों में धूल ही उड़ती रही । मनुष्यों और पशुओं में बीमारियां फैलीं । मनुष्य बचे तो पशुओं का व्यापक नाश हुआ । जगह जगह उनके कङ्काल फैल गये ।

राजा ने यज्ञ बन्द कर दिये । सोचा और अधिक अन्न, घी—चन्दन कहाँ से लावें ? पशुओं की बलि वह करता नहीं था । बलि योग्य पशुओं की संख्या रह ही बहुत कम गई थी ।

बुनकरों के नरे, कैंडे और करघे बेकार हो चले । धुनकरों के धुनकों और पींजनों के लिये कपास नहीं के बराबर रह गया । लुहार, बढ़ई, रथकार, सूत और तन्तुवाय हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते थे । चित्रकार, गायक, वादक और नर्तक भी रोने को आ गये ।

ऐसे थोड़े से ही थे जिनके पास सम्पत्ति थी । वे लुटेरों के डर के मारे चिन्ता में रहने लगे ।

ऐसे लोग अब बहुत हो गये जो कहते थे कि जनता के कष्टों का दायित्व राजा के सिर है ।

एक दिन आया जब मेघ वर्ग के संवृद्ध प्रभाव ने जनपद समिति का अधिवेशन रोमक को गद्दी से उतारने के उद्देश्य से करवा डाला ।

बहुत से लोग जानते थे कि अकालों का पड़ना दैवी दुर्घटना है और वे इसके कारण राजा को पदच्युत करने के लिये तैयार न होते । परन्तु उन्हें राजा की कार्य अक्षमता, उसका जन हितकारी कामों को अधूरा छोड़ना, ऊटपटांग व्यवहार और वर्ण व्यवस्था के प्रति निष्ठा की कमी अखरने लगी थी । अकेली यही होती तो कोई बात न थी, परन्तु इसके साथ दूसरी बातें जुड़ गईं । कुछ लोग महाशालों के प्रभाव में थे, कुछ पणियों और वणिकों के हाथ में । इनका अन्न छीनकर राजा ने जिनको बाँटा था उनकी शक्ति सीमित थी, परन्तु मेघ और उसके वर्गके ब्राह्मणों, महाशालों और लैनदेन करने वाले साहूकारों की अधिक थी ।

समिति की बैठक में जैसा कि नियम था राजा उपस्थित हुआ और उसे खरी खोटी सुननी पड़ी—

‘सामन्तों की कमर तोड़ दी गई है ।’

‘व्यापारियों का व्यवसाय चौपट कर दिया गया है ।’

‘राजा ने बेट बेगार बढ़ाकर अपनी खेती तो बना रखी है, और सबकी उजाड़ दी है ।’

‘भुवन विक्रम ने जानवरों की शिकार करते करते कई गांव वाले मार डाले ! उसको दण्ड न देकर आश्रम में भगा दिया है !!’

‘मनु महाराज ने जनपद के दुःखों का कारण राजा का पाप बतलाया है । यदि जनपद सुखी हो तो राजा बखान करता फिरता है कि मेरे कर्मों का फल है यह । यदि जनपद दुःखी हो तो वह क्यों न स्वीकार करे कि ये दुःख उसके पापों का फल है ?’

‘राजा ने वर्णाश्रम को लुन्जपुन्ज कर दिया है ! इनके राज्य में शूद्र तपस्या कर उठे हैं !!’

‘कुछ तपस्या करते हैं और कुछ डाके डालते हैं । वह न उनको रोक पाते हैं और न इनका कुछ कर पाते हैं ।’

राजा को उत्तर देना पड़ा । इस प्रकार के संगठित विरोध की उसने कल्पना न की थी । क्या कहे और क्या न कहे इस द्विविधा में पड़ गया ।

सोम ने कुछ सहारा दिया,—‘शूद्र तपस्या कर सकते हैं यहाँ तक कि वे ब्राह्मण भी हो सकते हैं ।’

‘शास्त्रों में आज्ञा है ।’ रोमक के मुहँ से निकला ।

मेघ ने तपाक से टीका की,—‘शास्त्रों की चर्चा वेदवेत्ताओं के लिये छोड़िये । अपने कुकर्मों को शास्त्रों की दुहाई में मत लपेटिये । प्रत्येक काल के लिये शास्त्रों में अलग अलग विधि है । आज के युग में उसका निषेध है । कहीं कहीं तो तपस्या करने वाले शूद्र को मार दिये

जाने तक की विधि है ।' समिति में उसको कितनी मान्यता प्राप्त है, मेघ जानता था ।

रोमक ने कहा, 'मे इस बात को ठीक नहीं समझता । परमात्मा ने गुण और कर्म के अनुसार चार वर्गों का सृजन किया है । संभव है आप सरीखे लोगों ने पीछे से यह अनीति जोड़ जाड़ दी हो ।'

मेघ बालब्रह्मचारी था । बालब्रह्मचारी चाहे क्रोधी हो, अहंकारी और छली कपटी ही क्यों न हो है तो ब्रह्मचारी । उसका पहले अपमान किया और भरे अधिवेशन में आज फिर ! समिति के एक प्रभावशाली भाग में रौरा मच गया ।

इस पर रोमक चिल्लाया,—'सत्ता से सत्य बड़ा होता है । न भूलना कि ऋत और सत्य के सहारे ही मनुष्य स्वर्ग को पाता है । वेद और वेदाङ्ग सद्गुण शून्य मनुष्य का वैसे ही त्याग कर देते हैं जैसे चिड़ियों के बच्चे पंख हो जाने पर नीड़ छोड़ कर उड़ जाते हैं ।'

छन्द्र संग्रह—राय लेने—की बारी आगई । समिति में बहुत से लोग राजा को पदच्युत करने के पक्ष में थे तो एक खासी संख्या उसे गद्दी से न उतारने के पक्ष में भी थी । कुछ लोग ऐसे भी थे जो उसे उस समय तक के लिये अपदस्थ करना चाहते थे जब तक कि जनपद के अच्छे दिन फिर से न लौट आवें ।

समिति के प्रधान ने, जो ईशान कहलाता था, हरे पीले और लाल रंग की काठ की शलाकायें तैयार करके बंटवाईं । हरे रंग की राजा को अपदस्थ करने की द्योतक, लाल उसको बनाये रखने की और पीली तब तक के लिये राज्य से अलग कर देने की जब तक कि जनपद फिर से सुखी न हो जाय ।

जब तक शलाकायें तैयार होकर बांटी जायं तब तक वाद विवाद चलता रहा ।

एक ने कहा, 'हमारा राजा शीलवान और सदाचारी है । उसको गद्दी पर से नहीं उतारना चाहिये ।'



‘यह कैसा शील कि अपने अपराधों को स्वीकार नहीं करते ।’

मेघ ने ब्राह्मणों को सावधान किया,—‘जब हम सबने राजा का अभिषेक किया तब समिति से कहा था—हे जनगण, यह तुम्हारा राज है, परन्तु हमारा राजा वर्चस्व है, यह नहीं । राजा और सबका अधिपत भले ही हो परन्तु ब्राह्मणों का नहीं हो सकता । और फिर ऐसा राजा !’

शलाकायें इकट्ठी की गईं । गिनती हुई । पीले रङ्गकी सबसे अधिक निकलीं ।

ईशान ने घोषणा की,—‘राजा रोमक को जनपद समिति उस समय तक के लिये अलग करती है जब तक कि जनपद फिर से सुखी न हो जाय ।’

कुछ लोग सुनकर प्रसन्न हुये, कुछ ने हाय हाय की । रोमक पीला पड़ गया ।

ईशान ने उसे सात्वना दी,—‘संभव है बहुत शीघ्र जनपद का गया गौरव और सुख लौट आवे । तब तक आप अपने दोषों का अनुसन्धान और उनका मार्जन करें ।’

रोमक नीचा सिर करके लड़खड़ाते पैरों वहां से चला गया ।

अब प्रश्न खड़ा हुआ राज्य का कार्य आगे के दिनों में किस प्रकार चलाया जावे । यह बिना विलम्ब तै हो गया । लोग बैठे बैठे थक गये थे और दृढ़ शासन के पक्ष में थे । महाशालों में दीर्घवाहु, साहूकारों में नील, नगर सभा की ओर से सोम, ब्राह्मणों में से मेघ को लिया गया । अमात्य वे ही रहे । मेघ ने अपने वर्ग के दो तीन सदस्य और ले लिये । बहुमत मेघ का था ।

राजा को राज भवन छोड़ने की आज्ञा हुई । मेघ रोमक को सदा के लिये न निकाल पाने की खिन्नता, और कम से कम कुछ दिनों के लिये ही सही, उसे गद्दी पर से पटक देने की प्रसन्नता के दुबीच भूल रहा था । उसने सुझाया,—‘रोमक का सोना-चांदी और हीरे-मोती छीन कर दीनदरिद्रों को बाँट देना चाहिये ।’

समिति ने समर्थन नहीं किया,—

‘यह तो अधर्म है । लूटमार का दूसरा रूप । यह नहीं होने दिया जावेगा ।’

मेघ ने देख लिया कि समिति सीमा का उल्लंघन सहन नहीं करेगी ।

समिति के अधिवेशन की समाप्ति के उपरान्त ही नये शासक मण्डल ने राज्य की बागडोर अपने हाथ में ली । काम दृढ़ता और उत्साह के साथ आरम्भ कर दिया गया । महाशाल, साहूकार और मेघ वर्ग के ब्राह्मण एक सूत्र में बँधने लगे । जो इनके विरोधी थे ने उदासीन हो गये । डाका और बटमारी कम हो गई,—क्योंकि उसमें महाशालों का हाथ अधिक था,—परन्तु साधारण जनता की दरिद्रता में कमी नहीं आई ।

[ २४ ]

रोमक को तिखण्डा राजभवन छोड़कर नगर के एक भवन में जो उसका ही था आना पड़ा। महल से छोटा था। फिर भी उसमें कई सदन और आंगन थे। पिछवाड़े एक उद्यान भी लगा था। पहले इस भवन में रोमक के पशु बँधते थे। अब पशु थोड़े से ही बचे थे। उनके लिये और रोमक के लिये काफ़ी स्थान निकल आया। रोमक अपने कोष के साथ अपना निजी अन्न भांडार, जो थोड़ा सा ही रह गया था, उठा लाया। परन्तु यह स्थान उसे ऐसा लगता था जैसे खाये डालता हो। श्रीहीन रोमक अपने को दिशा रहित शून्य में उड़ता पाने लगा। उसको ममता का वीणावाद्य भी अच्छा नहीं लगता था। जब कभी भुवन का स्मरण हो आता था, जैसे कुपच के रोगी को कभी बहुत पहले खाये हुये चटपटे पकवान की याद आ जाती हो और उसे देर तक मन में न टिका पाता हो। उसके विवेक को घुन लग गया और वह विक्षित सा रहने लगा।

कभी अकेले में अपने आपसे बातें करता और कभी दूसरों से बेतुकी कहता।

सूर्योदय के बहुत पहले सरयू के किनारे चला जाता, कभी सरयू की पतली धार, कभी सरयू की रेत और कभी तटवर्ती वृक्षों को अपने मन की सुनाता। जो लोग प्रातःकाल स्नानादि के लिये वहाँ आते वे भी उसके स्वगत भाषणों को सुनते। किसी को उस पर दया आती और किसी को हँसी। अयोध्या नगर में उपेक्षा के साथ उसकी बातों की चर्चा होती।

एक दिन बड़े भोर जब अँधेरा था वह सरयू तट के उसी स्थान पर गया जहाँ प्रायः जाया करता था। वृक्ष कुन्ज के एक बड़े पेड़ के नीचे खड़े होकर बोला, 'हे वरुण, हे अन्तरिक्ष और पृथ्वी के स्वामी, आप सबके भले बुरे कृत्यों को देखते हैं। बतलाइये मैंने कौनसा पाप किया

जिसका यह दण्ड मुझे दिया गया ? मेरे गौरव का अपहरण क्यों हुआ ? वह गया ही क्यों ?

पेड़ के ऊपर थोड़ी सी खरखराहट हुई । रोमक को सुनाई पड़ा —

‘तुम्हारे पाप अनेक हैं । सबसे बड़े हैं, पशुओं का बलिदान वर्जित कर देना, दासों का भगवा देना, और शूद्रों का एक ओर तपस्या करना, दूसरी ओर डाके डालना । महापुरुषों का अपमान करना.....’

‘आकाशवाणी ! आकाशवाणी !!..... या कोई छल ?’

‘मैं आकाश से बोल रहा हूँ...अन्य जन से भी पूछो । यही वे कहेंगे.....बस, अब नहीं बोलूँगा.....’

रोमक घबरा कर हट गया । आंखें बन्द और कानों में सायं सायं न कुछ दिखलाई पड़े और न कुछ सुनाई पड़े । सरयू के पुलिन पर खुले में गया । उसके कानों में वह आकाशवाणी गूँज रही थी । पौ फटने की प्रतीक्षा करने लगा ।

जब अपनी अनादि और अनन्त सजधज के साथ पौ फटी, उजेला हुआ और स्नान करने वाले इधर उधर दिखलाई पड़ने लगे रोमक उसी पेड़ के नीचे फिर गया । बड़ी बारीकी से उसने ऊपर नीचे और सब दिशाओं को आंख से टटोला, पर वहाँ कुछ भी न दिखलाई पड़ा । स्नान करने के लिये आये हुआओं में से जिसने रोमक की यह क्रिया देखी उसने समझा कि दिमाग़ फिर गया है ।

उधर से कुछ लोग लौटे तो उनसे रोमक ने बातचीत की —

‘आपने यहां या आसपास किसी को देखा ?’

‘नहीं तो ?’

‘आचार्य मेघ कहीं दिखलाई पड़े ?’

‘न ।’

‘आप में से किसी ने कोई आकाशवाणी सुनी ?’

‘न, न ।’

‘मैंने ऐसा क्या किया जो मैं पददलित कर दिया गया ?’

उन लोगों ने मुँह फेर लिया और चलने लगे ।

एक कहता गया—‘आपके राज्य में शूद्र तपस्या कर उठे हैं ।’

दूसरा—‘आप महापुरुषों का, बाल ब्रह्मचारियों का अपमान करते हैं ।’

तीसरा—‘बहुत बातें हैं कौन कहे । यज्ञों में पशुओं का बलिदान रोक दिया ! अकाल बुला डाले !! कौन कहता फिरे ।’

उनके चले जाने पर रोमक ने सोचा क्या यह सब मेरे मतिविभ्रम का फल नहीं है ? घर जाकर सो लूँ ।

घर पहुँचकर सोया और जब मन कुछ स्वस्थ हुआ उसने ममता को आकाशवाणी वाली बात सुनाई ।

ममता स्थिर मति की थी । उसने बिना किसी अन्वेषण या बिश्लेषण के समझाया,—‘पूर्व काल में भले ही कभी आकाशवाणी होती रही हो, इस काल में नहीं होती । यह तो मेघ या उसके किसी सहवर्गी का छल जान पड़ता है ।’

‘उसके उपरान्त ही कुछ नगर निवासी मिले तो उन्होंने भी वही कहा जो मैंने आकाशवाणी में सुना था ।’

‘आकाशवाणी का स्वर किसी परिचित के कण्ठ से मिलता था ?’

‘कह नहीं सकता । उस समय जांच नहीं कर पाई ।’

‘मुझे विश्वास है कि वह किसी का छलछद्म ही था । शत्रुओं ने अपने मनकी करली, फिर भी पीछे पड़े हुये हैं । अस्तु, आप वह सब भूल जाइये । आगे क्या करना है उसीको स्थिरता के साथ सोचा करिये ।’

‘यहाँ मन नहीं लगता है । जनपद में अमरण करने की इच्छा है । मेघ और उसके साथी जनता के मुखियों को बहका सकते थे तो क्या मैं उन्हें ठीक-ठीक बातें न सुझा सकूँगा ? जनपद के अच्छे दिन आने पर भी ये लोग फिर कोई नया षडयन्त्र रच सकते हैं ।’

‘मैं आपके साथ रहूँगी ।’

‘भुवन को देखने की भी लालसा है ।’

‘इन दिनों उससे नहीं मिलना चाहिये । यहाँ का समाचार तो उसने सुन ही लिया होगा । हम लोगों के साक्षात्कार से उसका दुख बढ़ेगा ।’

रोमक एक क्षण सोचकर बोला, ‘ठीक कहती हो ।’

[ २५ ]

भुवन के कई घंटे अध्ययन करने और गुरु के प्रवचन सुनने में जाते थे तो कई घंटे फल मूल संग्रह, स्वच्छन्द विचरण, खेलकूद और आश्रम के छोटे-छोटे खेतों पर भी जिनमें शाक भाजी इत्यादि उत्पन्न की जाती थी, चले जाते थे। जान ही नहीं पड़ता था कि दिन कब आया और कब चला गया।

पिता के अपदस्थ होने का समाचार मिला तो मनको वेदना हुई और कई दिन होती रही, परन्तु जैसे आश्रम में और उसके चारों ओर दूर-दूर तक अच्छे ही अच्छे दिन दिखलाई पड़ते थे वैसे अयोध्या में भी शीघ्र किसी दिन फिरेंगे। यह आशा थी। युवक सहज उत्साह, आत्म विश्वास, और भविष्य की प्रबल आशा ने उसके आश्रम-जीवन में कोई उथल-पुथल नहीं होने दी। आखेट वहां वह खेल नहीं सकता था—तो स्नातक होने के बाद अयोध्या पहुँचकर सही। वाण-विद्या तो भली भाँति सीख रहा था जितनी और जैसी मेघ तो क्या उसका मरा बाप भी नहीं सिखला सकता था ! भुवन की धारणा थी।

आरुणि का और उसका साथ कम होता था, वेद और कल्पक का अधिक। हलके जी वाले वेद को वह गम्भीर आरुणि की अपेक्षा अधिक चाहता था।

एक दिन वह वेद के साथ आश्रम निकटवर्ती जङ्गल की उस टेकड़ी के पास पहुँचा जहां आरम्भ में कपिन्जल योगाभ्यास किया करता था।

‘इस टेकड़ी में बड़ा गुन भरा है’, वेद ने कहा। भुवन के मन में जिज्ञासा की तृप्ति का लोभ उठा और हँसने की इच्छा—

‘कैसा ? कैसा ?’

‘कपिन्जल के योग के साथ साथ फल, फूल, मूल यहीं तो मिलते थे। अपने आप !’

‘ऊँह ! तुम दे जाते थे। सुना है। इसमें क्या ?’

‘मैं तो थोड़े से दे जाता था । गांव की लड़कियां आती थीं जो ढेर के ढेर चढ़ा जाती थीं और वह सबके सब डकार जाता था । योगाभ्यास से वह इतना पुष्ट नहीं हुआ जितना उस सत्कार से ।’

‘लड़कियां आती थीं ! कौन ?’

‘मैंने क्या नाम लिख रखे हैं—जो गिनाता फिरो ? हां एक का नाम याद है—अम्बिका...दूसरी का...भूल गया । कौन कोई शास्त्र है, जो इनके नाम रटता फिरो ।’

‘जङ्गल में गायें चराते तो मैंने भी कइयों को देखा है, परन्तु बात किसी से नहीं की और न किसी ने मुझे कभी फल फूल दिये ।’

‘तो जा बैठो इस टेकड़ी पर और लगाओ समाधि और लो ढेरों फल, मूल, फूल इत्यादि, इत्यादि ।’

‘इत्यादि, इत्यादि !’ भुवन हँस पड़ा ।

‘योगाभ्यास है तो बहुत अच्छी क्रिया, भुवन ने कहा ।

‘हां उसके साथ साथ बहुत सा खाने को मिले तो’, वेद उपेक्षा के साथ बोला ।

भुवन कुछ सोच रहा था ।

‘क्या कोई साधना शुरू कर दी, भुवन ?’ वेद हँसा ।

‘नहीं तो, ऐसे ही कुछ ।’

‘उन लड़कियों में एक तुम्हारे अयोध्या नगर की भी है ।’

‘देखा है ।’

‘गांव में ? तो भिक्षाटन के लिये तुमको जाना नहीं पड़ता ।’

‘नहीं, जङ्गल में, यों ही दूर से ।

‘अयोध्या का नया समाचार उससे तो मिलेगा क्या, गांव में उसके माता से मिल सकता है ।’

भुवन उदास हो गया । मन की बात नहीं कहना चाहता था ।

धूमता फिरता प्रश्न किया,—‘क्या उसके माता पिता से मिले हो ?’

‘कभी नहीं । मैं मिलता विलता किसी से नहीं । दूर से ही चुटकियां ले लेता हूँ ।’



[ २६ ]

फिर फल संग्रह में एक दिन आरुणि और कल्पक का साथ हो गया । वे चारों जङ्गल में दूर निकल गये और अतिकाल हो गया । सभी भूखे थे । भुवन तो तड़प सा गया था ।

बोला, 'फल मूल बहुत इकट्ठे कर लिये हैं । आश्रम दूर है और भूख बहुत लग आई है ।'

वेद भी यही कहना चाहता था । बोला, 'तो अपने मनका कर डालो न ।'

कल्पक मुँह ताकने लगा ।

आरुणि ने निषेध किया,—'आश्रम को लौट चलो । वहीं भोजन करेंगे ।'

भुवन ने प्रतिवाद किया,—'आश्रम तक पहुँचते पहुँचते मैं तो मर ही जाऊँगा', और भोलो में से फल निकाल कर खाने लगा । पास खड़े कल्पक की ओर भी एक बढ़ाया,—'तुम कुछ नहीं बोले तो उसका यह अर्थ नहीं कि तुम्हारी आंतें कुलबुला नहीं रही हैं ।'

कल्पक ने सङ्कोच के साथ ले लिया और कभी वेद, कभी आरुणि का मुँह ताकने लगा । जब आरुणि ने कुछ नहीं कहा और वेद भी खाने लगा तब उसने भी आरम्भ कर दिया ।

वेद बोला, 'तुम आरुणि, संग्रह के समय खाते रहे हो इसीलिये निग्रही बन गये !'

'तुम देख रहे थे न ?'

'देखता होता तो तुम खाते ही कैसे ?' वेद खिलखिला पड़ा ।

'भुवन ने साथ दिया,—'ये तो अकेले-दुकेले में आनन्द लूटते हैं ।'

'जैसे तुम । जहाँ मिलीं दो वहीं रहे सो । जो कुछ मिलता है सब खा जाते हो ।' आरुणी कुछ और न कह सका ।

वेद ने चिढ़ाया,—‘तभी तो भुवन इतना मोटा ,पड़ रहा है, और भाई आरुणि, तुम्हारी भारी भरकम काया इस बात का प्रमाण है कि आश्रम में तुम्हें जो कुछ मिल पाता है उसके ऊपर कहीं न कहीं से कुछ अपने उदरदेव की भेंट करते रहते हो । खाओ भी भूख नाते में अग्निदेव की कोई न कोई है । शान्त और प्रसन्न करते रहो उसे ।’

भुवन ने जोड़ा,—‘मेरा तो सिद्धान्त है अरिष्टा स्याम तन्वा सुवीराः—शरीर से निरोग और उदात्तवीर बनें । यही आरुणि का भी है । पर मेरा सिद्धान्त खुला है इनका चुप्पा ।’ हँस पड़ा ।

आरुणि क्षुब्ध हो गया—

‘यह समय हँसने का है ! उस मन्त्र का इस प्रकार दुरुपयोग निन्दनीय है । भुवन तुम्हें लाज नहीं आती कि तुम्हारे ही ‘दुर्गुण के कारण तुम्हारे पिता पद दलित कर दिये गये ! आश्रम में भी बुरे अभ्यास का त्याग न किया !!’

आरुणि वहाँ से चला गया ।

भुवन ने अधखाया फल फेंक दिया । वेद और कल्पक ने भी खाना बन्द कर दिया ।

‘मैंने मेघ सरीखे अहङ्कारी और क्रोधी ब्राह्मण के सम्बन्ध में कुछ कहा तो बुरा नहीं किया । किसी का यह आरोप कि शिकार में मैंने हाँके वालों को मार डाला बिलकुल भूठ है ।’ भुवन का गला रुँध गया था ।

वेद ने उसे सान्त्वना दी,—‘मैं और कल्पक एक ऊँचे पेड़ पर चढ़े सब देख और सुन रहे थे । तुमने किसी को नहीं मारा वारा ।’

कल्पक ने समर्थन किया, ‘हमने सब देखा । तुम जब घायल और अचेत हो गये तब उस शूद्र तपस्वी ने ही तुम्हारी रक्षा की थी । फिर क्यों न तुम्हारे पिता शूद्रों की रक्षा करें ?’

‘कौन ये वे शूद्र तपस्वी ? नाम जानते हो ?’ भुवन ने उत्सुकता के साथ पूछा ।

कल्पक के मुँह तक नाम आया, परन्तु वेद ने रोक दिया,—‘गुरुदेव ने वर्जित कर दिया है। अभी जानकर करोगे भी क्या ? गुरुदेव स्वयं कभी बतलायेंगे।’

भुवन को उत्सुकता छोड़नी पड़ी।

जिस दिशा में आरुणि गया था उस दिशा में देखते हुए वेद ने कहा, ‘आरुणि पहले पहुँच कर गुरुदेव से कुछ इधर उधर की न जड़ देवे इसलिये अब चलो।’

वे तीनों वहाँ से डग बढ़ाते चले गये।

[ २७ ]

भुवन ने धीरे धीरे अपने उन सहपाठियों का सङ्ग छोड़कर अकेले ही फल संग्रह और अमरण करना आरम्भ कर दिया । ध्यान जमाने के लिये वह कभी-कभी उस टेकड़ी पर जाकर बैठने लगा जहाँ कपिन्जल ने पहले-पहले अभ्यास किया था । टेकड़ी के आसपास ऊँचे ऊँचे घने पेड़ थे । कोई फल वाले और फूल वाले तो बहुत । कुञ्जों के बीच बीच में खुले हुये छोटे छोटे स्थल थे जिन पर दूबा हरियाती रहती थी । जब वह चरने योग्य न रहती तब पशु पेड़ों के नीचे लटकने वाली लम्बी लम्बी डालियों पर मुँह डालते ।

पहले ही दिन भुवन को उस टीले पर अच्छा लगा । ध्यान जमाने की चेष्टा की तो कुछ जमा । थोड़े से ही क्षण बाद वेद की बात स्मरण हो आई—इस टेकड़ी में बड़ा गुन भरा है ! फिर वेद की हँसी की बातों का क्रम ध्यान में उमड़ पड़ा । उन्हें । अच्छा है, परन्तु कुछ उथला छिछला है । उसने कहा था कि—कौन ? अम्बिका नाम की एक लड़की गाँव में रहती है । दूसरी अयोध्या से आई है । यह वही है जो उस दिन मार्ग में जब पिता जी के पीछे पीछे आश्रम की तरफ चला जा रहा था मिली थी । ध्यान उचट गया । थोड़ी सी ही दूरी पर गाय के रँभाने का शब्द सुनाई पड़ा । आँख खुल गई । गायें सामने नहीं आई थीं । किसी कुञ्ज के पीछे चर रही थीं । शायद इनके साथ वह भी हो । कपिन्जल को फल दे जाती थी । कपिन्जल योगी हो गया ! गुरु की कृपा । कभी मिला तो पूछूँगा कि उस दिन जब अयोध्या से भागे तब उसके आगे कैसी क्या क्या बीती । नील ने उसको बहुत सताया था । उसकी लड़की हिमानी कैसी वज्र है ! अरे, कहाँ से कहाँ पहुँच गया ! ध्यान करने के लिये उसने फिर आखें बन्द की । श्वास प्रश्वास का नियमन किया कि कानों में, गायों के हाँकने संभालने का 'टिक टिक चिकचिक' शब्द पड़ा । आँखें अपने आप खुल गईं । थोड़ी सी गायें सामने के छोटे से मैदान में

चर रही थीं। जिसके मुँह से 'टिकटिक चिकचिक' निकली होगी वह नहीं दिखलाई पड़ा। आँखें टटोलने में लग गईं। एक वृक्ष के पीछे लाल रंग की ओढ़नी का छोटा सा छोर दिखलाई पड़ा। शायद कोई गाय या बछड़ा-बछिया उस रंग की हो। आँखें और गड़ाईं वायु के भँकोरे से लाल रंग का पल्ला इधर उधर डुला। यह तो कोई लड़की है! क्या कर रही हैं? इस तरह क्यों आड़ पकड़े खड़ी है? छाया ले रही होगी। घूप में कहाँ तक घूमें? वह होगी जिसका नाम वेद ने अम्बिका बतलाया था। अथवा वह-दूसरी हो। या दोनों आपस में कुछ बात कर रही हों। उसका नाम न मालूम हुआ। कभी मिले तो पूछूँ? अरे यह तो अनुचित होगा। अनुचित क्यों? नाम पूछने में बुराई ही क्या? हमारे नगर की रहने वाली है। बड़ी अच्छी और भोली।

पेड़ की ओट से देखते देखते गौरी निकली। भुवन ने आँखें भुकालीं, परन्तु बन्द नहीं कीं। कनखियों देख रहा था। गौरी ने सामने की गाय पर आँख पसारी। फिर भुवन की ओर देखकर दूसरी ओर मुँह कर लिया। एक क्षण उपरान्त धीरे धीरे टेकड़ी के पास आई। वहाँ उसकी एक गाय आ गई थी। गाय की पीठ पर हाथ फेरते-फेरते उसने भुवन पर टकटकी लगाई। भुवन उसे नीचे नीचे से देखता रहा।

गौरी के अञ्जल में कुछ फल थे। उसने खोले और फिर बांध लिये। गाय एक ओर चलने लगी और वह उसके पीछे पीछे। फिर वह यकायक मुड़ी और टेकड़ी पर चढ़ने लगी। भुवन ने आँख मींच लीं। उसके कान आँख का काम करने लगे।

गौरी ने आकर अञ्जल में से फल निकाले और उसके सामने रख दिये। भुवन ने आँखें खोलीं। गौरी उसकी ओर देख रही थी। उसने तुरन्त बरोनी नीची करलीं और चलने को हुई।

'तुम्हारा नाम क्या है?' भुवन ने सहसा प्रश्न किया।

'जौरी', उसने धीरे से उत्तर दिया और अपने पशुओं की ओर देखने लगी। ठिठक गई थी।

‘उस दिन जब मैं पिता जी के साथ आश्रम की ओर जा रहा था तब तुम्हें पहली बार देखा था । तुमने मुझे अयोध्या में कभी देखा ?’

‘हां ।’

‘इतने बहुत से फल मेरे सामने रख दिये क्या करूँगा ?’

‘खा लेना ।’

‘थोड़े से तुम लेती जाओ ।’

‘और ढूँढ़ लूँगी ।’

भुवन की समझ में नहीं आ रहा था कि अब और क्या कहे तो झिझक कर बोला, ‘बैठ जाओ, थक गई होगी ।’

‘नहीं । कोई आता होगा...’ अरे ! मेरी गायें भटक गई हैं !!’ और गौरी टीले पर से जल्दी उतर कर निकटवर्ती खुले स्थान में जा खड़ी हुई । वहाँ से गायें दूर थीं, पर वह ‘टिकटिक चिकचिक’ करने लगी । फिर चली गई । उसने लौट कर नहीं देखा ।

×

×

×

भुवन इस स्थान पर बहुधा आने लगा और उसी प्रकार बैठने लगा । कभी कभी गौरी अम्बिका के साथ आई तो अपनी सखी के साथ चुहल करती रही, हँसती रही, परन्तु टेकड़ी पर नहीं आई, फल लिये थी पर उसके सामने फल नहीं रखे ।

एक दिन अम्बिका ने, जब वे दोनों भुवन से कुछ दूर थीं, गौरी से कहा, ‘थोड़े से फल दे आओ न । भूखे होंगे ।’

‘तुम्हीं न दे आओ अपने ।’

‘खाऊँ या दूसरों को खिलाऊँ ?’

‘मेरा भी यही हाल है ।’

‘ओ हो हो हो ! जा तुम्हें मेरी सौगन्ध है ।’

‘अरे ! तुम तो वैसी ही बेबस करती हो ।’

‘हूँ ! अच्छा !! जा यहां से । वे तो बिचारे ध्यान मग्न हैं । उस शूद्र योगी को तो बहुत फल चढ़ाती थीं ! इन्होंने क्या बिगाड़ा है ?’

गौरी भोंहें तान कर चली गई । टेकड़ी पर जल्दी जल्दी चढ़ी, भुवन के सामने फल रखे और चलने को हुई ।

भुवन ने धीरे से कहा, 'कई दिन बाद आई' गौरी, और ऐसी जल्दी चल दी ! ठहरो न, कुछ बात करें ।'

'नहीं, अम्बिका वहाँ खड़ी है ।' कहकर गौरी ने उसकी ओर देखा और चली गई ।

'अरी इतनी आतुरता से चली आई !'—अम्बिका बोली,—'एक बात तो कर लेती अपने राजकुमार से !'

'अरे ! वैसे ही बकती है !!' पर गौरी के कण्ठ में क्रोध नहीं था ।

×

×

×

एक दिन गौरी अकेली आई । टेकड़ी पर भुवन भी अकेला बैठा था । वैसे ही ध्यानमग्न । देख तो रहा ही था, गौरी ने जैसे ही फल सामने रखे उसने आंखें खोल दीं । अबकी बार फलों के साथ थोड़े से जङ्गली फूल भी थे । गौरी मुस्करा रही थी ।

'अरे ! आज बहुत दिनों बाद अचानक दिखलाई पड़ीं गौरी ! मैं ध्यान में था ।'

'ध्यान में नहीं थे । मैंने तो देख लिया । इधर उधर भाँक रहे थे ।'

भुवन हँस पड़ा—जैसे उसकी आत्मा बोली हो ।

'तो तुम इतने दिन क्यों नहीं आई ?' उसी हँसी में भुवन ने पूछा ।

'मैं तो लगभग नित्य ही आई । तुम्हीं नहीं दिखलाई पड़े । कभी दिखे भी तो किसी न किसी के साथ ।'

'तुम भी तो अम्बिका के साथ आती रहीं—पर यह सच है कि मैं किसी किसी दिन यहाँ नहीं आ पाया ।'

'अब जाऊँ—' एक गाय उसकी ओर देख रही थी ।

'जी चाहता है कि.....' आगे भुवन न बोल सका ।

‘कोई आ रहा है,’ गौरी चोंकी और शीघ्रता के साथ ‘चल दी । उसने अपने पशु हाँके और एक कुञ्ज में विलीन हो गई ।

थोड़े ही समय पीछे वहाँ वेद कुछ फल लिये आ गया । उसके आने के पहले ही भुवन ने सिटपिटाकर ध्यान की मुद्रा बनाई और आँखें बन्द कर लीं ।

भुवन के सामने फल और फूल देखकर वेद ने सिर हिलाया और बोला, ‘अरे भाई योगीजी, समाधि खोलो ! यह अकिंचन सामने खड़ा है !!’

भुवन ने आँखें खोलीं । लाल थीं । परन्तु वह स्थिर था ।

‘वेद भाई, आज तुम चले गये थे गाँव में तो मैं यहाँ निकल पड़ा और ध्यान में रम गया ।’ भुवन ने कहा ।

‘और ऐसी सिद्धि प्राप्ति की कि फलों का ढेर सामने आ लगा और कहीं से फूल भी बरस पड़े !’

भुवन भीतर भीतर सकपकाया, परन्तु उसने बात बनाई,—‘कोई रख गया होगा । मैं तो ध्यानमग्न था । तुम क्या करने गये थे गाँव में ?’

‘इतनी जल्दी भूल गये ! गुरुदेव ने कल संध्या के उपरान्त कहा था न कि उस खेत की जुताई के लिये कहीं से बैलों का प्रबन्ध कर लेना तो वहाँ चला गया था ।’

‘फिर ?’

‘फिर क्या, गाँव वाले इतने पाजी हैं, इतने दुष्ट कि किसी ने कोई बहाना कर दिया किसी ने कोई । अब कल्पक को लेकर जाता हूँ । एक आध की पीठ ठोक्का और इधर उधर कहीं से बैल पकड़ लाऊँगा तब वह खेत जुत पायगा । चलो न मेरे साथ । दो से तीन भले ।’

भुवन ने नाहीं कर दी । वेद मन ही मन कुढ़ता हुआ चला गया ।



[ २८ ]

सन्ध्या के उपरान्त धौम्य ने प्रवचन के लिये कुछ शिष्यों को अपनी कुटी के भीतर बुलाया । एक कोने में तेल का छोटा सा दीपक टिमटिमा रहा था । उसमें धौम्य जगमगा रहे थे ।

शिष्यों में भुवन, वेद और कल्पक तो थे आरुणि नहीं था ।

धौम्य ने पूछा आरुणि कहां है ?

वेद बोला, 'सो गया होगा गुरुदेव ।'

कल्पक ने हँसी को दबा कर कहा, 'आश्रम के खेत की चिड़ियां उड़ते उड़ते ही सो जाता है वह तो ।'

भुवन क्यों चूकता ?—'जब आप विद्याओं के रहस्य समझाते हैं तब वह जमुहाई अँगड़ाई लेने लगता है । हम लोगों की भांति तल्लीन नहीं होता । बातें भी विचित्र सी करता है । एक रात कहता था 'तारिकायें स्वर्ग का साहित्य हैं !' एक दिन बोला 'सृष्टि परमात्मा का आत्म चरित है !!' 'सङ्गीत प्रकृति की बन्दना है !!! और, और, भाषा व्याकरण का गणित है !!!! अटपटी बातें करता है ।'

'हैं' कहकर धौम्य थोड़ी देर चुप रहे । फिर वेद से प्रश्न किया, 'वह जो एक खेत जोतने के लिये कहा था, उसका क्या हुआ ?'

'गाँव में बैल मांगने गया तो किसी ने नहीं दिये । जिससे मांगे उसी ने कुछ न कुछ बहाना कर दिया । फिर मैं कल्पक को साथ लेकर गया । चाहता था कि बहाना बनाने वालों को पीट डालूँ, पर बीच बिचाव करने वाले आ गये इसलिये रह गया । कल देखूँगा ।'

'शाक भाजी कैसे होगी ? धौम्य ने कहा, 'हम सबने अपने हाथों परिश्रम करके कुआँ खोदकर पानी तो निकाल लिया, पर कठोर भूमि को नम्र किये बिना काम नहीं चलेगा ।'

भुवन ने उत्साह दिखलाया,—'कल मैं भी इनके साथ चला जाऊँगा फिर देखें बैल कैसे नहीं मिलते ।'

धौम्य बोले, 'इस समस्या के सुलझाने की बात पीछे करूँगा, पहले प्रश्न और परिप्रश्न। बतलाओ वर्णाश्रम क्या है ?'

वेद ने अविलम्ब उत्तर दिया,—'चार वर्ण अर्थात् जातियाँ और चार आश्रम।'

अन्य शिष्य चुप रहे।

धौम्य ने व्यङ्ग के स्वर में कहा, 'बहुत समझे ! अब ध्यान लगाकर सुनो। श्रम सबके ऊपर है, सबका राजा। उसका विभाजन वर्ण-कल्पना हैं। विद्याओं का आजीवन संग्रह, मनन और वितरण करने वाला, ब्राह्मण, देश की रक्षा और समृद्धि का सहायक क्षत्रिय, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और उद्योगों का करने बढ़ाने वाला वैश्य—

वेद ने परिप्रश्न किया,—'और शूद्र कौन गुरुदेव ?'

'चोर, डाकू, अधर्मी, अत्याचारी दस्यु ये शूद्र हैं। श्रम करने वाला शूद्र नहीं है। जन्म से कोई भी शूद्र नहीं। स्मृति और श्रुति की मेरी व्याख्या यही है और मैं इसी को चलाऊँगा, अहङ्कार, द्वेष, भय, परिग्रह और वासनाओं में लिप्त लोग भी दस्यु और शूद्र कहलायेंगे। मानव के सबसे बड़े शत्रु अहङ्कार और स्वार्थ हैं। इनको वश में करने के लिये आश्रमों का सृजन हुआ है ! अहङ्कारी, द्वेषी और क्रोधी नीच हैं -'

भुवन बोला, 'तो गुरुदेव, आचार्य मेघ और नीलपणि नीच हैं।'

धौम्य ने हँसकर कहा, 'इसका उत्तर फिर कभी पाओगे।'

उसी समय आरुणि आकर बैठ गया।

धौम्य ने पूछा, 'तुम कहाँ थे आरुणि ?'

आरुणि ने बतलाया, 'एक का बैल गड्ढे में गिर गया था। तो उसको उठाने और गड्ढे से बाहर करने के लिये चला गया था। उसी में इतना बिलम्ब हो गया गुरुदेव।'

'एक तो क्या पाँच प्रवचनों के सुनने का श्रय तुमको अपने इस एक काम से मिल गया। एक दिन तुम अपने पञ्चाल जनपद को चमका दोगे', धौम्य ने मुस्कराकर कहा।

भुवन ने अपने भीतर लघुता अनुभव की ।  
 धौम्य ने थोड़े से प्रश्न और किये, फिर अन्त में बोले,  
 'भुवन तुम गांव में जाने की अनुमति चाहते थे ?'  
 'जी ।'

'मैं अनुमति देता हूं, परन्तु केवल भिक्षा मांगने के लिये । तुम वन से फल मूल न लाकर केवल समिधा ईधन इत्यादि लाया करो । क्षत्रिय या राजपुत्र के लिये आश्रम में भी रहते हुये भिक्षा मांगने का निषेध है, परन्तु मैं तुम्हारे लिये इसका उल्लंघन करता हूं । बिना इसके तुम्हारे भीतर भरा हुआ अहङ्कार दूर न हो सकेगा । और देखो शरीर से निरोग और उदात्त वीर बनने के लिये पेट को ठांस ठांस कर भरने की आवश्यकता नहीं है । जो कुछ भी भिक्षा में मिले सबका सब यहीं लाया करो । समझे ?'

'जो आज्ञा गुरुदेव ।'

वेद और कल्पक को धौम्य ने आदेश दिया,— तुम्हारी हिंसा और अहमन्यता का उपचार यह है कि किसी के भी बैल न माँग कर खेत को स्वयं जोतो, अपने ही कन्धों पर जुयें रखकर खेत जोतो । समझ गये ?'

दोनों के मुँह से दबे स्वर में एक साथ निकला, 'जो आज्ञा ।'

आरुणि पिघल उठा,—'मैं इनकी सहायता कर दूँ, गुरुदेव ?'

'नहीं । तुम गांव की वीथि और गली अपने अवकाश के समय में स्वच्छ करो । भुवन यथावकाश तुम्हारी सहायता करेगा । गांव के रोगियों और पीड़ितों की भी, जब समय मिले, सेवा करो । वेद और कल्पक एक बार नहीं बार बार खेत की जुताई का काम करें । जब तक इनके भीतर से अहङ्कार और हिंसा ने पलायन नहीं किया तब तक बराबर इनके कन्धों पर बैलों का जुआं रहेगा । श्रम का महत्व भी तभी समझ में आवेगा । दरिद्रता और विपत्ति परमात्मा की छैनी और हथौड़ी हैं

जिनसे वह अपनी सृष्टि के प्रतिभाशाली व्यक्तियों की बुद्धि और विवेक की प्रतिमा को छील छील कर कल्याणकारी बनाता है ।’

वेद और कल्पक ने गुरु की आज्ञा पालने के लिये अपने अपने निश्चय को कसा । भुवन ने सोचा सस्ते छूटे । गाँव का जाना भला रहा । वहाँ कुछ नही खायेंगे तो यहीं कौन सी कमी रहेगी ? और..... और.....

[ २६ ]

प्रातःकाल के नित्यकर्म और अध्ययन से निबट कर भुवन दोपहर के लगभग भिक्षा मांगने के लिये उस गाँव में जाया करता था जहाँ गौरी रहने लगी थी। गाँव का नाम धौम्यखेड़ा पड़ गया था। नैमिषारण्य में और भी अनेक गाँव थे, पर वे दूर दूर बसे थे। धौम्य के आश्रम के निकट यही था। भिक्षा मांग लाने के बाद फिर उसे समिधा और ईधन बीनने के लिये जंगल में जाना पड़ता था। गौरी प्रातःकाल के उपरान्त पशुओं को चराने के लिये कभी वनके इस भाग में और कभी उसमें निकल जाती। दोपहरी के बाद वह रोटी खाने के लिये घर लौट आती थी। ढोरो को कभी अम्बिका के और कभी किसी और स्त्री के हवाले कर आती थी।

भुवन नित्य उमंग लेकर कभी गाँव और कभी जंगल में जाता, परन्तु गौरी उसको नहीं मिली।

भिक्षाटन के लिये एक दिन वह वेद और कल्पक के पास होकर निकला। सावन भादों का महीना था। कही पानी बरसा हो या न बरसा हो नैमिषारण्य में गत वर्षों की भांति थोड़ा बहुत तो बरसा ही था। इस समय नभ में बादल के टुकड़े इधर-उधर भटक रहे थे। दोपहर के सूर्य की किरणों मन्द मन्द पवन के सोधेपन को उबाल सा रही थीं।

वेद और कल्पक कन्धों पर जुआं रखे, एक एक हाथ से साधे एक दूसरे को कड़खे से सुना रहे थे—

वेद कह रहा था,—‘खाते हो पत्तल भर भर और काम के समय तनिक से मैं हाँफ हाँफ जाते हो ! एक मुझे देखो कि छाती फुला फुलाकर हल खींचता हूँ।’

‘देख लिया,’ कल्पक टर्क रहा था,—‘बातों के ही हो। मेरे कन्धे सूज गये। उनसे रक्त तक भरा तो भी मैंने किसी के सामने रोना नहीं रोया। तुम इधर मेरे बल से तो लाभ उठाते हो और दिखलाते फिरते हो अपनी थोड़ी सी सूजन चाहे जिसको ! ऊपर से ऐंठते हो।’

‘जी चाहता है कि—’

‘क्या चाहता है ?’

‘एक धप्प ढील दूँ तुम्हारे सिर पर ।’

‘मेरे क्या हाथ पैर नहीं हैं ?’

‘क्या बतलाऊँ गुरुदेव की आज्ञा है कि उतनी जुताई हो जाने तक कन्धे से जुआँ न उतारना नहीं तो—नहीं तो—’

‘नहीं तो, नहीं तो बड़े आये कहीं के । खींचो, चलो चुपचाप ।’

दोनों पसीने में तर थे । दोनों के कन्धे सूजे हुये थे ।

भुवन इनकी बातें सुनकर हँस पड़ा । वेद और कल्पक का क्रोध एक धारा में बहने लगा ।

‘हँसलो बेटा भुवन, हँस लो,’—वेद चिड़चिड़ाया,—‘एक दिन आयगा जब तुम्हारी हड्डी पसली का चूरा होगा ।’

‘जब भुवन उन दोनों के निकट आ गया और उनके सूजे हुये कन्धों में रक्त की झलझलाहट देखी तब पिघल गया—

‘भाई क्षमा करना, इतना हँसना तुम्हीं से तो सीखा है ।’

वे दोनों ठण्डे नहीं पड़े ।

वेद एक आँख की भोंह ऊँची करके गाँव की दिशा में सिर हिलाते हुये बोला, ‘बच्चू, हमारे ये दिन न रहेंगे । समय आने दो तब तुम्हारी सारी कलाई.....’

‘ये न खोलेंगे तो मैं खोलूँगा,’—कल्पक ने वाक्य समाप्त किया ।

‘मेने ऐसा क्या किया है ?’ भुवन के ढंग में घबराहट थी ।

‘हूँ ! कोई न कहे तो भी सब उजागर होकर रहेगा, क्योंकि गुरुदेव की आँख से कुछ नहीं बचता ।’

‘बढ़ो कल्पक । अभी बहुत काम पड़ा है ।’

भुवन की पूरी उपेक्षा करके वे दोनों सूजे हुये कन्धों का जोर लगाकर सूखे हुये होठों सांस भरते हुये जुताई करने लगे ।

भुवन नीचा सिर करके कहता हुआ चला गया,—‘मैंने कोई पाप नहीं किया ।’

गुरु की सफेद जटा और दाढ़ी, पैनी आँख, सीधी दृढ़ काया आँखें नीची किये हुये भी बार बार सामने आकर खड़ी होने लगी ।

‘मैंने कोई पाप नहीं किया !’ उसके कानों में गूँज रहा था । जसे उसके शब्द न हों किसी दूसरे के हों । मैंने गौरी से ऐसा कहा ही क्या है ? मिली भी महीनों से नहीं है । जब गुरुकुल छोड़ूँगा तब उसके साथ वैदिक रीति से विवाह करूँगा । माता-पिता का आशीर्वाद मिलेगा और गुरु का वरदान भी । गुरु की फिर वही पैनी आँख ! और उसके ऊपर तनी हुई वही भ्रुकुटि !!

जब भुवन गाँव में पहुँचा तो आरुणि को एक गली का नाबदान स्वच्छ करते पाया । कुछ गाँव वाले भी उसके साथ जुट रहे थे । भुवन के मन में आरुणि के प्रति श्रद्धा उमड़ी ।

बोला, ‘आरुणि भाई, मुझे भी इसमें अपने साथ लगालो ।’

‘नहीं भाई’,—आरुणि ने स्नेह के साथ कहा,—‘तुम्हारे लिये गुरुदेव की जो आज्ञा है वह करो । तुम्हारे हाथ मैले कुचैले हो जायँगे । फिर मधुकरी के संग्रह में देर लग जायगी । अपना काम देखो ।’

आरुणि के मोटे तगड़े पन्जे उसकी मांसल कुहनियों तक काले धूमरे कीचड़ में लतपत थे । तभी गुरुदेव का इतना प्यार इसने पाया है, भुवन के मन में उठा और वह आगे बढ़ गया । अब गुरु के उस प्रतिविम्ब में वह आतङ्क नहीं दिखलाई पड़ रहा था । होठों पर मुस्कान थी । आरुणि के प्रति उसकी श्रद्धा बढ़ी । मैं आरुणि जैसा ही बनूँगा उसके भीतर प्रेरणा ने लहर मारी । उस दिन गौरी को देखने के लिये उसके मन में उमङ्ग नहीं जागी ।

[ ३० ]

इस साल भी अयोध्या में मेह के पानी की बूंद तक दुर्लभ रहीं। बड़े लोगों पर अकालों का उतना प्रभाव नहीं था। राजसत्ता उन्हीं के छोटे से वर्ग के हाथों में थी। शासन कठोर था। अराजकता कम हो गई थी। उस छोटे से शासक-वर्ग को अपनी शासन-निष्ठा का यही रूप बहुत अधिक दिखलाई पड़ता था। सत्ता सिमिट सिमिट कर इसी छोटे से मेघ, दीर्घबाहु, नील इत्यादि के—वर्ग के हाथों में केन्द्रित होती जा रही थी। राजा जब था, था तो एक, परन्तु सत्ता गाँव गाँव और नगर-नगर में बँटी बिखरी थी। जनता को इधर अकाल अखर रहे थे, उधर यह एक छोटे से वर्ग का राज्य। अनेक व्यवसायी और महाजन उस परिस्थिति में भी समृद्धि का सुख अनुभव कर रहे थे। यदि राजा फिर से सिंहासनासीन हो गया,—और वह बड़ी 'अच्छे दिन' आने पर ही आयगी, तो हमारा क्या बिगड़ेगा? साधारण जन सोचता था कि राजा फिर गद्दी पर आया नहीं कि इन स्वार्थियों की तोंद छूँटे बिना रहने की नहीं। और अच्छे दिन कभी न कभी लौटेंगे।

रोमक ने भ्रमण करने का सङ्कल्प स्थगित कर दिया। क्या करूँ? किससे क्या कहूँ? क्या मुँह दिखलाऊँ? सोचते सोचते वह और भी अनमना और विक्षिप्त सा रहने लगा। ममता उसे बाहर घुमाना चाहती थी, परन्तु उसके उन प्रश्नों का मनचाहा उत्तर न दे पाकर घर में ही ढाढ़स देती रहती थी।

शरद आई और गई। जाड़े आये और चले गये। वसंत मुर्झाकर विलीन हो गई और ग्रीष्म ने अपने लम्बे चौड़े पैर फैलाये। क्या अब की बार भी पानी न बरसेगा?



[ ३१ ]

नैमिषारण्य में ग्रीष्म ऋतु भिन्नकती भिन्नकती हुई सी आती थी और मुँह चुराकर चली जाती थी। जाने को ही थी जब एक दिन भुवन दोपहरी के उपरान्त जङ्गल में समिधा और ईंधन इकट्ठा करने के लिये निकल पड़ा। बीन बीन कर एक ठौर थोड़ी सी लकड़ी जोड़ पाई थी कि पीछे से किसी ने कहा, 'कुछ में भी ले आई हूँ।'।

लौटकर भुवन ने देखा तो गौरी खड़ी है। गुरु का आतङ्क चित्र आंखों के सामने नहीं आया। गौरी के भोले चेहरे पर हलकी मुस्कान बिखर रही थी।

'गौरी ! अरे !! महीनों बरसों में आज दिखलाई पड़ी !!!'

'मैं या तुम ?'

'न कभी गांव में मिलीं और न जङ्गल में !'

'और न तुम कभी उस टेकड़ी पर। वहां फल तो नहीं कभी कभी फूल रख आती थी। कभी नहीं मिले।'।

'कभी गया भी तो ऐसे समय जब फूल मुर्झा चुके होंगे। तुम भूलीं नहीं गौरी ?'

'कौन सी बात ? ऐसा क्या था जो मैं भूल जाती ?' क्यों ?... 'आगे गौरी कुछ न कह सकी।

वह अब कुछ सयानी हो गई थी।

'तुमने यह लकड़ी क्यों इकट्ठी की ? गायों का चराना क्या कम था ? तुम ठहरो। मैं बीने लाता हूँ तुम्हारे लिये ईंधन। फिर आश्रम के लिये इकट्ठा कर लूँगा।'।

'वाह ! वाह !! यह तो मैं तुम्हारे लिये ही इकट्ठा कर लाई हूँ।'।

'अरे ! कब से कर रही हो यह ?'

'कभी कभी—नहीं कभी से भी नहीं। तुम्हें दूर से देखा तो सोचा तुम क्यों इतना पसीना बहाओ। वहीं मिल गईं ये लकड़ियाँ और उठा लाई।'।

भुवन हँस पड़ा। ऐसी हँसी उसने बहुत समय के बाद पाई थी।

‘ये थोड़ी सी है ! तो बहुत कितनी होती होगी गौरी ?’

‘मैं कौन गिनने गई। इनको तुम्हारे वाले ढेर में रखे देती हूँ और थोड़ी सी और बीने लाती हूँ।’

गौरी ने अपनी लकड़ियों को अविलम्ब भुवन के छोटे से ढेर में मिला दिया।

‘गौरी, एक बात सुनो।’

‘कहो।’

‘तुम थोड़ी देर सुस्ता लो। मैं बीनता हूँ। उनमें से थोड़ी सी इस ढेर में डाल दूँगा, बची तुम लेती जाना।’

‘वाह ! मैं जब घर जाऊँगी तो मार्ग में से इकट्ठी करती जाऊँगी। तुम बैठ जाओ। भोजन नहीं किया है। भूखे होंगे। मेरे पास कुछ फल है। इन्हे बैठे बैठे खाओ।’

‘नही गौरी, मुझे गुरुदेव ने वर्जित कर दिया है। फल वल जो कुछ भी मिलें सीधे आश्रम में लाओ, और वन से तो फल लाओ ही नहीं, यह आज्ञा है। आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया जा सकता।’

गौरी के चेहरे पर उदासी आ गई। जैसे छिटकी चांदनी पर भीनी बदली। कुछ सोचने लगी।

भुवन ने कहा, ‘तुम छात्रीशाला या गुरुकुल में होतीं तो समझ लेतीं कि गुरु की आज्ञा क्या होती है। तुमने कहीं कभी कुछ पढ़ा है ?’

‘हां थोड़ा सा घर पर। और रात में यहां भी पढ़ती हूँ। लिखना भी सीखा है। पर तुम तो वेद शास्त्र पढ़ते हो।’

भुवन ने उस भोली भाली सुन्दर लड़की को बहुत बड़ा और उसके सामने अपने को बहुत रीना भीना और छोटा अवगत किया। फिर तुरन्त भीतर के अहङ्कार ने उसे धक्का दिया।

‘हां...आं...पढ़ता तो हूँ..... पढ़ना ही चाहिये.....तुम और भी पढ़ना । फिर मैं...अर्थात् तुम बहुत पढ़कर और भी बहुत बड़ी हो जाओगी ।’ भुवन का अहङ्कार उसे धक्का देकर पीछे हट गया ।

गौरी नहीं समझी—

‘जितना बन सकेगा पढ़ती रहूंगी.....फिर.....फिर जब अयोध्या लोटूंगी...तब ..’ गौरी आगे कुछ न कह सकी । अपनी भटकती हुई गायों पर आंखें भटकाने लगी ।

‘कब तक लौटोगी गौरी अयोध्या ?’

‘जब माता पिता यहां से जायेंगे । मैं क्या बतला सकती हूँ ।’

‘मैं चार वर्ष पीछे अयोध्या जा सकूँगा । तब तक.....’ भुवन के गले तक कुछ और आया, पर आगे न बढ़ सका । गौरी ने मुंह फेर लिया था ।

‘गायों को देख लूँ...’ गौरी चलने को हुई ।

‘और वे लकड़ियां ?’ भुवन ने कहा ।

उसने उत्तर दिया,—‘बीन कर अभी लाती हूँ ।’ लौटकर मुस्कराई और चलने लगी ।

‘ठहरो गौरी, तुम्हें यदि मेरे लिये लकड़ी इकट्ठी करने का हठ है तो मुझे हठ है कि मैं तब तक तुम्हारी गायों को संभालूँ ।’

‘वाह ! कोई देखेगा तो क्या कहेगा ?’

‘कहेगा कि मैं तो बड़ा निकम्मा हूँ और तुममें बहुत बहुत पुरुषार्थ है ।’

गौरी हँस पड़ी । ऐसी हँसी उसने कभी नहीं देखी थी । उसने कहीं पढ़ा था कि पवित्र गङ्गा सफ़ेद हिम से ढँके हुये हिमालय से सूर्य की किरणों के साथ खेलती हुई निकली है तो उसे स्मरण हो आया कि उस गङ्गा का यही रूप होगा ।

भुवन उसकी ओर बढ़ा। गौरी ने बड़ी तीव्रता के साथ अपनी डगें बढ़ाईं। 'वाह ! वहीं रहो !!' गौरी कहती हुई चली गई और निषेध का हाथ भी झुलाती गई।

'तुम गङ्गा की भांति निर्मल और पवित्र हो गौरी,' कहकर भुवन यकायक रुक गया—गुरुदेव का वह आतङ्क—रूप सामने आ खड़ा हुआ था।

गौरी ने थोड़ी दूर जाकर गायों को इकट्ठा किया—लकड़ी भी बीनती रही। भुवन भी बीनता रहा। सूखी लकड़ी का मिलना सहज नहीं था। वह दूर निकल गया। जब गौरी थोड़ी सी लकड़ी उस स्थान पर लाई तब भुवन नहीं मिला। थोड़ी देर ठहरी रही। कुबेला होती देख कर उसने लाई हुई लकड़ी का छोटा सा ढेर पहले ढेर की बगल में रख दिया और गायों को लेकर अम्बिका के पास चली गई, जो उसी की ओर आ रही थी।

नैमिषारण्य में फिर पानी बरसा और कुछ न कुछ बरसता रहा । अयोध्या के खुले हुये क्षेत्रों में फिर भी नहीं बरसा । वृक्ष लगाना और कुआँ खोदना भी एक प्रकार का यज्ञ कहा जाता था । फिर भी लोग यह नहीं कह रहे थे कि नैमिषारण्य की सघन और विस्तृत कुञ्जे मेघ को मोह कर कुछ न कुछ बरसात अपने यहाँ खींच लाती है ।

पानी बरसे या न बरसे नीलपण्डित का व्यवसाय फिर उठ खड़ा हुआ था । उसकी समृद्धि का यह प्रमाण था कि उसके भवन में कभी मेघ के आश्रित ब्राह्मणों को भोज, कभी दीर्घबाहु के वर्ग के महाशालों को भोज मिलता रहता था ।

परन्तु अब दासों से काम नहीं चल रहा था, क्योंकि वे भाग गये थे । नील और हिमानी ने वेतन भोगी नौकर रखे और अपना काम बढ़ाया । पहले की अपेक्षा उनके साथ बर्ताव भी कम कठोर कर दिया ।

एक रात एक नौकर को बड़े से बिच्छू ने काट खाया । त्राहि त्राहि मच गई । कुण्डु-प्याज—का रस इसको औषधि समझी जाती थी । नील के कोठे में प्रचुर मात्रा में था ही । हिमानी ने एक नौकरानी को बुलाकर आदेश दिया,—‘जाओ उस बिचारे के पीड़ा-स्थल पर प्याज मल दो ।’

‘जी हाँ’ कहकर नौकरानी आकुलता के साथ चली गई । हिमानी उस समय बिस्तरों में पड़ी हुई थी । पर्याप्त मात्रा में प्रकाश देने वाला दीपक कमरे में जल रहा था ।

हिमानी बिस्तर छोड़कर यकायक खड़ी हो गई । फ़र्श देखा, कमरे में तो कोई बिच्छू नहीं है । फिर वह दीपक हाथ में लिये फूक फूँककर पैर रखती हुई फिर भी कुछ आतुरता के साथ उस दिशा में गई जहाँ से नौकरानी के आने की आहट मिल रही थी । नौकरानी सामने आई तो देखा कि प्याज के दो बड़े बड़े गट्टे हाथ में लिये हैं । जब हिमानी को क्रोध आता था तब उसकी नाक का दाँयां नथना ऊपर की ओर सिकुड़

जाता था । लगता था जैसे दोनों नथनें सिकुड़ गये हों । तब बड़ी सुन्दर रेखाओं वाली हिमानी बहुत भयानक और कुरूप दिखने लगती थी । नौकरानी ने उस रूप को देखा और ठमक गई ।

हिमानी जब चिनौती देती हुई या क्रोध के स्वर में बोलती थी तब उसके गले की खनक बहुत बढ़ जाती थी । उसे बिना देखे, कुछ दूर से सुनने वाला जो उसके स्वभाव से अपरिचित भी हो, समझता कि वीणा के तीसरे सप्तक का निषाद स्वर टङ्कारे ले रहा है ।

उस स्वर में हिमानी ने कहा, 'भूतनी कही की ! दो गट्टे क्यों लाई ? और इतने बड़े बड़े !'

नौकरानी की हड्डी बक्री भूल गई । उसकी दशा देखकर हिमानी जरा पसीजी क्योंकि उसी समय बिच्छू के काटे नौकर की आह कराह सुनाई पड़ी ।

बोली, 'कोठे में एक गट्टा रख आ, दूसरा लेजा ।' नौकरानी एक को रखने के लिये लौट गई । हिमानी वही खड़ी रही । जब एक गट्टा लिये हुये लौटी तब हिमानी ने धीरे से कहा, 'अरी यह तो बहुत बड़ा है । क्या करेगी इतने का ?'

'काट कर आधा काम में ले आऊँगी, आधा कल रसोई घर में लग जावेगा ।' नौकरानी ने धिधिया कर उत्तर दिया ।

हिमानी ने आदेश दिया, 'नहीं ।' इसको रख आओ और एक छोटा सा उठा लाओ ।'

नौकरानी तुरन्त फिर लौटी और शीघ्र एक बहुत छोटासा उठा लाई । वह नौकर फिर कराहा ।

'यह तो बहुत ही छोटा है ।' हिमानी बोली ।

नौकरानी हैरान कि अब क्या करूँ ? फिर से लौटने को हुई थी कि पुचकार के स्वर में हिमानी ने रोका,—'अब इसीसे काम निकाल लो । बिचारा कराह रहा है । इसमें भी तो काफ़ी रस निकल जावेगा । ले जाओ । काम बन जावेगा ।'

नौकरानी चली गई। हिमानी अपने कमरे में लौट आई और जा लेटी।

×

×

×

एक दिन नील के सौदा सामान का टांडा बाहर जा रहा था कि एक नौकर अचानक बीमार पड़ गया। नील ने सोचा बहाना कर रहा है तो पहले सूझा कि डंडे से बीमारी भगा दें, फिर जब उसको निकट से देखा तो समझ में आ गया कि घोर ज्वर ने घेर लिया है। उपचार के लिये एक वैद्य को बुलाया। वैद्य तुरन्त चङ्गा कर ही कैसे सकता था? तब एक मन्त्रवेत्ता के हवाले रोगी को किया।

मन्त्रवेत्ता ने चङ्गा कर देने का जो नुस्खा बतलाया वह बहुत मँहगा पड़ता—पशुओं का बलिदान और न जानें क्या क्या। नील ने उसे टाला। हिमानी ने कहा कि मैं अपने 'बालदेव' से प्रार्थना करूँगी—बचे तो जल्दी बचे और मरे तो जल्दी मर जाये।

हिमानी ने जो प्रार्थना की उसका सार यह था कि टांडे को जहाँ जाना है वहाँ तक पहुँचने के समय के लिये चङ्गा हो जावे, क्योंकि जानकार नौकर है; फिर मर जावे—तब तक दूसरा चतुर नौकर खोज लूँगी।

×

×

×

हिमानी को अपने देश-परिणश-का नृत्य आता था। आर्यावर्त के दृष्टिकोण से वह केवल उछल कूद और मटक चटक! उसके निजी दृष्टिकोण से समुद्र की लहरों का अनुकरण, जिन पर 'बल' या 'बाल' देव का राज्य था—ऊँची ऊँची तरङ्गों को लेकर आईं, कहीं टकराईं और लौट गईं; जिससे टकराईं उसे सिर धुनते छोड़ गईं। फिर बीच बीच में जब तूफान न रहा तब, छोटी छोटी लहरों का अनुकरण या प्रतीक हलकी पद चाप। इसके समक्ष उसे यहाँ का नृत्य निस्तेज, नीरस, मन्थर और प्रगतिहीन जान पड़ता था।

नील उस दिन अपने एक टाँडे को बहुत दूर भेजने की तैयारी में घर बाहर था। सङ्ग साथ के लिये प्रबल रक्षक दल की भी उसे चिन्ता थी। हिमानी को कुछ पहले सूचना मिल गई थी कि दीर्घबाहु आने को है। ठाठ के साथ उसने अपना शृङ्गार किया और प्रतीक्षा करने लगी। दीर्घबाहु आया।

हिमानी ने स्वागत किया। मिठास बरसाया। उसके साज और स्वागत को देखकर कुण्ठित आशा सचेत हो गई। शुभ घड़ी आई, उसने सोचा।

‘कहाँ रहे इतने दिनों?’ हिमानी ने पूछा। कण्ठ उसका सुरीला था ही, दीर्घबाहु को लगा जैसे कुसमय भी कोयल कूकी हो।

उसने उत्तर दिया,—‘शासन के कामों में बहुत उलझा रहा। आचार्य मेघ दूर के एक गाँव में छप्पर वाली एक बड़ी कुटी बनवा रहे हैं। उठना, बैठना, लेटना उनका होता है। भूमि पर बिछी एक चटाई पर। बड़े त्यागी महापुरुष हैं। आजकल वहीं से राजकाज चलता है। अमात्य और हम थोड़े से लोग वहीं इन दिनों बने रहे। वह बड़ी कुटी बिचारे हम सब के लिये ही तो बनवा रहे हैं। नील जी इधर अपने कारबार में उलझे रहे तो तुम भी वहाँ न आ पाईं। नहीं तो मिलने की बहुत इच्छा रही। थोड़ा-सा अवकाश पाते ही चला आया।’

‘राजकाज में कोई नई विघ्न बाधा खड़ी हुई है क्या?’

‘नहीं तो। सब सुखी हैं। कुछ थोड़े से असंतोषी लोग हैं। उन्हीं की देखभाल करनी पड़ती है।’

‘तो आ सकते थे न इन दिनों?’

‘करूँ क्या हिमानी देवी। छोटे से छोटा काम भी आचार्य मेघ मुझसे पूछ पूछ करते थे। रहना पड़ा। मन बार बार ऊब उठता था।’

‘इधर मैं बहुत कष्ट में रही। कभी यह नौकर बीमार तो कभी वह। अकेली थी, मन लगा तो उनकी सेवा करती रही। एक रात एक नौकर को बिच्छू ने डँस लिया तो सारी रात उसकी सेवा में बितानी



पड़ी। दिन में जब समय नहीं कटता था तब चिड़ियों के साथ खेलने लगती थी। जानते ही हो कि उन्हें कितना प्यार करती हूँ ?’

‘हाँ उन्हीं को तो सब से अधिक...’ दीर्घबाहु हँस पड़ा। हिमानी भी हँसी।

‘एक बात में बड़ा आनन्द आता है—कुछ को तुम्हारा नाम दे दिया है।’

‘है !...क्या ?’

‘अरे हाँ, तो और क्या करती ? तुम्हारा नाम न रखती तो क्या भुवन और रोमक सरीखे दुर्जनों का रखती ? तुम्ही बतलाओ भला।’

‘अरे वाह ! तुम मेरा नाम लेकर उनसे क्या कहती थी ? मेरी सौगन्ध है बतलाओ।’

‘देखो जी तुमने अपनी सौगन्ध धराई तो मैं रो दूँगी, फिर हाँ—’

‘अरे नहीं जी नहीं। मैं अपनी सौगन्ध को वापिस लेता हूँ। पर बतलाओ भी कि उनसे कहती क्या क्या थी।’

‘यह लो ! भला सब बातें कैसे बतला दूँ ? कही बतलाई जाती है ? फिर भी कुछ बतला दूँ—’

‘बतलाओ जल्दी बतलाओ नहीं तो—’

‘उनसे प्यार की बातें करती थी।’

‘क्या ? क्या ?’

‘जब उन्हें प्यार पुचकार के बुलाती तो वे आ जाते और फिर गोदी में बैठना चाहते तो मैं उनसे कह देती कि अभी मेरी—अर्थात् हमारी सबकी—कामनायें पूरी नहीं हुई हैं। कुछ समय तक थोड़ी दूर रहो। जब पूरी हो जायं तब गोदी में आना।’

दीर्घबाहु का हर्षोन्माद खिसकने लगा।

तो भी उसने साहस किया—

‘तुमने कहा था कि सफल होने के बाद मेरे तुम्हारे विवाह की घड़ी आ जावेगी सो इसको दो तीन बरस हो गये। मैं मानता हूँ कि तुमने

यह भी कहा था कि राजा को गद्दी से उतारने के उपरान्त शासन व्यवस्था अच्छी तरह से खड़ी हो जाय और कोई खुटका न रहे तब बात होगी । इसीलिये मे आ गया हूं अब कोई खुटका नहीं रहा ।’

‘क्या सचमुच ?’

‘क्या कोई खुटका है कही ?’

‘बड़ी भारी । भले ही दिखलाई न पड़ता हो नाक के नीचे । रोमक अभी है । दो तीन बरस में भुवन आश्रम से लौटेगा । पानी भी कभी न कभी बरसेगा ही । वे दोनों जनपद को भड़कावेंगे और तुम सबको शासन से हाथ खीचना पड़ेगा । फिर ज्यों के त्यों ।’

दीर्घबाहु चिन्तित हो गया । बोला, ‘मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि अब और क्या करूँ । तुम सदा ऐसी ही टालती रहोगी ।’

हिमानी के नथने सिकुड़े—भीतर भीतर क्रोध भड़भड़ा उठा । अब तक दीर्घबाहु जिस रूपसरूप पर मुग्ध हो रहा था वह उसे बहुत उचटाने वाला लगा । परन्तु कुछ क्षणों के लिये ही, क्योंकि हिमानी ने अपने क्रोध को दबा लिया ।

अपने को संयत करके उसने कहा, ‘इसे टालना मत कहो । मैंने रोमक और भुवन के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है क्या वह गलत है ?’

‘गलत तो नहीं है । उस परिस्थिति में क्या करना होगा ?’

‘जैसे इतने दिन हम लोग ठहरे रहे कुछ समय तक और सही । जैसे ही वह भयानक परिस्थिति सामने आवे अबकी बार निश्चय कर लेना है कि जनपद समिति रोमक को सदा सर्वदा के लिये राज्य से अलग करने की सम्मति दे । तुम सब के लिये विशेष कर तुम्हारे लिये क्योंकि तुम सर्वप्रिय हो, समिति को अपनी इच्छा के अनुसार चलाने में कठिनाई नहीं पड़ेगी; इतने दिनों के सुन्दर शासन की शक्तिका हथियार जो तुम्हारे हाथ में रहेगा ।’

‘हां—आं—’ दीर्घबाहु सोचने लगा । उसके मन में हिमानी की बात बैठने लगी । हिमानी की इच्छा के विरुद्ध कर भी क्या सकता हूँ उसकी धारणा बनी ।

हिमानी ने मुस्कराकर कहा, ‘तुम्हें आज नृत्य दिखलाना चाहती हूँ स्वयं अपना ।’

‘अरे ! अच्छा !!’ दीर्घबाहु हलका पड़ गया ।

हिमानी ने अपने देश की परिपाटी का नाच दिखलाया । दीर्घबाहु को बहुत अच्छा लग रहा था कि उसे यकायक हिमानी के उन नथनों का स्मरण हो आया जो थोड़ी देर पहले सिकुड़ गये थे । उस नृत्य पर से उसका मन उचट गया । वह कुरूप आँखों में उतरा उठा था ।

नृत्य की समाप्ति पर उसने हिमानी की सराहना की—शायद अच्छा भविष्य जल्दी सामने आवे ।

हिमानी ने उसे जलपान कराया ।

अवसर पाकर बोली, ‘एक बहुत आवश्यक कार्य है ।’

‘क्या ?’

‘तुम कुछ समय के लिये—थोड़े महीनों के लिये आचार्य मेघ के पास मत जाओ । वे काम तो चला ही रहे हैं । चलाते जायेंगे ।’

‘हां हाँ कोई बात नहीं । यहीं बना रहूँगा । । तुमसे मिलते रहने के लिये अवसर पर अवसर प्राप्त होंगे ।’

‘फिर वही लोभ और मोह ! एक मुझे देखो जो तुम्हारे नाम से चिड़ियों पर प्यार बरसा—बरसा कर मन को समझाया करती हूँ । उधर एक तुम कि.....क्या कहूँ ।’

‘मैं ही जानता हूँ कि कैसे मन में बसाकर तुम्हारी पूजा किया करता हूँ ।’

‘यह मैं जानती हूँ कि दूर रहने पर प्रेम की गांठ और भी अधिक पक्की बँध जाती है....तो अब मेरी एक बिनती सुनो ।’

‘क्या ? अरे क्या ?’

‘उसमें मेरा कोई स्वार्थ मत समझना । अपने दोनों के भले के लिये है ।’

‘कहो भी । मैं तो सिर तक देने को तैयार हूँ ।’

‘ऐसी बात कभी मत कहना...मेरा तो कलेजा कांप गया । अब कहने को जी नहीं चाहता ।’

‘अवश्य कहो । मेरी सौ...अच्छा अच्छा सौगन्ध नहीं धराता हूँ ।’

हिमानी ने बड़े भोलेपन के साथ दीर्घबाहु के गले उतारा—‘पिता जी का एक बड़ा टांडा दूर देश जा रहा है । अयोध्या जनपद में तुम्हारी सब की शासन व्यवस्था बहुत प्रबल है इसलिये यहां तो कोई डर नहीं, परन्तु बाहर टांडे के लिये यात्रा में सङ्कट है । इसलिये तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि तुम अपने योधाओं के साथ उसकी रक्षा के लिये साथ चले जाओ । कुछ ही महीनों की बात है । तब तक मैं अपना समय उन पक्षियों के साथ खेलने में काटती रहूँगी । अरे तुम तो उदास हो गये !—’

गिरे से स्वर में दीर्घबाहु के मुँह से निकला,—‘चला जाऊँगा ।’

‘मैंने व्यर्थ ही तुमसे कहा । तुम्हें दुख नहीं देना चाहती ।’ हिमानी के गले में खरखराहट थी और नाक थोड़ी सी ऊपर को सिकुड़ी हुई ।

दीर्घबाहु निश्चय के स्वर में बोला, ‘नहीं, कोई बात नहीं, अन्ततोगत्वा मुझे भी समय काटने के लिये कुछ चाहिये ।’

‘मार्ग में तुम्हें शिकार भी मिलेगा । कभी बाघ, कभी कुछ, कभी कुछ ।’

‘हाँ, हाँ, मन बहलाता रहूँगा ।’ दीर्घबाहु ने भविष्य में आखेट के चित्र अपनी कल्पना में देखते हुये कहा ।

समय पर वह नील के टांडे के साथ अपने योधाओं को लेकर गया ।

और ऐसा कई बार हुआ ।

[ ३३ ]

जाड़े लगे और अब उतरने को आ गये । नैमिषारण्य में जहां तहां गेहूं और जवे की फ़सल कटने पर आ गई—नैमिषारण्य के बाहर रूखी जगहों में तो कुछ हुआ ही न था । वहाँ अकाल के क्रम को दस बरसों हो गई थी !

रात में ठण्ड अब भी पड़ती थी, पर दिन में धूप तेज हो गई थी । दोपहर के समय आरुणि और बेद धौम्य खेड़े में सेवा का कुछ काम कर रहे थे और भुवन मधुकरी इकट्ठी कर रहा था । उसके जूट में पसीना भलक रहा था और होठों की घनी आंसों और ठोड़ी की खिर-बिरीं सिमटी हुई दाढ़ी की जड़ों पर छोटी छोटी बूँदें थीं । वह गौरी की पीर में पहुँचा । चबूतरे पर कमण्डल भोला और लोटा रखकर पसीना पोंछते हुये उसने आवाज़ लगाई—‘इस गांव के नर नारियों का स्वास्थ्य अच्छा रहे । उनका कल्याण हो ।’

गौरी एक छोटी सी हांडी में दूध लाई और मुस्कराकर उसने भुवन के लोटे में दूध डाल दिया ।

‘अपना पेट काटके आज इतना दूध क्यों दे दिया ?’ भुवन ने आंखें जोड़ते हुये कहा ।

‘हमारे पास देने के लिये है ही क्या ?’ गौरी ने चितवन नीची करली और मुड़कर आंगन के द्वार के कौरे से जा चिपकी ।

‘जो कुछ तुम्हारे पास है वह और कहीं नहीं है । देखूँ उसके पाने के योग्य कब हो पाता हूँ ।’

गौरी द्वार के कौरे से चिपकी चिपकी उसकी ओर देखने लगी । बोली, ‘ऐसी बातें मत किया करो । दीन दरिद्र हूँ । तुम्हें फूल चढ़ाने की ही पात्र हो जाऊँ तो बहुत है ।’

भुवन ज़रा सा हँसा—

‘सो तो बरसे हो गई जब फूल पा लिये थे । उस टीले पर—याद है न ?’

‘ह ! ह !! जब कोई साधना करते !’

‘तुम्हारा ही तो ध्यान लगाता था—’

‘और आंखें अधमुदी रखते थे ! मैने तो जांच लिया था ।’

‘और कहा आज ।’

‘हूँ...ऊँ...’

‘तो मैं अब जाऊँ ?’ भुवन जाना नहीं चाहता था, परन्तु उसने अपने को उद्यत दिखलाया ।

गौरी चाहती थी कुछ देर और बैठा रहे । क्या कहूँ कैसे कहूँ यह वह नहीं जानती थी ।

‘योगाभ्यास कितने दिन करना पड़ता है ?’

‘जीवन भर कर सकते हैं और थोड़े ही समय तक भी—जैसे मैने कुछ दिनों किया और छोड़ दिया ।’

फिर हँसी । भुवन बैठ गया ।

‘आजकल वे कहां हैं ? वे जो तुमसे पहले उसी टीले पर अभ्यास करते थे ? नाम कपिञ्जल था ।’ गौरी ने बात बढ़ाई ।

‘दूर जङ्गल में तपस्या, योगाभ्यास करते रहते हैं ।’

‘देखू तो कदाचित् अब पहिचान में ही न आवें ।’

भुवन का हाथ सहसा अपनी दाढ़ी पर गया और हट गया ।

बोला, ‘मेरी दाढ़ी से चार छः गुना लम्बी तो हो ही गई है उनकी दाढ़ी ।’

‘कौन देखने जावे, दूर जो इतने चले गये हैं वे । पास के ही जङ्गल में तुमही कब कब दिखलाई पड़ते हो । कई बार समिधायें और लकड़ियाँ इकट्ठी कीं, पर तुम मिले ही नहीं !’

‘अब तो आश्रम से बहुत कम निकल पाता हूँ। वेद, धनुर्वेद और अन्य शास्त्रों के अनुशीलन में बहुत समय लगाना पड़ता है। यहां मिल जाती हो यही मेरा बड़ा भाग्य है।’

आंखें नीची करके गौरी ने प्रश्न किया, ‘किसका बड़ा भाग्य?’

‘गौरी, मेरा भाग्य, मेरा भाग्य गौरी।’ भुवन उमङ्ग की हँसी हँसा। गौरी ने सिर ऊँचा किया। त्योंरी पर निषेध के बल थे और होठों पर आनन्द की भोली मुस्कान। उस मुस्कान में से कुछ ऊँचे स्वर में निकला,—‘हूँ...ऊँ...वैसी ही बातें करते हो!’

और उसी समय गली में से वेद निकल कर आगे चला गया। दोनों में से किसी ने नहीं देखा कि उसने कुछ देखा—और सुन भी लिया।

‘वेद था!’ ज़रा सा सकपकाकर भुवन बोला। ‘उहँ, तो क्या हुआ?’ गौरी ने कहा।

‘नहीं कुछ नहीं; लेकिन निश्चय है कि उसने देखा नहीं।’

इतने में ही गौरी को अपने आंगन में किसी की आहट मिली। वह तुरन्त मुड़ी और भीतर चली गई।

भुवन के सामने गौरी की मां आ खड़ी हुई।

अब भुवन सन्न। चेहरा फक।

गौरी की मां ने ऊँचे कांपते हुये स्वर में कहा,—‘आप राजकुमार हैं और हम लोग बहुत गरीब—’

‘जी—जी—’ भुवन खड़ा हो गया। उसके गले में कुछ अड़ गया था।

गला साफ करके बोला, ‘मां जी, हम लोगों को जो कुछ मिल जाय लेते हैं।’ और वह अपना डेरा डंडा सँभालने लगा।

‘ठहरिये’,—गौरी की मां के गले का कम्प कम हो गया था और स्वर पैना,—‘ठहरिये, मैं कुछ और कह रही हूँ।’ भुवन को रुकना पड़ा। चुपचाप, सुन्न।

वह कहती रही,—‘आप हम दीन दुखियों के साथ खिलवाड़ करना चाहते हैं ! याद रखिये हम भी क्षत्रिय हैं ।’

‘कैसा खिलवाड़ मां जी...कैसा ?’

‘जैसा अभी अभी कर रहे थे हमारी भोली-भाली गौरी के साथ...में स्पष्ट पूछती हूँ—क्या आप उसके साथ वैदिक रीति से विवाह करने को तैयार होंगे ?’

अब भुवन का सिर ऊँचा हुआ ।

‘अवश्य, मां जी, अवश्य ।’ उसके गले में न कम्प था, न धबराहट।

‘आप गङ्गा की और अपने पुरुषों की सौगन्ध खाते हैं ? स्मरण करिये राम आपके पुराने पूर्वज हैं ।’

‘...मे सौगन्ध खाता हूँ मां जी ।’

गौरी आंगन में होकर सुन रही थी । पृथ्वी को पैर के नख से कुरेद रही थी जिस पर दो आंसू आ टपके ।

‘पक्का वचन ?’ गौरी की मां का स्वर अब धीमा पड़ गया था ।

‘पक्का, मां जी, बिलकुल पक्का । उतनी बड़ी सौगन्ध खा चुका हूँ । आश्रम में शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त माता पिता के आशीर्वाद से पहला काम यही करूँगा ।’

‘अच्छा बेटा, सुखी रहो तुम दोनों ।’ गौरी की मां का गला कांप रहा था । उस कम्प के साथ आँखों में आँसू भी थे ।

गौरी आँसू पोंछती हुई घर के एक कमरे में चली गई ।



[ ३४ ]

वह दिन भुवन का इतने आनन्द में बीता, और उसने उस दिन का अपना काम इतनी लगन के साथ किया कि समय, स्थान और व्यक्ति सब लहरों पर खेलते हुये से दिखलाई पड़े।

संध्या के उपरान्त जब धौम्य की कुटी में वह अन्य शिष्यों के साथ प्रवचन सुनने के लिये बैठा तब उसे अपने भीतर बड़ी स्फूर्ति प्रतीत हुई।

प्रवचन के अन्त में धौम्य ने कुछ प्रश्न किये।

‘मानव पराक्रमी कैसे बनता है?’

एक ने उत्तर दिया,—‘ध्यानधारी होने से—आपने बतलाया था।’

दूसरे ने—‘संयमी बनने पर।’

तीसरे ने—‘परिग्रह के छोड़ देने पर भी कर्तव्य निष्ठा से।’

भुवन बोला—‘लगातार शुभकर्म करने से।’

धौम्य ने कहा, ‘ध्यान, संयम, अपरिग्रह और शुभकर्म का संयोग ही पराक्रमी बनाता है।’

थोड़ी सी प्रश्नोत्तरी के बाद जब शिष्य अपने अपने स्थान को जाने लगे, धौम्य ने अकेले भुवन को रोक लिया। भुवन ने सोचा मेरे ऊपर विशेष कृपा है।

‘संकटों से लड़ने के लिये अपने को पूरा पराक्रमी बनाओ,’ गुरु ने उद्बोधन किया।

भुवन ने अपनी नस नस में उस वाक्य को निश्चय के साथ बांध लिया और सिर झुकाकर ‘हां’ की।

‘मन को सन्तुलित और दृढ़ रखने के बराबर और कोई हथियार नहीं।’

भुवन ने ओज की बाढ़ को अपने भीतर अवगत किया और साँस साधी मानो भीतर ही भीतर उस ओज को भरे रखने का प्रयास कर रहा हो।

‘उचाट मारने के पहले अपने अंगों को संकुचित करना पड़ता है ।’

भुवन नहीं समझा । धौम्य के प्रति उसके आदर में प्रश्न था ।  
धौम्य मुस्कराये ।

‘ध्यान के साथ सुनो और गाँठ में कसकर बांध लो । तुम में जो कसर है उसे मिटाना चाहता हूँ ।’

भुवन को लगा जैसे पैर तले की मिट्टी खिसक रही हो ।

धौम्य ने कहा, ‘तुम जंगल में समिधा इत्यादि के संग्रह के लिये नहीं जाओगे ।’

‘जो आज्ञा गुरुदेव ।’ भुवन की प्रसन्नता फिर लौटने को हुई ।

‘तुम छः महीने तक किसी भी गाँव में भिक्षाटन के लिये नहीं जाओगे और न किसी सेवा कार्य के लिये ।’

ऐं ! और आगे क्या आने वाला है—भुवन की धुकधुकी चञ्चल हुई ।

‘अध्ययन इत्यादि के उपरान्त अगले छः महीने आश्रम के उद्यान और शाक भाजी के खेतों में काम करते रहोगे । जब ये छः महीने बीत जावें तब गाँव में भिक्षाटन के लिये जाना ।’

कोई बड़ा हर्ज नहीं, न जायँगे छः महीने गाँव में, इसके बाद तो जा सकूँगा । भुवन के मन में लहर सी दौड़ी । ‘जो आज्ञा गुरुदेव ।’ उसने कहा ।

‘दो वर्ष पीछे स्नातक होने की आशा करो । जब छः महीने के उपरान्त गाँव में भिक्षाटन के लिये जाओ इन बातों को भलीभाँति और सदैव ध्यान में रखना—’

भुवन दबी हुई घबराहट के साथ धौम्य की ओर देखने लगा ।

धौम्य ने हड़ स्वर में उन बातों को उसके ध्यान में बिठलाया,—‘गाँव में प्रवेश करने के समय ही कहो कि गाँव की नर-नारियों का स्वास्थ्य अच्छा रहे, उनका कल्याण हो, घर घर मत कहो । महीने में एक घर से एक ही बार भिक्षा लो । किसी के भी घर के भीतर मत जाओ । किसी भी स्त्री से आँख उठाकर बात मत करो और न किसी स्त्री से

अकेले में बात करो या मिलो । विद्यार्थी जीवन वासनाओं के सङ्कलन का समय नहीं है । समझ गये ?’

‘जी गुरुदेव ।’ भुवन को पसीना आ गया । ‘और देखो’—पैनी आंखों को और भी पैनापन देते हुये धौम्य बोले,—‘जो कुछ मैंने अभी अभी कहा है प्रतिज्ञा के रूप में अगले छः महीने नित्य मेरे सामने दुहरा जाया करो ।’

भुवन ने बहुत नम्रता और निष्ठा के साथ ‘हाँ’ की ।

यह घोर दण्ड किस अपराध पर ? इसकी अपेक्षा तो वेद को अपने कन्धों पर बैलों का जुआं रखने के कारण जैसा और जो कुछ भुगतना पड़ा था वह बहुत ही बहुत सहज था । क्या वेद ने कोई चुगली खाई है ? वह तो सिर नीचा किये निकल गया था ।

धौम्य ने उसके सिर पर हाथ फेर कर कहा,—‘यह प्रतिज्ञा मेरे सामने अकेले में किया करोगे ।’

अब भुवन को धौम्य की वह आज्ञा कुछ कम कटीली लगी ।

[ ३५ ]

रोमक के गिरते हुये स्वास्थ्य को देख देखकर ममता बहुत चिन्तित हो उठी। उसने रोमक को भ्रमण करने और बाहर के वातावरण में विचरण करने के लिये सहमत कर लिया, मन बहलाव होगा और विचार भी भिन्न दिशाओं में जाने लगेगा।

दो तीन रथों के साथ थोड़े से अनुचरों को लेकर वे लोग निकल पड़े।

रूखी सूखी भूमि के भूखे दूटे वातावरण में भी रोमक को अयोध्या के बाहर जहां पड़े पड़े उसे कई बरस बीत गये थे कुछ नयापन मिला। पृथिवी पर मेह की बूँदें नहीं पड़ी थीं तो उसके भीतर के आसुओं ने एक कोलाहल उत्पन्न कर दिया—मैं मुँह क्यों चुराऊँ? मुँह दिखलाने से क्यों हिचकूँ? थोड़े से मुझे पापी कहते हैं तो बहुत से तो ऐसा नहीं कहेंगे। जनपद को शुभ घड़ी भी देखने को मिलेगी। तब इन बहुतों से क्या कहूँगा? थोड़े तो शासन मद में प्रमत्त होने के कारण मेरी कभी कुछ नहीं सुनेंगे, न आज और न कल। उनमें क्यों न घूमूँ फिरूँ जिनकी बहुलता है, जो सबसे अधिक दुखी और पीड़ित हो रहे हैं? उनके मन में यदि मेरे विरुद्ध कोई भ्रम रहा भी था तो अब धुल गया होगा।

×

×

×

×

रथों को दूर छोड़कर एक गांव में अकेला गया। वहां एक मिला। रोमक वेश बदले हुये था। कपड़े सीधे सादे।

‘क्यों भाई यहां के लोग कहां गये?’ रोमक ने पूछा।

‘सब भाग गये हैं। जो थोड़े से हैं वे नदी किनारे के मूल खोदने गये हैं। तुम कौन हो?’

‘पथिक हूँ। दूर से आया हूँ। नैमिषारण्य जा रहा हूँ। तुम्हारे राजा का क्या हाल है?’

‘सुना है बिचारा कहीं मारा मारा फिर रहा है ।’

‘अपने कर्मों का फल पा रहा होगा ?’

‘उसने किया ही क्या था ? दुष्टों ने कष्ट दिया उसे ।’

×

×

×

×

ऐसे ही दूसरे गांव में पहुँचा । यह बड़ा सा था । वे हाँ प्रश्न ।  
उत्तर भी लगभग वे ही । कुछ भिन्नता भी थी ।

गांव वाले कह रहे थे,—‘हमारे गांव का भी हाल बुरा है, लेकिन  
हम दुर्भाग्य से लड़ना जानते हैं और लड़ते रहेंगे । जब अच्छे दिन भी  
सदा एक से नहीं रहते, तो बुरे भी यों ही नहीं चलने रहेंगे ।’

×

×

×

×

बहुत से गांवों में घूमते घूमते उसने देखा कि अब पहिचाना जाने  
लगा है और छद्म वेश से काम नहीं चलेगा । वेश तो उसने अपना  
सीधा सादा रक्खा, पर नाम बदल कर बात नहीं की ।

एक ऐसे गाँव में पहुँचा जहाँ थोड़ी सी कुआँ खेती होती थी और  
ब्राह्मण रहते थे । उसने निर्भीकता के साथ उन लोगों से प्रश्न किये ।  
ब्राह्मणों ने निडरता के साथ ही उत्तर दिये ।

‘मैंने ऐसे कौन से पाप किये थे जो गद्दी से उतार दिया गया ?’

‘एक के पाप से इतना बड़ा सङ्कट मानव पर नहीं आता । हम  
सब के पापों का फल अकालों में प्रकट हुआ है । यदि अपने अकेले की  
पूछते हो तो हम कहेंगे कि मजूरों को पूरी मजूरी न देना, कार्यों को  
अधूरा छोड़ना इत्यादि इत्यादि पाप है ।’

‘इत्यादि इत्यादि क्या ?’

‘शूद्रों को तपस्या करने देना, एक यह भी है ।’

×

×

×

×

एक जगह उसे यह सुनने को मिला—

‘व के पिछ, गे ब्राह्मणों, पणियों और वणिकों ने मौज समेट रक् है। इनसे तो हमारा रोमक ही अच्छा जो चाहे जिसका गला तो नहीं दबोचता था।’

और एक जगह—

रोमक ने मध्यम श्रेणी के परिवारों की कमर टूट जाने दी इसलिये मुखियों ने उसे गिरा दिया। यदि उनकी कमर सीधी हो जावे तो अब की बार राजा से प्रण करायेंगे कि अपनी नीति को बदल कर चले, तब फिर से राज्य देंगे उसे।’

दूसरे स्थान पर—

कुछ स्त्रियों की बातचीत में उसने पाया—

‘रोमक का तो मुँह भी न देखे। हां उसकी रानी बड़ी भली है। उसी के पुण्य प्रताप से जीवित है नहीं तो कभी का मर जाता।’

रोमक सन्नाटे में आ गया।

×

×

×

×

रोमक दूर एक ऋषि के आश्रम में पहुँचा। थोड़ी सी बातचीत के बाद ऋषि ने तीसरा नेत्र खोल दिया।

‘जाओ। तुम्हारे राज्य में शूद्र तपस्या कर उठे हैं।’

कुछ समय उपरान्त एक दूसरे ऋषि के आश्रम में पहुँचा। ये आश्रम नैमिषारण्य के किनारे पर थे।

ऋषि से रोमक पूछ बैठा, ‘मेरा राज्य मुझे कैसे मिलेगा?’

ऋषि ने कोई बात नहीं की। हाथ का सँकेत करके हटा दिया— मानो कह रहा हो कि ऐसे व्यक्ति को यहां खड़े रहने के लिये भी ठौर नहीं है।

रोमक अपने भ्रमण में कभी कुछ और कभी कुछ देखता और सुनता था।

[ ३६ ]

दीर्घबाहु जब कभी बाहर नहीं होता था या शिकार खेलने नहीं चला जाता था तब मेघ, नील, सोम इत्यादि के साथ शासन सम्बन्धी प्रसङ्गों में भाग लेता था। इन लोगों की बैठक मेघ के एक दूरवर्ती प्रिय स्थान में बहुधा होती थी। कभी कभी राजभवन में भी हो जाती थी। वैसे वह सूना बन्द पड़ा रहता था। शासक मण्डल में सोम प्रायः मेघ वर्ग का विरोध किया करता था।

राजभवन में एक दिन घंटों से अधिवेशन हो रहा था। काफ़ी बहस हो चुकी थी।

दीर्घबाहु कह रहा था,—‘कुछ को साधने से सब सध सकता है, सबको साधने की लालच में सब डूब जाता है।’

सोम—‘मध्यम श्रेणी, अच्छे ब्राह्मणों और किसानों के साधने से ही सब कुछ सध सकता है। नहीं तो नहीं।’

मेघ रुखे स्वर में बोला,—‘बात बढ़ाना व्यर्थ है। काम होने दीजिये।’

सोम से मेघ की वह आंख नहीं सही गई। बैठक छोड़ कर चला गया।

नील ने कहा, ‘मध्यम श्रेणी क्या? यह तो कोई नया सा शब्द है।’

‘सोम जानें। उन्हीं की मनगढ़न्त है।’ मेघ ने समर्थन किया।

नील ने अपना बड़प्पन जताया,—‘ब्राह्मणों के साधने की बात तो ठीक है। औरों की ये यों ही कह गये। जैसे उन्हें कोई मारे डाल रहा हो!’

शिल्पियों की श्रेणियां जरूर टूट फूट गई हैं, परन्तु इसमें रोमक के बुरे शासन और अकालों का प्रभाव अधिक है। सुकाल आवे तब हम लोग इन्हें भी सुखी कर देंगे।’

नील ने वही बात दूसरे शब्दों में कही जो इन सब के मन में थी—  
‘हम लोग’ इन्हें सुखी कर देंगे, अर्थात् रोमक को फिर से राज्य न पाने देंगे ।

×

×

×

हिमानी नौकरों के काम पर जैसी सतर्क दृष्टि रखती थी वैसी ही उनके भोजन पर भी—

‘अरे इतना मत भखो, बीमार पड़ जाओगे । कुम्हटुओं के कारण रोग वैसे ही बहुत बढ़ रहे हैं ।’

‘पेट को इतना भर लोगे तो रात को खेत की रखवाली कैसे कर सकोगे ? उधर तुम सोये इधर अनाथ ढोर सारी फ़सल चर कर चौपट कर डालेंगे ! शाम को अधपेटे रहा करो । कल का दिन फिर मिलेगा ।’

‘अजी तुम्हारी देह में पीड़ा बहुत खा जाने से हुआ करती है । आगे से खाना कम मिलेगा ।’

परन्तु जब वह अपने मुर्गों को चुगाती थी तब इतना अन्न फेक देती थी कि पृथिवी पर पड़ा रह जाता था । चींटियों, कीड़ों और इधर उधर के पक्षियों का पेट तो भरता है ! उसको पक्षियों पर दया थी ।

‘मूर्ख ! मिट्टी के ढेले !! काठ के मेढ़क !!!’ वह जिन मुर्गों को ‘दीर्घबाहु’ नाम देकर सम्बोधन करती थी उनके सामने का तो दो दो तीन तीन दिन पड़ा रहता था ।



[ ३७ ]

छः महीने भुवन को वह द्राविड प्राणायाम करना पड़ा। बाहर नहीं जा पाया। आरम्भ में तो दम घुटने लगा फिर धीरे धीरे अभ्यास ने उसे स्थिरता दी। उसे गुरु के सामने अकेले में नित्य दुहराना पड़ता था—

‘गाँव में प्रवेश करने के समय ही गाँव वालों के लिये कल्याण और स्वास्थ्य की वान्छा प्रकट करूँगा, घर घर नहीं कड़ूँगा। महीने में एक घर से एक ही बार भिक्षा लूँगा। किसी के भी घर के भीतर नहीं जाऊँगा। किसी भी स्त्री से आँख उठाकर बात नहीं करूँगा। किसी भी स्त्री से अकेले में न मिलूँगा, न बात करूँगा।’

कुछ दिनों अन्तिम प्रतिज्ञा करते समय उसे लज्जा आ जाती थी और कांटे से चुभ जाते थे, फिर वह सब सहने लगा। छः महीने निकल गये। उसने एक एक दिन याद रक्खा। अब कम से कम बाहर का चलना फिरना और अनिरुद्ध वातावरण में विचरण तो हाथ लगेगा।

सातवें महीने के पहले दिन गुरु के सामने जाते ही उसने प्रतिज्ञा को उत्साह के साथ दुहराने का प्रयत्न जैसे ही व्यक्त किया कि धौम्य ने मुस्कराकर रोक दिया—

‘अब मुँह से कुछ नहीं कहना है। मन में ही प्रतिज्ञा जपते रहना। जङ्गल में भी जा सकोगे।’

भुवन उस दिन गाँव में नहीं जा पाया। दूसरे दिन गया। गाँव के बाहर ही चिल्लाकर कल्याण सूचक वाक्य कहा। थोड़ों ने ही सुन पाया होगा। जब गाँव के भीतर पहुँचा प्रत्येक घर के सामने थोड़ी थोड़ी देर चुपचाप खड़ा रहा और आगे बढ़ गया। मुझे भिक्षा दो यह उसके स्वाभिमान ने कहीं भी मुँह के बाहर नहीं निकलने दिया। जब गौरी के द्वार पर पहुँचा आँखों ने कनखियों कुछ देखना चाहा, पर भीतर से उसकी प्रतिज्ञा ने फटकार दिया। मुँह से कुछ नहीं कहूँ तो खांस तो

दूँ । खांसा, कोई भी बाहर नहीं निकला । फिर खांसने की इच्छा हुई तो उसके भीतर से किसी ने तुरन्त कहा—यह भी एक तरह की भाषा ही है और 'विद्यार्थी जीवन वास्त्राओं के सङ्कलन का समय नहीं है ।' गुरु की वही पैनी आंख, वही तेजस्विता फिर सामने ! और अधिक वहां नहीं ठहरा ।

गाँव में बहुत थोड़ी भिक्षा मिल पाई । गुरु ने देख लिया, और भुवन ने समझ लिया कि गुरुदेव सन्तुष्ट हैं ।

उसे भोजन कम मिल पाया । उहाँ, विवेक की खूराक अन्न इत्यादि नहीं हैं । सन्तोष से पेट पूरा कर लिया ।

ऐसा कई दिन हुआ । भुवन बैठे हुये समय पर भिक्षाटन के लिये पहुँचता था । इसलिये लोग उसे अधिक अधिक मिलने लगे और मधुकरी की मात्रा भी बढ़ने लगी ।

एक दिन गौरी की माता ने उसकी भोली में अन्न डाला । दूसरे महीने उसके पिता ने । भुवन ने आंख उठाकर देखा । इधर उधर के दृश्य भी दृष्टि की कोरों पर चढ़ बैठे । परन्तु वहां गौरी नहीं थी ।

भुवन वन में भी कभी कभी गया । दूर से ही गौरी की भांकी ले लूँ—क्या यह ठीक होगा ? लेकिन वह दूर से भी नहीं दिखलाई पड़ी । कई महीने बीत गये । गाँव से चली तो नहीं गई ? नहीं, गई नहीं है । उसके माता-पिता मिले थे ।

उस दिन जब गाँव में गया गौरी पानी के घड़े सिर पर रखे भुवन के सामने से आ रही थी । यकायक उस पर आंख गई । गौरी टकटकी लगाये उसकी ओर देखती चली आ रही थी । गली के उबटों की भी परवाह नहीं थी ! भुवन ने आंख नीची करली । देह सन्न सी हो गई । उसके पैर गौरी के पास से उसकी देह को आगे खींच ले गये । गौरी के हाथ ढीले पड़ गये और उसे लगा जैसे घड़े सिर पर से गिरे और अब गिरे, कठिनाई के साथ उन्हें संभाल कर चली गई । भुवन को क्या हो गया है ?

क्या यह वही भुवन है ? शायद इधर-उधर कोई ताक भांक रहा था इसलिये उसने आंख नहीं उठाई । विद्यार्थी जो ठहरा ।

×

×

×

एक दिन जब द्वार पर जाकर खड़ा हुआ तो गौरी पौर में खड़ी थी—जैसे उसके आने की प्रतीक्षा कर रही हो ।

गौरी ने कहा, 'भीतर आओ ।'

भुवन को कहना पड़ा,—'नहीं...यहीं से ले लूँगा ।' उसने आंख नहीं उठाई ।

'वहां से नहीं; आज यह क्या ? किसी और के घर में चाहे न जाओ, यहां तो आना पड़ेगा । बहुत समय से नहीं मिले ।' गौरी का स्वर कांप गया ।

'नहीं ।' धीरे से भुवन बोला ।

'क्यों ?'

'यों ही ।'

'और जो मैं वहां गली में आकर न दूँ ?'

'तो मैं यह चला ।' भुवन की सांस फूलने लगी । भुवन के पैर बढ़े । वह द्वार से थोड़ा सा आगे निकल गया ।

'ठहरो !' गौरी के स्वर में क्षोभ था ।

भुवन ठहर गया । परन्तु उसने लौटकर नहीं देखा । गौरी खोवे में भर कर गेहूँ ले आई । उसकी ओर नहीं मुड़ा । उसकी ओर पीठ किये हुये भुवन अपना कमण्डल वाला हाथ पीछे बढ़ा दिया ।

गौरी ने अपना सिर झटक कर कहा, 'ऊँ-ह !' और अभिमान के साथ मुँह फेर कर कमण्डल में अनाज जो डाला तो कुछ उसमें गया और बहुत सा धरती पर जा पड़ा । भुवन थोड़ा सा आगे चला कि पीछे द्वार पर उसे सिसकी का शब्द सुनाई पड़ा । जब लौटकर देखा तो गौरी भीतर चली गई थी । अन्न नीचे बिखरा पड़ा था । भुवन ने एक एक दाना बीन कर अपने पात्र में रक्खा और होठ से होठ सटाये । चलने को

था कि गौरी द्वार की चौखट पर आ गई। भुवन ने सिर तक नहीं उठाया। वैसे ही चला गया।

जब वह भिक्षाटन करके आश्रम की ओर जा रहा था मन चाहा कि कहीं अकेले में बैठ कर रो लूँ। है ! क्या यह पुरुषार्थ होगा ? माता, पिता को ग्यारह वर्ष से ऊपर कष्ट भोगते हो गये हैं। क्या क्या नहीं बीत रही होगी उनके ऊपर और एक मैं इतने से ही रोने पर आ गया ! गौरी आर्य नारी है। एक दिन बात उसकी समझ में आ जावेगी और वह मुझे क्षमा कर देगी।

[ ३८ ]

भुवन को आश्रम आये छठवां वर्ष हो रहा था। छठवें वर्ष की समाप्ति में देर ही कितनी लगनी है ? तीन महीने और कि स्नातक हो जाऊँगा। गुरुदेव की कृपा से वेद, शास्त्र, वाण विद्या, ललित कला का मन लगाकर परिशीलन किया है। दीक्षान्त संस्कार होगा। फिर गुरुदेव के चरणों का आशीर्वाद लेकर गौरी को उसके माता पिता सहित अयोध्या ले जाऊँगा। वहाँ माता पिता के वरदहस्त की छाया में हम दोनों एक हो जायेंगे। भुवन उसी टीले पर बैठा हुआ सोच रहा था जहाँ उसने गौरी से पहली बार बातचीत की थी।

ग्रीष्म लगभग था। टीले पर पसरे हुये घने पेड़ की छाया में ठंडक थी। भुवन को उस दिन गाँव में थोड़ा सा ही मिला था। जङ्गल में फल कुछ अधिक मिल गये थे। तीसरा पहर लगने को था। भूख के मारे आँतें जल रही थी। उसने भोली में से फल निकाले और सूँघे। रसना में रस भर आया। दांतों के नीचे उमेठ हुई। परन्तु-परन्तु वह उन्हें खा कैसे सकता था ? गुरुदेव ने व्रजित जो रक्खा था। शिथिल होकर भूमि पर भुजा के सहारे लेट गया। थोड़ी देर लेटा रहा। लेटे लेटे क्या भूख शान्त हो जायगी ? उठकर फल भोली के भोली में रख दिये गये। अरे इस पेड़ पर नई कोमल कोंपलें तो हैं !! बड़ी स्वादिष्ट होंगी। ये न फल हैं, न अन्न। आश्रम देर में पहुँच पाऊँगा। क्यों न खाऊँ इन्हें ? भुवन ने उस पेड़ की कोंपलों को खाना शुरू कर दिया और खाता रहा।

थोड़ी देर में उधर आँख जो गई तो देखा कि गौरी एक छोटे-से कपड़े में बढिया आम लिये उसी की ओर चली आ रही है। कपड़े में से कई लाल पीले आम भाँक रहे थे। अब ? अब क्या करूँ ? गुरु के निषेध की अवधि में अभी तीन महीने शेष हैं। इसे क्या निषेध वाली बात-भी न बतलाऊँ ? किसी भी स्त्री से आँख उठाकर बात न करूँगा, किसी भी

स्त्री से अकेले में न मिलूंगा, न बात करूँगा'—वह प्रतिज्ञा भीतर से चीख पड़ी ।

भुवन ने तुरन्त अपना भोली कमण्डल सँभाला और अधचबाई कोंपलें जीभ और दांतों में दाबे टीले से जल्दी जल्दी उतर कर द्रुतगति से दूसरी दिशा में चला गया ।

‘अरे ! यह क्या ?’ गौरी के थरथरे हुये गले से निकला । भुवन ने नहीं सुन पाया होगा ।

गौरी ने अञ्जलि के फल नीचे पटक दिये भुवन पागल हो गया है ! पागलपन नहीं तो यह सब क्या है ? पागल है ? और मैं किसी प्रकार भी इसकी सेवा नहीं कर पाती ! हे भगवान !! एक घड़ी उपरान्त गौरी ने फेके हुये फल फिर उठा लिये और वहां से धीरे धीरे चली गई । कब मिल पाऊँगी ? कभी कुछ पूछ पाऊँगी ? कब ? किसी और से पूछूँ । किससे ? कोई क्या कहेगा ?

[ ३६ ]

नील के भवन में नील, हिमानी, दीर्घबाहु और मेघ एक कमरे में थे। गरमी की ऋतु समाप्ति पर थी। आकाश में बादलों के टुकड़े किसी निरुद्देश्य की भांति चक्कर लगा रहे थे। फिर भी ऐसे बादल अयोध्या में आज बारह बरस में दिखलाई पड़े थे। लू नहीं चल रही थी। पवन में कुछ ठण्डक थी। यह इन लोगों के हर्ष और विषाद का एक साथ कारण बनी।

दीर्घबाहु के मन में कुछ देर से भड़भड़ा रहा था—

‘रोमक राज्य वापिस पाने के लिये सिर तोड़ प्रयत्न कर रहा है। बेभाव घूम रहा है। जनता को भड़का रहा है।’

‘सो क्या राज्य पा लेगा?’ हिमानी ने उपेक्षा के साथ पूछा।

‘कभी नहीं। किसी हालत में भी नहीं’—मेघ के पास क्रोध तो बिना बुलाये ही आ जाता था।

नील को चिन्ता थी—

‘कुछ ब्राह्मण उसके समर्थक हो गये हैं, पाने को उससे कुछ भी नहीं। फिर भी न जानें क्यों? दस पांच दिन में शायद पानी बरसे। अच्छा ही होगा। यदि बरस पड़ा और किसानों ने अच्छी फसल पाई तो क्या रोमक को गद्दी मिल जावेगी?’

‘मिल तो जावेगी गद्दी!’ मेघ के क्रोध ने कड़वे व्यङ्ग्य और तीखे अहङ्कार का रूप पकड़ा, —‘फसल अच्छी आने से रोमक के पाप भी धुल जायेंगे!! मेरा शाप भी विफल चला जायेगा!!! बड़े बड़े लोग और बहुत से गांवों के मुखिये हमारा साथ नहीं छोड़ सकेंगे। इन छः वर्षों का हमारा शासन कोई नहीं भूल सकता और न उन छः वर्षों के दुःखों को ही जब रोमक के राज्यकाल में विपत्तियां बरसती रहीं।’

‘और फिर हम सब कहां जावेंगे जिनके हाथों में शक्ति है?’ हिमानी बोली, ‘आचार्य महाराज ठीक कह रहे हैं। दीर्घबाहु जी की बात को भी

ध्यान में रखते रहें। रोमक की गतिमति पर सूक्ष्म दृष्टि बनाये रखना ठीक होगा।'

दीर्घबाहु का मन फूल गया—मेरी बुद्धि की सराहना कर रही है हिमानी !

×

×

×

×

नैमिषारण्य के निकट एक गाँव के बाहर तीसरे पहर घने बादलों और एक कुल की छाया में भूमि पर एक मोटा कम्बल बिछाये ममता के साथ रोमक बैठा हुआ था। ऐसे बादल रोमक ने नैमिषारण्य के आसपास पिछले वर्षों में भी देखे थे। इसलिये उसकी सहज उदासी में कोई कमी नहीं आई। ममता उसे उत्साहित करना चाहती थी।

ममता ने कहा, 'देव, आप और अधिक न भटकें। ऐसे बादल मैंने बारह बारस पीछे देखे हैं। लोगों में विश्वास उत्पन्न होता जा रहा है कि अकाल दैव कोप के कारण ही पड़े हैं। वे आपको दोषी नहीं ठहराते। अयोध्या लौट चलिये। अच्छे दिन फिर रहे हैं।'

'कौन जानें बरसेगा या नहीं। एक गाँव में कुछ लोग कह रहे थे—वर्षा ऋतु की गरमी के पसीने पर पसीने आगे क्या कभी नहीं आवेंगे? उस ऋतु के पसीने से उत्पन्न दुर्गन्धि बाग बगीचों के पुष्पों की सुगन्धि से अधिक कल्याण देने वाली होती है, वह क्या कभी नहीं मिलेगी? इधर के बहुत से जन मुझे पापी कहते हैं। अयोध्या के अधिकांश तो कहते ही हैं।' रोमक ने हाय सांस ली।

ममता उसे समझाने बुझाने के लिये मन में किसी सामग्री का संग्रह करने लगी।

रोमक ने निश्चय प्रकट किया,—'मैं तो देवी, अब वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहता हूँ।'

'अभी वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश कैसा? आपका भुवन जब तक विद्यार्थी जीवन को समाप्त करके गृहस्थाश्रम में नहीं आता तब तक आप वानप्रस्थ आश्रम में जा कैसे सकते हैं?'



‘शास्त्रों में व्यवस्था मिल जायगी ।’

‘हमारे भुवन को महर्षि धौम्य ने तपा तपा कर बलिष्ठ और प्राञ्जल के साथ मञ्जुल भी कर दिया होगा ।’

‘क्या किसी दिन भुवन इस योग्य हो जावेगा कि उन दुष्टों को अपने ओज, तेज और प्रताप से पानी कर दे ?’

‘अवश्य देव । आपने उसे बरसों से नहीं देखा ।’

‘हां आं...’

‘अब वह बालक नहीं रहा होगा । उसके आंसू भीग आई होंगी । दाढ़ी पर छोटे छोटे बाल भी उग निकले होंगे । बाहु विशाल हो गये होंगे । कन्धे और वक्ष पुष्ट, और सुशील भी कितना हो गया होगा !’

माता के हृदय की वाणी ने अपना काम किया ।

रोमक फफक उठा । आंखों से आंसू बह निकले । उसके टूटे हुये स्वर में निकला,—‘दुबला हो गया होगा । गाल पिचक गये होंगे । कैसा सुन्दर कुमार ! मेघ की क्रूरता ने कहां से कहां भिजवाया उसे !!’

‘आपकी आंखों में आंसू ! सोचिये तो कि आपके भुवन में तेज किस मात्रा में बढ़ गया होगा । आपको स्मरण होगा कि जब आप उसे महर्षि के आश्रम में प्रवेश कराने गये तब उन्होंने कहा था कि भुवन को राजपद के योग्य बनाकर रहूंगा । आप ही ने मुझे बतलाया था ।’

रोमक ने अपने आंसू पोछे और कम्पित स्वर में बोला, ‘जब मैं आश्रम में उसका प्रवेश कराके लौटा उसे छाती से नहीं लगा पाया था । एक बार आंखों भर उसे देख तक नहीं सका था ।’

रोमक फिर रो पड़ा ।

‘विपत्तियों के सामने आपको कभी इस प्रकार झुकते नहीं देखा । देवता कभी रोते हैं ? अन्न की बालों का दूध पकने पर सूख भले ही जाय पर उनकी शक्ति में दीनता कभी नहीं आती । आप जागें, उठें और अपने बड़े महर्षि धौम्य से ही जाकर पूछें कि आपको क्या करना चाहिये । भुवन भी वहीं मिलेगा ।’

रोमक यकायक खड़ा हो गया। उसने कड़ी उङ्गलियों अपने आँसू पोछे। कण्ठ स्वच्छ किया।

धीरे से उसने कहा, 'देवी, आप वास्तव में देवी हैं। आपके ही नाम की एक देवी ने ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों की रचना पूर्वकाल में की थी। मैं महर्षि धौम्य के पास जाऊँगा। बहुत पहले जाना चाहिये था। वे जो कुछ कहेंगे उसी का अनुसरण करूँगा।'

अब ममता हिल पड़ी—

'आपने मुझे जो पद और आदर सदा अखण्ड भावना के साथ दिया है उसे सब जानते हैं, परन्तु इतनी बड़ी तुलना के योग्य मैं नहीं हूँ।'

कुछ क्षण दोनों चुप रहे।

ममता ने अपने स्वर को साधा और मुस्करा कर बोली, 'आपको वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने का संकल्प त्याग देना चाहिये।'

कैसी सुन्दर, शुभ्र मुस्कान ! जैसे घने काले बादलों के अन्धेरे को चीर कर चन्द्रिका निकल पड़ी हो। रोमक को अपने तिमिराच्छन्न मन में ऊषा की जैसी किरणें दिखलाई पड़ीं और उसने कहा, 'मैंने वानप्रस्थ आश्रम के अपनाने का विचार त्याग दिया। कल तड़के ही महर्षि धौम्य के आश्रम की ओर पैदल यात्रा करूँगा। तब तक तुम पास वाले गाँव में प्रवास करना। मैं जल्दी लौटूँगा।'

'मैंने इन दिनों भुवन के लिये कई बढ़िया बढ़िया कुर्ते और कन्चुक्र बनाये हैं—समय मिलता रहता था। उससे कह देना कि जब वह लौटकर घर आयेगा तब उसे भेंट कर दूँगी।'

'साथ लेता जाऊँ ?' अब रोमक के चेहरे पर हँसी आई। यह हँसी ममता ने बहुत समय पीछे देखी थी।

ममता भी हँसी।

'वह एक कुर्ता तो महर्षि ने अलग रखवा दिया था, इनको भी किसी कोने में टंगवा देंगे। स्नातक होने के बाद ही तो पहिन पावेगा ऐसे वस्त्र वह। स्नातक होने में भी अब अधिक विलम्ब न होगा। कुशाग्र बुद्धि जो इतना है !'

[ ४० ]

नैमिषारण्य में बदली पेड़ों की टोनों पर कुहरे जैसी छाई मालूम हो रही थी। फिर भी दोपहरी के समय धौम्यखेड़े की गली में ततूरी सी लग रही थी। भुवन नंगे पांव, जैसा कि नियम था, भिक्षार्जन के लिये गांव में आ गया था।

गौरी के घर के सामने आखें नीचे किये हुये खड़ा हो गया। ततूरी कुछ तो थी ही, पर उसे नहीं लग रही थी। पौर के आंगन वाले द्वार पर लाल कपड़े की भाई कनखियों पर पड़ी। गौरी एक कटोरे में दूध लाकर आते आते कौर से सट गई। भांककर भुवन की ओर देखा। थोड़ी देर झिझकी। तब तक भुवन आगे बढ़ गया। गौरी की सांस फूली, हाथ ढीला पड़ा और कटोरा छुटक पड़ा। दूध बिखर गया। भुवन के कान में कटोरे गिरने की झन्नाहट पहुँची। डग धीमा हुआ। गौरी ने उसके नारङ्गी रङ्ग के कोपीन का एक छोर देखा। एक क्षण में अदृष्ट हो गया। गौरी ने आकाश की ओर आखें उठाईं। वहां से थोड़ी सी घांसीक बूँदें चलीं और उसकी झलझलाई आखों में समा गईं। वह भीतर के एक कमरे में चली गई।

‘भली घड़ी में आये राजकुमार,’—गौरी की एक पड़ोसिन खीर का बर्तन उसकी ओर बढ़ाती हुई बोली,—‘आपके आते ही मेह ने बूँदें टपकाईं !’

‘मुझ से राजकुमार मत कहो, बहिन। मैं तो एक छोटा सा विद्यार्थी ही हूँ। तुम्हारी खीर नहीं लूँगा क्योंकि एक ही महीने के भीतर तुम्हारे यहां से दुबारा कुछ नहीं ले सकता हूँ।’

‘तो थोड़ा सा खा लो। भूखे होगे। दोपहर बीत गये।’

‘नहीं बहिन !’ भुवन आगे बढ़ा।

दूसरे द्वार पर एक स्त्री ने कहा, ‘भुवन भाई, मैं मधुपर्क लाई हूँ। धीरी और कबरी गायों के ओंटे हुये दूध में बहुत सारी मधु मिला रखी है।’

भुवन ने इसे स्वीकार कर लिया और भोले में से लोटा निकालकर भर लिया। एक घर से जौ का सत्तू मिला। ठिकाने से बाँधकर और जो कुछ जहाँ से मिला लेकर आश्रम की ओर चला गया।

उसके हाथ से बर्तन छूटकर गिरा था ! एक में हूँ जो पत्थर का पत्थर ही रहा !! पर उस डेढ़ वर्ष की अवधि में दिन ही कितने रह गये होंगे ? अवधि पूरी हुई कि गौरी से सब कुछ खोलकर कह दूँगा। वाह ! गौरी सचमुच गौरी है !! वह कुछ गिनती गिनता, गुनत करता हुआ जा रहा था।

×

×

×

उसी दिन धीम्य ने आरुणि को वार्त्ता शास्त्र के कुछ सूत्रों का अध्ययन और मनन करने का आदेश दिया और छुट्टी दी कि जङ्गल में जाकर कहीं भी जाकर अपना काम करे।

एक स्थान पर आरुणि अध्ययन चिन्तन में लीन हुआ था कि एक बच्चे की चीख पुकार सुनाई पड़ी। सूत्रों को वहीं छोड़ आरुणि दौड़ पड़ा। देखे तो भेड़िया एक बालक को मुँह में दबाये जा रहा है। आरुणि चिल्लाकर भेड़िये पर जा टूटा। भेड़िये ने बालक को छोड़ दिया और अपने प्राण लेकर भागा। आरुणि ने भेड़िये को मारने के लिये एक बड़ा सा ढेला उठाया, पर भेड़िया कतराकर जा रहा था, उधर बालक फिर चीखा। ढेले को वही डालकर वह उस बच्चे के पास आया। उठाकर देखा तो उसे आहत न पाकर प्रसन्न हो गया। बालक की आयु चार पांच वर्ष की रही होगी। पानी पानी पुकार रहा था। और कुछ नहीं कह पाता था।

बालक सरूप नहीं था। बहुत मैला कुचैला। नाक और मुँह से उसके फेन बह रहा था। पानी वहाँ कहीं था नहीं। आरुणि तेजी के साथ आश्रम की ओर आया। भुवन गाँव से लौट रहा था। आरुणि को अपनी बाहों में कुछ साधे आता देखकर एक बड़े पेड़ की आड़ में छिप-

कर खड़ा हो गया। आरुणि के हाथों में बालक का फेन लिपटा हुआ था। बालक सुस्त पड़ गया था।

आरुणि के पीछे पीछे एक व्यक्ति दौड़ता हुआ चला आ रहा था वह चिल्ला रहा था,—‘ओ भाई ! ओ भाई !!’

आरुणि खड़ा हो गया।

वह व्यक्ति हांफता हुआ आया। रो पड़ा,—‘मेरा बच्चा ! मेरा मुन्ना !!’

बच्चा उसे देखते ही फिर चीखने लगा। बच्चे ने फड़फड़ाकर उस व्यक्ति की ओर अपने छोटे छोटे हाथ फैलाये। व्यक्ति ने झपट कर बालक को अपनी गोद में भर लिया।

जब वह कुछ ठंडा पड़ा, बोला,—‘मुनिराज ! आपने मेरे बच्चे को बचा लिया।’

‘मैं मुनि बुनि कुछ भी नहीं। विद्यार्थी हूँ।’

व्यक्ति ने एक हाथ आरुणि के पैर छूने के लिये बढ़ाया। ‘अरे नहीं जी ! यह मत करना। मैंने किया ही क्या है। भेड़िये पर दौड़ पड़ा तो वह भाग गया। बस तुम या कोई पास नहीं दिखलाई पड़े तो बालक को आश्रम में लिये आ रहा था, आरुणि ने कहा।

‘आपको कुछ भी देने लायक नहीं हूँ। इस कृपा को कैसे चुका पाऊँगा ?’

‘वह कुछ नहीं। कुछ और कहना है ?’

‘हाँ जी, मैं अछूत चांडाल हूँ। इस बालक के छूने से आप को प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।’

आरुणि हँस पड़ा।

‘तुम्हें और इस बालक के छूने से न जाने मेरे कितने मैल कट गये। इसे घर ले जाकर घुलाओ पोंछो।’

आरुणि पर असीसैं बरसाता हुआ वह बालक को लेकर घर चला गया ।  
आरुणि स्नान करने के लिये कुयें पर । भुवन धीरे-धीरे आश्रम में चला  
गया । वह अपने मन में जो गिनती या गुनत करता आया था उसे भूलकर  
कुछ और सोचने लगा । आरुणि ! आरुणि तुम धन्य हो !!

[ ४१ ]

तीसरा पहर बीत गया। धौम्य कुटी के पास वाली वृक्ष कुञ्ज के नीचे विद्यार्थियों को शिक्षा दे रहे थे। सन्ध्या के पहले उन्होंने अन्य विद्यार्थियों को छुट्टी दे दी। वेद, कल्पक और भुवन को रोक लिया।

‘आरुणि कहाँ है?’ धौम्य ने पूछा।

वेद ने उत्तर दिया, ‘कौन जाने गुरुदेव। अब तो वह बहुत छुट्टर हो गया है।’

कल्पक की कोर आंख उठाई तो वह बोला, ‘मुझे तो वह बहुत कम मिलता है। उसका भविष्य अच्छा नहीं दिखलाई पड़ता।’

‘तुम्हारा अनुमान क्या है भुवन?’ धौम्य ने इससे प्रश्न किया।

उमङ्गल में भर कर भुवन ने कहा, ‘देव, आरुणि जो कुछ करता है उसके वर्णन के ही योग्य मैं किस दिन हो पाऊँगा नहीं कह सकता। वह दोपहरी में एक चाण्डाल के बालक की प्राण रक्षा करके लौट रहा था। बालक को गोद में लिये था। उसकी लार हाथों पर बह रही थी। धूल में सना था। नहाने चला गया। फिर क्या हुआ सो जानता नहीं।’ भुवन ने पेड़ की आड़ से जो कुछ देखा और सुना था विस्तार के साथ सुनाया। उसी समय वहाँ आरुणि आ गया।

‘कहाँ थे?’ धौम्य ने पूछा।

आरुणि ने टालमटोल की,—‘एक स्थान पर सूत्रों का मनन करते करते इधर उधर चला गया। सूत्र वही छोड़ आया था। फिर ढूँढ़ने के लिये लौटा।’

धौम्य हँस पड़े।

‘सूत्र मिले या नहीं?’

‘नहीं गुरुदेव, भोजपत्र के पन्ने कहीं उड़ गये!’

‘तुम व्यर्थ ही सङ्कोच में पड़े हो आरुणि। भुवन ने तुम्हारा कृत्य देखा है। अभी अभी उसने सुनाया। उन सूत्रों को खोकर भी तुम बहुत

पा गये । मैं प्रसन्न हूँ । बिना उतना मनन किये ही तुमने वार्त्ता शास्त्र के रहस्य को समझ लिया है ।'—धौम्य ने कहा । फिर वेद और कल्पक से—

‘तुम्हारी समझ में कुछ आया ! कन्धों और पीठ पर बैलों का जुआँ रखने पर भी यदि मस्तिष्क में चेतना और मेधा में विवेक न आया हो तो कोई अन्य उपचार सोचूँगा ।’ वे दोनों धौम्य के चरणों में गिर पड़े ।

धौम्य बोले, ‘गुरु के प्रति अन्ध श्रद्धा से सफलता प्राप्त नहीं होती । अब भी सुधरो और सम्हलो । जो आज्ञा पालने से न थके वही आज्ञा देने योग्य हो पाता है ।’

वेद और कल्पक ने दृढ़ता के साथ प्रण किया कि वे मन और वचन से सुधार की ओर बढ़ेंगे ।

किसी का थोड़ी दूरी पर शब्द सुनाई पड़ा,—‘राजन्, महर्षि धौम्य का आश्रम यही है । वे रहे वहां ।’

भुवन चौंक पड़ा । पिता जी आये हैं क्या ? जब रोमक को देखा तो हर्षोन्मत्त हो गया । दौड़कर जाना चाहता था, परन्तु लगा जैसे किसी ने उसके पैर जकड़ दिये हों । फिर रोमक की क्षीण काया पर आँख धूमी । भुवन का मन बहुत उदास हो गया ।

रोमक ने धौम्य को सष्टांग प्रणाम किया ।

धौम्य ने आशीर्वाद दिया —‘सुखी रहो ।’

‘बहुत दुखी हूँ देव । सुख की प्राप्ति के लिये ही चरणों में आया हूँ ।’

धौम्य ने आरुणि से आसन लाने को कहा । वह चला गया । रोमक ने भुवन के सिर पर हाथ फेरा । वह अपने आंसुओं को इधर उधर कर रहा था ।

धौम्य ने कहा, ‘आर्य, भुवन को आप छः वर्ष के उपरान्त देख रहे हैं । दुर्बल हो गया है । कहां तो अयोध्या के राज भवन में जल मांगने पर परिचारक दूध ले दौड़ते थे, गुड़ मांगने पर शक्कर देते थे, घोड़ा मांगने पर रथ सजा देते होंगे और कहां आश्रम का कठोर जीवन !’



कांपते हुये स्वर में भुवन तुरन्त बोला, 'पिताजी, गुरुदेव ने मुझे पशु से मनुष्य बनने का मार्ग दिखलाया है ।'

भुवन के जटाजूट और दाढ़ी के घने बेगरे बाल देखकर और उसके स्वर में इतनी गम्भीरता पाकर रोमक गदगद हो गया । ग्रीवा, कन्धे, बाहु इत्यादि अंगों पर उभड़ी हुई नसें ऐसी जान पड़ी जैसे लोहे के जुड़े टुकड़ों पर ताम्बे की रस्सियां जकड़ी हों । हमारा भुवन बहुत शक्तिशाली होगा ।—रोमक के गदगद ओज में पुलक पर पुलक आये ।

आरुणि आसन ले आया । रोमक ने भूमि पर ही बैठे रहने का निश्चय किया ।

'कैसे आये आर्य ?' धौम्य ने विषय को स्थगित न करके प्रश्न किया ।

स्वर को सँभालकर रोमक ने सीधा उत्तर दिया, 'देव, मैं यह नहीं बूँढ़ पा रहा हूँ कि मैंने कौन से पाप किये जिनका यह दण्ड भुगतना पड़ रहा है । चिन्ताओं के मारे जला जा रहा हूँ ।'

'चिन्ताओं से बढ़कर मनुष्य का कोई भी शत्रु नहीं, और चिन्ता करने से ही संसार की कोई भी विपत्ति आज तक कभी नहीं टली ।'

'देव, बहुत दिन हुये ऊषा के अस्पष्ट आगमन के समय आकाशवाणी सुनी थी कि धूर्तों को तपस्या और योग साधने देते हो ! महापुरुषों का अपमान करते हो !! आचार्य मेघ ने मुझे शाप दिया था । अकाल पर अकाल पड़े और पड़ते रहे हैं । समझ में नहीं आता कि क्या करूँ । कोई कुछ व्याख्या करता है. कोई कुछ ।'

'आकाशवाणी नहीं हो सकती, किसी धूर्त का छल होगा । क्रोधियों के शाप से कुछ नहीं होता । और न उनको महापुरुष ही कहा जा सकता है । कउये के कोसने से ढोर नहीं मरता । शास्त्रों की गलत सलत व्याख्या को नहीं मानना चाहिये । पूर्व के ऋषियों को नमस्कार है, जिन्होंने अज्ञान के अन्धकार को पार करने के लिये नये नये मार्गों का

निर्माण किया। उनके शब्द स्पष्ट हैं और सरल भी। उनसे उल्टा चलाने वालों की मत सुनो।’

‘मेरी समझ में नहीं आता देव। स्पष्ट व्यवस्था दीजिये, मैं तुरन्त उसे कार्यान्वित करूँगा।’

धौम्य भी उससे जल्दी निबटना चाहते थे।

‘तुम्हारे भीतर तुम्हें क्या दिखलाई पड़ रहा है?’

‘कभी कुछ कभी कुछ। शूद्र तपस्या कर रहे हैं यह एक तो मुझे स्पष्ट दीख रहा है।’

‘और उनमें सबसे बड़ा कपिन्जल है, यह भी जानते होगे?’

‘कोई एक है। नाम नहीं आता स्मरण में। क्या करूँ उसका और उस सरीखों का?’

‘इनके दमन कर डालने पर राज्य के फिर से मिलने की आशा है?’

‘है तो गुरुदेव। बहुत से लोग कहते हैं। अहङ्कारी क्रोधियों का शाप नहीं लगता यह आपने बता ही दिया है। अब शूद्रों वाले प्रसङ्ग पर भी आपकी ही व्याख्या मेरे लिये अन्तिम होगी।’

‘अन्तिम व्यवस्था तो अपनी आत्मा की होती है। यदि तुम उचित समझो तो कपिन्जल को मार दो। सब शूद्र तपस्या योग इत्यादि भयभीत होकर छोड़ देंगे। जो शूद्र इधर उधर उपद्रव कर रहे हैं वे भी दब जायँगे!’

‘पानी बरस पड़ने और अच्छे दिनों के लौटने की आशा फलवती होती दीखती है। मैं कपिन्जल को मार दूँगा। मेरे और जनपद के कष्टों का निवारण तो हो किसी प्रकार।’

रोमक सनक पड़ा। बड़े धौम्य के छोटे से संकेत पर उसकी महत्वाकांक्षा, अनवरत कष्टों से किसी भी सरल सुगम मार्ग द्वारा भाग निकलने की सहज प्रेरणा, उत्तरोत्तर क्षीण हुये विवेक को दबोच कर उसकी जीभ पर आ बैठी। दिन भर का थका हुआ था ही।

भुवन ने सिर नीचा कर लिया। वेद और कल्पक कन्धों से गर्दन सटाकर धौम्य की ओर टुकुर टुकुर देखने लगे। आरुणि स्थिर था। धौम्य ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया मानो देख रहे हों कि सूर्यास्त के लिये कितना समय रह गया होगा।

फिर रोमक के प्रति उन्मुख हुये—

‘कब और कैसे कपिञ्जल को मारोगे?’

‘वाण से। अभी। पर हाँ सन्ध्या होने वाली है। कहीं दूर होगा। बड़े भोर,—अभी तो थका हुआ भी हूँ।’

‘हाँ सूर्योदय के उपरान्त कल। उस समय जब वह समाधि में हो।’

‘जी।’

‘परन्तु वाण का उपयोग मत करना। खड्ग का उपयोग कर सकते हो।’

‘जो आज्ञा। सफल हो जाऊँगा आपके आशीर्वाद से...’

‘यह आशीर्वाद नहीं है,—धौम्य का स्वर तो यथावत था, परन्तु आँख बहुत पनी पड़ गई थी। रोमक ने सोचा उन आँखों में दृढ़ बने रहने का संकेत है। आशीर्वाद न सही प्रेरणा तो है।

भुवन ने सिर उठाकर धौम्य की तरफ दबी आँखों देखा।

धौम्य बोले, ‘भुवन, स्थान बतलाने के लिये तुम इनके साथ चले जाना।’

‘जो आज्ञा गुरुदेव,—भुवन का स्वर निर्जीव था। अधमुँदी सी आँखों धौम्य ने रोमक से कहा, ‘आर्य, तुम जैसे ही यहां आये मैंने तुम्हारे स्नान जल पान इत्यादि के सम्बन्ध में कुछ भी न पूछकर पहले तुम्हारे मन के भीतर की जाननी चाही। अब भुवन के साथ जाओ। ठहरने के लिये एक अलग कुटी मिल जावेगी। भोजन के लिये है आश्रम में भुवन कुछ?’

‘जी गुरुदेव। गांव से मधुपर्क और जी का सत्तू ले आया था। गुड़ भी है।’

‘अच्छा इन्हें ले जाओ ।’

भुवन रोमक को लेकर चला गया । आरुणि इत्यादि संध्या कर्म के लिये चिन्तित दिखलाई पड़े ।

‘ध्यान देकर सुनो,’—धौम्य ने कहा,—‘संध्या कर्म की चिन्ता मत करो । कुछ कर्तव्य ऐसे हैं जो उससे भी अधिक महत्व के होते हैं । तुम तीनों ढाल और तलवार बांधकर कपिन्जल की टेकड़ी पर गुप्त रूप से प्रातःकाल ही पहुँच जाओ । सूर्योदय होते ही कपिन्जल समाधिस्थ हो जाता है । निकट ही कहीं उसकी रक्षा के लिये तैयार रहना—

उन तीनों की नसों में बिजली सी कोंध गई । एक साथ ही उनके मुँह से निकला,—‘जी ।’

‘सुनते जाओ—दिन चढ़े रोमक उसके वध के लिये पहुँच सकेगा । यदि तब तक रोमक की आत्मा का क्षीण विवेक सबल हो गया और उसने वध का संकल्प त्याग दिया तो बहुत अच्छा; यदि ऐसा न हुआ तो जैसे ही वह मारने के लिये तलवार उठावे तुम झपट पड़ना । तुम्हारे शरीर का चाहे कण कण कटकर गिर जावे, परन्तु कपिन्जल का एक रोम भी बाँका न होने पावे । जब रोमक को विफल और निष्क्रिय करलो, तब उसे बांधकर आश्रम पर ले आओ । साथ में सनकी एक रस्सी लेते जाना । यदि भुवन अपने पिता की सहायता उस कुकर्म में करे तो उसे भी बांध लेना । आशा है कि वह ऐसा न करेगा । आवश्यकता पड़ने पर मुझे अपने से दूर नहीं पाओगे ।’

धौम्य की बात को उन तीनों के रोम रोम ने पूरे ध्यान के साथ सुना । बड़ी उमङ्ग के साथ बोले,—‘जो आज्ञा ।’

जब वे चलने लगे धौम्य ने कहा,—‘जब भुवन अपने पिता की सेवा से निवृत्त हो जावे रात के पहले पहर में मेरे पास भेज देना ।’

आठ नौ बजे रात के लगभग भुवन धौम्य की कुटी में आ गया । वे अकेले थे ।

‘तुम उदास क्यों हो ?’

‘दिन में भिक्षार्जन के लिये कुछ अधिक चलना फिरना पड़ा। कुछ देर में भोजन किया। और तो कुछ नहीं है गुरुदेव।’

‘यदि तुम्हारे पिता ने प्रहार न कर पाया, क्योंकि कुछ निर्बल हैं यद्यपि उनमें उत्साह बहुत है, तो तुम क्या करोगे?’

‘गुरुदेव—’ भुवन अकचकाया।

‘निर्भय होकर बात करो। मैंने तुम्हें मा भैः का उपदेश दिया है। बतलाओ तुम उस परिस्थिति में क्या करोगे?’

‘यदि उन्होंने कपिन्जल के वध में मेरी सहायता मांगी तो शङ्का है कि मैं सन्न रह जाऊँगा।’

‘कपिन्जल के वध की योजना तो ठीक है न?’

भुवन धौम्य के चरणों में गिर पड़ा—

‘मेरी और अधिक परीक्षा न ली जाय गुरुदेव!’

‘उठो वत्स, तुम्हारा स्नातक होना न होना इसी प्रश्न के उत्तर पर निर्भर है। तुम्हारा संपूर्ण भविष्य भी। तुम अपने पिता के उत्तराधिकारी बन पाओगे या न बन पाओगे इस प्रश्न का उत्तर ही निर्धारित करेगा।’

भुवन खड़ा हो गया। सिर झुकाये हाथ जोड़कर बोला,—‘क्षमा किया जाऊँ तो निवेदन करूँ।’ उसका गला कांप रहा था।

‘मैं पहले ही कह चुका हूँ—मा भैः कभी मत डरो।’

भुवन का सिर सीधा हो गया। छाती तन गई। परन्तु हाथ जुड़े रहे। ‘तो कहता हूँ गुरुदेव कि कपिन्जल के वध की योजना अधर्म मूलक है। कपिन्जल के वध का समर्थन करते ही मेरी आत्मा टूट फूट कर बिखर जायगी। आपने मुझे आज तक जो सिखलाया है वह सब धूल में मिल जायगा....’

फिर भुवन और भी उत्तेजित हो गया,—‘चाहे मुझे आश्रम से निकाल दीजिये मैं समर्थन कदापि नहीं करूँगा।’ उसका गला भर्रा गया था।

धौम्य ने उसे अङ्क में भर लिया—

‘धन्य बेटा भुवन ! तुम वास्तव में अब भुवन विक्रम होने जा रहे हो । स्नातक पद के योग्य तुम्हारा प्रतिबोध जाग्रत हो चुका है ।

भुवन की हिलकी बंध गई । धौम्य ने उसे शान्त किया ।

जब उनके अङ्क से अलग हो गया बोले, ‘राजा रोमक को कपिन्जल के स्थान तक तो तुम्हें पहुँचाना ही पड़ेगा ।

‘पहुँच कर तुरन्त लौट पड़ूँगा ।’

‘यदि उन्होंने रुक जाने के लिये आग्रह किया तो ?’

‘तो निवारण करने के लिये रुक भी सकता हूँ.....गुरुदेव, क्या यह योजना मेरे पिता की परीक्षा नहीं है ?’

‘है । देखना चाहता हूँ कि उनमें पद मोह अधिक है या धर्म मोह । सुधर पायेंगे या नहीं । अभी उन्हें मेरा उद्देश्य मत बतलाना । कपिन्जल को तुम चीन्ह तो लोगे ? उसी ने तुम्हारे प्राण बचाये थे ।’

‘कैसे भूल सकता हूँ । मेरा भी अनुमान था ।’

‘क्या किसी ने बतलाया है ?’

‘बतलाया तो किसी ने नहीं । अनुमान ने निर्णय पर पहुँचाया ।’

‘बात सच्ची है । जाओ वत्स । तुम्हारे विवेक की जय हो ।’

[ ४२ ]

सवेरा हो चुका था। आकाश में धुन्ध छाई हुई थी। क्षितिज के ऊपर सूर्य का गोला राख में लिपटी कांसे की थाली जैसा प्रतीत होता था। हवा धीमी चल रही थी।

धौम्य के आश्रम से दूर वन के एक भाग से कई पगडंडियां भिन्न भिन्न दिशाओं में गई थीं। रोमक को भुवन यहाँ लाकर ठिठक गया। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे।

‘अब कितनी दूर होगा वह स्थान?’ रोमक ने पूछा।

‘कोई पाव योजन’, भुवन ने क्षीण स्वर में उत्तर दिया।

‘रात के तीसरे पहर से चल रहे हो इसलिये थक गये होंगे। थोड़ा विश्राम करके चलो।’

मेरी थकावट का कारण यह नहीं है पिता जी।’

‘क्या बात है?’

‘पिता जी, इस कर्म को मत करिये। मेरा मन नहीं बोलता।’ अब भुवन का स्वर उतना निर्बल नहीं था।

रोमक को आश्चर्य हुआ—

‘बेटा, अब यह अनिश्चय कैसा! रात में तुम प्रसन्न दिखलाई पड़ रहे थे। अब इतने अनमने क्यों? हम दोनों का, सारे जनपद का भविष्य इसी कर्म के फल पर निर्भर है। सारा जनपद निष्प्रभ हो गया है। राष्ट्र की वृद्धि करने वाले नटों और नर्तकों के उत्सव बन्द हैं। साठ बरस के युवा अपने को बूढ़ा समझने और कहने लगे हैं! लोक गीतों में ओज नहीं रहा। वाण चलाने वाले योधाओं की प्रत्यक्षा की अब टङ्कार नहीं सुनाई पड़ती! अकाल पड़ रहे हैं। हमारा गया गौरव इसी कृत्य से तो लौड़ेगा। ठीक समय पर घबरा कैसे गये? छुटपन में सीखा हुआ वह सिद्धान्त भूल गये हो क्या?—पुरुषार्थ मेरे दायें हाथ में है तो विजय मेरे बायें हाथ में!’

‘पिताजी उस सिद्धान्त के साथ एक तत्व और मिला हुआ है, जो मुझे इस आश्रम में आने पर मिला—पुरुषार्थ दायें हाथ में हो। धर्म हृदय में हो, तो विजय बायें हाथ में रहती है। आप तो जानते ही हैं कि तपस्वी के पास—वह चाहे कोई भी हो देवता रहते हैं और देवगण तपस्वी को छोड़कर दूसरे के मित्र नहीं होते, फिर, यही वह सत्पुरुष है जिसने मेरे प्राणों की रक्षा की थी जब सुअर ने घायल किया।’

रोमक सन्नाटे में आ गया। भुवन उसकी ओर तिरछी गर्दन करके देखने लगा। बड़ी बड़ी आंखों में प्रार्थना, विनय, शील और आग्रह एक साथ आकर घुल मिल गये। सूर्य की मन्द किरणों में रोमक ने भुवन की उन आंखों में भीने आंसू देखे। लाल डोरों में भरे हुये और कुछ भलकते से भी। इसको गोद में खिलाया है। इसकी बड़ी बड़ी बरौनियां अपनी आंखों में भर लेता था। तुतलाता था। नटखट था। इसी मेरे इकलौते को उसने बचाया था जिसे मारने जा रहा हूँ! इसकी यह खिरबिरीं दाढ़ी और बड़े हुये केश क्या आज देखने को मिलते? रोमक का गला रुद्ध हो गया। शरीर कांपने लगा।

भुवन ने बड़े स्नेह और आदर के स्वर में कहा, ‘पिताजी, लौट चलिये। मेरी माता—मेरी जननी जब सुनेगी तब क्या कहेंगी? पूज्य पिताजी, अधर्मयुक्त साधना से राज्य का प्राप्त करना आपको शोभा नहीं देता। उतने दिनों जिन शूद्रों का आप पक्षपात करते रहे, क्या उन्हें अब मिटाने जा रहे हैं? अपने बहुत बड़ों ने कहा है कि परमात्मा का भक्त शूद्र परमगति को प्राप्त करता है, यहां तक कि नीतिवान हरिभक्त चाण्डाल श्रेष्ठ से श्रेष्ठ द्विज से भी बढ़कर है।’

रोमक को चक्कर आ गया और सिर थाम कर बैठ गया मुँह से उसके निकला जैसे कोई और बोला हो,—‘महर्षि धौम्य की व्यवस्था……?’

‘आपकी आत्मा के विवेक की व्यवस्था। गुरुदेव ने इसी की ओर आपका ध्यान आकृष्ट किया था। पिताजी, अपनी गहराई में बैठकर



देखिये'—फिर भुवन ने ऊपर की ओर हाथ जोड़कर कहा,—‘हे परमात्मन्.....’ और कुछ गुनगुनाने लगा ।

रोमक यकायक खड़ा हो गया । उसने कमर से म्यान समेत तलवार खोली और भाड़ी में फेंक दी । भुवन से जा लिपटा ।

‘सब कुछ छोड़ दूँगा, परन्तु तुम्हें और तुम्हारे द्वारा जगाये हुये विवेक को कभी नहीं छोड़ूँगा ।’

थोड़ी देर बाप बेटे अपने अपने आंसू पोंछते रहे ।

भुवन ने कहा,—‘अब आश्रम को लौट चलिये ।’

‘ऐसे नहीं बेटा । मुझे अब स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगा है । कपिन्जल के स्थान पर ले चलो । उसके दर्शन करके फिर लौटूँगा ।’

भुवन तुरन्त सहमत हो गया ।

थोड़ी देर में दोनों कपिन्जल के स्थान पर पहुँच गये । सूर्य कुछ और ऊपर चढ़ आया था । कपिन्जल ध्यान मग्न था । बड़े जटाजूट और घनी लम्बी दाढ़ी । जिस पेड़ की छाया में बैठा था उसके डोलते हुये पत्तों में होकर सूर्य की किरणें माथे पर पड़ रही थीं मानों दमक को चमक मिल रही हो । जैसे वे झूमती हुई किरणें उसकी आरती उतार रही हों । वह टेकड़ी पर बैठा था । रोमक नीचे हाथ जोड़कर खड़ा हो गया । उसने धीमे स्वर में प्रार्थना की,—‘परमात्मा, मुझ गिरे हुये को पुनः ऊपर उठाओ ! मेरे मन को कल्याणकारी सङ्कल्प वाला बना दो !!’

आरुणि, वेद और कल्पक कपिन्जल की बगल में एक भाड़ी में छिपे अपनी अपनी तलवार पर हाथ रखे उकड़ूँ बैठे हुये थे । उछल पड़ने को तैयार । उन्होंने एक दूसरे को देखा । तलवारों पर से हाथ हट गये । माथा टटोलने लगे !

भुवन ने रोमक के कान में खुसफुस की,—‘चलिये । उनका ध्यान भङ्ग न हो जाय ।’

वे दोनों वहां से चल दिये ।

जब वे उन पगडंडियों के सङ्गम पर पहुँचे जहाँ भुवन ने बातचीत की थी। एक कुन्ज के पीछे से धौम्य आ गये। रोमक और भुवन ने प्रणाम किया। भुवन रोमक के पीछे खड़ा हो गया।

‘आर्य अपना काम कर आये?’ धौम्य ने प्रश्न किया।

‘नही देव। मैंने नहीं किया और न कभी करूँगा।’

‘अब राज्य कैसे पाओगे?’

‘न मिले। छोड़ा मैंने। हम पिता पुत्र खेती कर खायेंगे। अपनी आत्मा के भीतर जो कुछ पा रहा हूँ वह संसार भर के राज्य से बढ़कर है।’

‘खड्ग कहां डाल आये?’

मेरे उस बुरे संकल्प के कारण कलङ्कित हो गया था, इसलिये वन देवी के चरणों में पवित्र होने के लिये फेंक दिया।

धौम्य ने रोमक के सिर पर हाथ फेरकर कहा, ‘आर्य, तुम परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये। मेरी व्यवस्था तुम्हारी परीक्षा के विधान की एक अङ्ग थी। जैसे ही संकल्प शुद्ध हुआ वह जड़ खड्ग भी शुद्ध हो गया। उठालो। वहां भाड़ी में पड़ा है।’

रोमक धौम्य के पैरों में गिर पड़ा। जब धौम्य ने उठाया खड्ग को धौम्य के बतलाये हुये स्थान से ढूँढ़ लाया। उसको आश्चर्य था—क्या ये सब देख रहे थे?

धौम्य बोले, ‘तुम यदि चाहते भी तो कपिन्जल को मार नहीं पाते, क्योंकि वही आरुणि, वेद और कल्पक उसकी रक्षा के लिये नियुक्त थे।’

रोमक के रूखे होठों पर भीनी मुस्कान आई,—‘और यह भुवन भी क्या इसीलिये मेरे साथ लगाया गया था, देव? आपका दिया हुआ इसका विवेक बहुत जाग्रत हो गया।’

‘यह उसकी निज की प्रेरणा थी जिसके द्वारा उसने तुम्हें चेताया। मैं तो निमित्त मात्र हूँ।’

भुवन ने धौम्य के पैर पकड़ लिये।

‘उठो वत्स तुम्हारी परीक्षा समाप्त हो गई। आज से तुम स्नातक हो गये। दीक्षान्त और समावर्तन संस्कार आश्रम में होगा।

भुवन खड़ा हो गया। रोमक की सूखी आंखों में आंसू उमड़ आये।

धौम्य ने कहा, ‘आर्य, तुम्हारा गया गौरव तुम्हें फिर मिलेगा।’

परन्तु मेरे पाप ?’

‘पाप है। उन्हें आश्रम में चलकर बतलाऊंगा। जो तुम्हारे कान में अभी तक डाले गये हैं वे नहीं हैं, और उनका प्रायश्चित्त भी सहज है। चलो।’

धौम्य ने आकाश की ओर आंख उठाई,—

‘बहुत पानी बरसने के लक्षण दिखलाई दे रहे हैं।’

[ ४३ ]

और जब वे सब आश्रम पहुँच गये तब पानी ने बरसना जो आरम्भ किया तो बन्द होने का नाम नहीं ले रहा था ।

रात के समय जब पानी बरस रहा था रोमक और भुवन धौम्य की कुटी में गये ।

‘आर्य,’—धौम्य ने कहा,—‘तुमने अपने पापों के सम्बन्ध में वहाँ उस समय प्रश्न किया था । अब उत्तर देता हूँ । राज करने वाले के पाप हैं—आलस्य, आगे की न सोचना, ठीक निश्चय पर न पहुँच कर परस्पर विरोधी विचारों के बीच में भूलते रहना, बेट बेगार लेना, खेती शिल्प धन्धों की सहायता न करना, शिल्प श्रेणियों का तिरस्कार करना, लुटेरों का न दबा पाना, लाखों निवर्तन भूमि अपनी खेती के लिये रख लेना और भूमि हीनों को मारे मारे भटकने देना, जनपद के कोष को अपना समझना, काम अधूरे छोड़ देना, मन में लालच को बसाये फिरना । रोमक के मनमें बहुत उत्साह था । जैसे जैसे मेह की भड़ी लगती वैसे वैसे उमङ्ग का प्रवाह सा उसके भीतर आ रहा था ।

बोला, ‘समझ गया गुरुदेव, समझ गया ।’

‘केवल समझने से ही क्या होगा ? प्रण करो कि सौ बाहों से संग्रह करोगे तो सहस्र से बांट दोगे । यहाँ से अयोध्या जाने पर पहला काम अपनी लाखों निवर्तन भूमि में से अपने लिये केवल थोड़ी सी ही रक्खो और शेष भूमि हीनों को बांट दो । अपने मणि मुक्ताओं से जनपद की दरिद्रता दूर करो । जनपद की गई समृद्धि शीघ्र लौटेगी और राज्य की पुनः प्राप्ति में विलम्ब नहीं होगा । फिर निर्भय होकर धर्म और न्याय का पालन करना ।’

रोमक ने प्रण किया ।

रोमक दूसरे दिन ममता को आश्रम में लाना चाहता था । वह भी भुवन के दीक्षान्त संस्कार का आनन्द प्राप्त करे ।

परन्तु पानी थोड़ा सा ही रुक रुक कर तीन चार दिन बरसता रहा। चौथे दिन तीसरे पहर खुला तो सांभ से फिर बादल घिर आये। रात के समय जब उनकी कुटी में रोमक, और आरुणि इत्यादि कुछ शिष्य बैठे थे, तब धौम्य ने कहा, 'आरुणि आश्रम के उस खेत के बांध भीतर पानी बहुत भर आया होगा। बांध को टूटने से बचाना है। कुछ प्रबन्ध करो।'।

आरुणि चुप चाप चला गया।

बिजली कड़क कड़ककर चमक रही थी। पानी कभी मोटी बौछारों कभी पतली फुहारों बरस रहा था। छोटे छोटे पौरे बड़े बड़े नालों की तरह बलबलाते बह रहे थे। आरुणि ने देखा कि उस खेत के बांध के कोण पर से पानी की पतली सी धार रिपटती जा रही है। थोड़ी सी ही देर लगी कि कोण के ऊपर की मिट्टी को काटकर कोण को फोड़ डालेगी और फिर सारा बांध सङ्कट में पड़ जावेगा।

आरुणि ने अपने हाथों बांध के नीचे से मिट्टी खोद खोदकर कोण पर से जाने वाली पतली धार को रोकने के लिये रखी, परन्तु वह घुलकर बह गई। बिजली के प्रकाश में आरुणि ने देखा कि हाथ की डाली मिट्टी तो बह गई है कोण का सिरा भी कटने लगा है और उसमें दरार पड़ गई है ! आरुणि तुरन्त निश्चय पर पहुँचा और उसने पानी को रोकने एवं दरार को चौड़ा होने से बचाने के लिये वहाँ अपनी लम्बी चौड़ी देह अड़ा दी। बिजली और अधिक कड़की चमकी। आरुणि को लगा मानो इन्द्र की अप्सरायें बड़े बड़े खड्ग लेकर गरज घुमड़ कर इन्द्र के शत्रुओं पर टूट पड़ी हों। थोड़ी देर में यह थमा और बादल खुले, परन्तु आरुणि वहीं अड़ा पड़ा रहा। कीचड़, मटीला पानी, घास के तिनके बार बार उससे टकरा रहे थे। वह त्योरी चढ़ाये भी हँस लेता था।

रोमक इत्यादि जब अपनी अपनी कुटी में चले गये और धौम्य ब्रह्ममुहूर्त में उठे तब उन्होंने आरुणि को कई बार पुकारा। आरुणि

उत्तर देने के लिये अकुलाया छटपटाया, परन्तु न तो वहां से हटा और न उसने कोई उत्तर दिया। वह दिन चढ़े तक पानी को वैसे ही रोके जहाँ का तहाँ पड़ा रहा।

रोमक, भुवन, वेद और कल्पक को, लिये धौम्य वहां पहुँचे। आरुणि खेत के बांध को निस्सङ्कट समझकर खड़ा हो गया। उत्तर न देने के लिये गुरुदेव से क्षमा मांगने लगा।

‘यह तुम्हारी अन्तिम परीक्षा थी आरुणि। तुम स्नातक हो गये,’— धौम्य ने कहा,—‘क्षमा मांगने की कोई बात नहीं। तुम अपना कर्तव्य छोड़कर मेरे पास भागे चले आते तो वह गुरु के प्रति तुम्हारी भूठी निष्ठा होती। ऐसी निष्ठा से गुरु और शिष्य—दोनों—गड्ढे में गिर जाते हैं। तुम कर्मशील ज्ञानी होगे और भुवनविक्रम कर्मशील राजयोगी।’

रोमक हर्षमग्न होकर बोला,—‘समाज को हानि पहुँचाने वाली पुरानी परम्पराओं और रूढ़ियों को आप तोड़ते हैं तो बिल्कुल ठीक ही करते हैं।’

आश्रम भर में ओज की लहर दौड़ गई।

आकाश में थोड़े से ही बादल दौड़ धूप कर रहे थे। सूर्य की किरणें प्रखर थीं। रोमक ममता को आश्रम में ले आने के आग्रह में था। परन्तु कीचड़ इतना सलसला रहा था कि दो दिन पानी न बरसने पर भी उसको रुक जाना पड़ा।

[ ४४ ]

नैमिषारण्य में हरसाल पानी थोड़ा बहुत बरस जाता था, परन्तु तेरहवीं साल में तो मूसलाधार बरसा। जब खुला तो कई दिन के लिये खुल पड़ा। नरनारी उमङ्गों में लहरा उठे। बांसुरी बजाने लगे और नारियाँ मङ्गल गीत गाने लगी।

बादल खुलने के दो ही दिन पीछे धौम्यखेड़े में समाचार आ गया कि अयोध्या में भी ऐसा ही पानी बरसा है। गौरी के माता पिता ने चलने की तैयारी कर दी। थोड़ा सा अन्न, कुछ कपड़े, धातु के पांच छः बर्तन, और मञ्जरी में चार गायें भी कमा ली थी। धौम्यखेड़े में जैसे कुछ साधन थे और उन तीनों में जितना शारीरिक बल था, अनुपात में यह कमाई पर्याप्त थी। राजा से जो अन्न वस्त्र उधार लिया था उसे बात की बात में लौटा देंगे। उनका निश्चय था।

अम्बिका उसके घर आई। गौरी को दूसरे दिन अयोध्या की यात्रा करनी थी। दोनों अकेले में बैठकर गाने लगीं। गौरी गाते गाते रो पड़ी।

‘यह क्या?’ अम्बिका ने उसे गले लगाकर कहा,—‘कभी तो मैं तुम्हारे घर आऊँगी। तुम्हारे ब्याह में—’

गौरी तुरन्त सचेत हुई,—‘क्या कह रही हो अम्बिका!’

‘अरी वह भी पखवारे अठवारे में अयोध्या पहुँचेंगे।’

‘सो?...कैसे जाना?...फिर?...’

‘सो और फिर की तो तुम जानो। पर यहां किसी से तुम्हारे प्रेम की बात नहीं छिपी है।’

‘उसकी चर्चा ही क्या...कौन किसको पूछता है। बड़े लोगों को छोटी की क्या पड़ी?’

‘अरे! मैं अब समझी!!’

‘क्या? बतलाओ अम्बिका यदि बतलाने योग्य हो तो...’

‘तुम्हें नहीं मालूम ?’

‘क्या ? बतलाओ भी न....’

‘बहुत दिन हुये गुरु ने उनको निषेध कर दिया था—तुम्हारे राज कुमार को....’

गौरी ने उसे भँभोड़ डाला—‘बतलावेगी भी या यों ही बके जायेगी ?’

‘धौम्य गुरु हैं ही बड़े विचित्र, उनको निषेध किया था कि गाँव में भिक्षा मांगने के समय किसी से सिर उठाकर न बोला करो, और न जाने क्या क्या ।’

‘और क्या क्या भली सी अम्बिका ? तुमने पहले कभी नहीं कहा !’

‘कोई बड़ी बात न थी, क्या कहती । विचार ही नहीं उठा । तुम्हीं ने क्यों नहीं पूछा ?’

‘मैं भला क्या पूछती ?’

‘तो मैं यों ही बक बक करती फिरती ! गाँव में सुना था । उनसे तो पूछने मैं गई नहीं । तुम्हीं से न बोले होंगे । गाँव के कुछ नर-नारियों से बात करते तो मैंने सुना है ।’

‘एक बार जङ्गल में मिले तो मुँह मोड़कर ऐसे भागे जैसे मैं प्रेतिनी हूँ !’

‘उनके माथे के भीतर कुछ गड़बड़ हो गई होगी । बहुतेरों के हो जाती है ।’

‘इसी की शक्का मुझे है । मैं तो कल जाऊँगी । मिलें तो नमस्कार या जो कुछ ठीक समझो कह देना ।’ गौरी ने लम्बी सांस छोड़ी ।



[ ४५ ]

पानी तो फिर कई दिन नहीं बरसा, किन्तु रोमक को मार्ग अपनी यात्रा के योग्य नहीं जान पड़ा। जब सूखे के छः सात दिन निकल गये रोमक ममता को ले आने के लिये बाहर निकल सका। इन दिनों भुवन उसकी सेवा में रहा।

जब रोमक चला गया, धौम्य ने भुवन से कहा, 'अब तुम गांव में जाकर लोगों को धन्यवाद दे आओ जिनके कल्याण की कामना करते हुये भिक्षा के लिये जाते थे।'

भुवन चाहता ही था। आज सिर उठाकर बात कर सकूँगा, अकेले में सब बातें समझा सकूँगा—नहीं अकेले में बात तो दीक्षान्त संस्कार के उपरान्त ही करूँगा, तो भी, तो भी—

भुवन अपने उसी पुराने वेश में धौम्यखेड़े में गया। कल्याण कामना के वे ही शब्द। आज उसके उल्लास का ठिकाना न था।

गौरी के घर के सामने गया तो किवाड़ बन्द ! पड़ौस की कुछ स्त्रियां खाद्य सामग्री लेकर अपने अपने द्वार पर आ गईं। वह सांस भर कर उनके सामने पहुंचा, परन्तु उसने भीख नहीं ली।

सिर ऊँचा करके बोला, 'बहिनो, आज तो आप सब की असीस लेने ही आया हूँ। मैं स्नातक हो गया हूँ। अब भीख नहीं लूँगा।'

एक ने पास आकर कहा, तुम्हारा कमण्डल तो रीता है भैया...

'उसमें आप सब की असीसों भर ले जाऊँगा जिनके सहारे जनपद की सेवा कर सकूँ।'

'ठहरो। हम कमण्डल में कुछ तो डालेंगीं।'

घर में एक दौड़ी गई। थोड़े से फूल ले आई और कमण्डल में डाल दिये।

'सदा सुखी रहो भैया भुवन।'

अम्बिका कुछ दूर से देख रही थी।

जब उसके सामने पहुँचा तो उसने एक गजरा भुवन के कमण्डलको पहिना दिया और धीरे से बोली, 'आज गौरी यहां होती तो तुम्हारे गले में न जाने काहे का हार डालती !'

'कहां गई ?' बहुत दबे स्वर में भुवन ने पूछा ।

'कल अपने माता-पिता और चार गायों के साथ अयोध्या । तुम्हें नमस्कार कह गई है, भैया ।'

'और कुछ बहिन अम्बिका ?'

'और न जाने कुछ...' वह आगे नहीं बोल सकी, क्योंकि गांव के स्त्री-पुरुष और बालक उसे घेरने आ गये थे ।

भुवन अपने भीतर की उदासी को ऊपर की प्रसन्नता और हँसी से ढकने का प्रयास कर रहा था । कभी अकेली प्रसन्नता रह जाती थी, कभी अकेली हँसी । और कभी वह खोया खोया सा लगता था ।

सब का आशीर्वाद लेकर भारी पैरों आश्रम की ओर लौट पड़ा । आगे उसे इस गांव में नहीं आना था ।

[ ४६ ]

भुवन सीधा आश्रम को नहीं गया। स्वच्छन्द हो गया था। उस स्थान का मूक आशीर्वाद लेने की मन में लालसा उत्पन्न हो गई जो उसके मन में बसा हुआ था। वह उस टेकड़ी पर गया, परन्तु अधिक समय तक न ठहर सका। फिर उस भाड़ी के पास पहुँचा जहाँ से उसने गौरी को पहले पहले टेकड़ी की ओर आते देखा था।

उस भाड़ी पर कमंडल के सब फूल डाल दिये और उसके सिर को माला पहिनादी जो उसे अम्बिका ने दी थी। आंख मूँदकर एक दो क्षण कुछ सोचता रहा। फिर तुरन्त चला आया।

उस दिन संध्या समय फिर पानी बरसा।

गौरी और उसके माता पिता नैमिषारण्य के कष्ट साध्य मार्ग को धीरे धीरे पार करके एक गाँव के पास आये जिसके आगे एक नदी थी। नदी चौड़ी न थी। बीच बीच में छोटे छोटे वृक्षाच्छादित द्वीप थे। दो तीन पतली सी धारें थी। उस पार दूर एक गाँव था।

इस किनारे के गाँव के निकट आये तो देखा कि नदी के उद्गम की ओर घूमरे घने बादल उठ रहे हैं और उनमें बिजली कोंध रही है। गौरी के पिता ने सोचा गाँव में पानी पीकर नदी पार करके उस ओर के किसी गाँव में रात भर विश्राम करेंगे और भोर चल देंगे। पानी बरसा तो रात को बरसता रहे, वैसे बहुत बरसने के लक्षण हैं नहीं। और आगे कोई ऐसी नदी नहीं जो अयोध्या की यात्रा में बहुत बाधक हो सके। गाँव वालों ने समझाया तो गौरी का पिता नहीं माना। होते करते सांभ होने आई। बादलों के पत पर पत पड़ने लगे पर बरस नहीं रहा था।

एक ने कहा, 'बूढ़े बाबा, ऊपर की ओर बहुत बरस रहा है। हमारे गाँव में ही अतिथि होकर रह जाओ।'।

गौरी के पिता ने नहीं माना। वे सब चल पड़े।

उस छोटी सी नदी की धारा में फेन पर फेन आ रहे थे। बूंदें टपटपा उठीं। गायें इधर उधर होने लगीं। उन्हें कभी गौरी सँभालती कभी उसकी मां। तीनों के सिर पर सामान का एक एक बोझ था ही। जब बीच के टापू के पास ज्यों त्यों करके पहुँचे तब धार में यकायक बाढ़ आ गई। पानी गले गले तक हो गया। टापू पर पहुँचे कि वहाँ भी प्रवाह जा पहुँचा। गायें हाथ की न रही। गौरी की मां बहुत जोर जोर से सहायता के लिये चिल्लाई। कुछ गांव वाले नदी के किनारे तक दौड़े आये, परन्तु संध्या हो गई और अन्धेरा फैल गया था। नदी ने दोनों किनारे दाब लिये। पानी मूसलाधार बरस उठा। रात लग गई। फिर उन गांव वालों को टापू पर से कुछ नहीं सुनाई पड़ा और न कुछ दिखलाई पड़ा। बिजली की कड़क कोंध में भी वे सिवाय मेह, और नदी की धार के और कुछ नहीं टटोल पा रहे थे। निराश होकर लौट आये।

वे चारों गायें बह गईं। सामान पहले ही जा चुका था।

गौरी ने टापू के एक पेड़ की डाल पकड़ी जो बाढ़ में चल बिचल हो रही थी। उसके माता पिता बहने और डूबने उतराने लगे। पिता के केघल ये शब्द कान में पड़े,—‘रिन चुकाना बे...टी...ई...’। फिर उसे न मां दिखलाई पड़ी और न पिता।

उस डाल को पकड़े अटकी हुई थी। कमर के चक्कर काटता हुआ बाढ़ का पानी चला जा रहा था। पानी बरस रहा था। बादल कड़क रहा था। बिजली चमक रही थी।

धौम्य के आश्रम की ओर भी बूँदाबांदी हुई, किन्तु थोड़े ही समय बादल मंडलाते तो रहे, वैसे घनघोर नहीं बरसे। चौथे दिन रोमक ममता को लेकर आ गया। साथ में कुछ अनुचर भी थे।

उसी दिन समावर्तन और दीक्षान्त संस्कार हुये। समारोह निकटवर्ती कुन्ज के नीचे था। भूमि कहीं गीली थी कहीं सूखी। विद्यार्थी और अध्यापक तो एकत्र हुये ही, आसपास के गांवों की जनता भी उत्सव देखने के लिये आई। कुछ लोग पलाश के पत्ते बिछा-बिछाकर बैठ गये,

बहुत से खड़े रहे। प्रसन्नता छाई हुई थी। केश-और, स्नान, वस्त्र परिवर्तन इत्यादि के उपरान्त स्नातकों ने वादरमणि\* बांधी। होम और मन्त्रपाठ हुआ। आरुणि और भुवन को अर्घ्य मिला। उन्होंने अर्घ्य प्राप्त करने के पहले अलग अलग कहा,—‘मुझे प्रजाजन का प्रिय और पशुओं का अधिपति बनाइये। मैं जीवन के संघर्षों को सहने और उन पर विजय प्राप्त करने की शक्ति पाऊँ।’

धौम्य एक ऊँचे मञ्च पर जा बैठे जो एक सिरे पर लगा दिया गया था। उनके हाथ में एक छोटी सी पोटली थी। उन्होंने अपने पास मञ्च पर रखली।

बोले,—‘मैं थोड़ी बात कहना जानता हूँ। बहुत बकवास का मूल्य ही कितना? एक जोड़ी कान ही न? एक कान ने सुनी और दूसरे ने निकाल दी! केवल इतना ही कहना है कि विवेक के साथ प्राचीन को जानो पहिचानो और समझो; वर्तमान को भलीभाँति देखो परखो और उसमें चलो; और, भूत तथा वर्तमान दोनों की सहायता से भविष्य को प्रबल बनाओ। भय और बाधाओं के सामने कभी न झुको। जीवन की लहरों पर हड़ता के साथ आरूढ़ रहो। जो कुछ आश्रम में सीखा है उसे पुरुषार्थ के साथ सत्य शिव और सुन्दर की दृष्टि से कार्यान्वित करो। आरुणि और भुवन, तुम स्नातक हो गये। तुम्हें वीर सन्तान, संग्रामों में विजय और जीवन में प्रचुर सुख मिले।’

फिर उन्होंने भुवन को अपने निकट बुलाया और उस पोटली को खोला। पोटली में से छः बरस पहले के बने कुर्ते और कन्चुक उसे दिये। मुस्कराकर कहा,—‘पहिनो।’

‘जी गुरुदेव,’—भुवन सङ्कोच के साथ हँसने लगा, —‘ये तो बहुत ओछे पड़ गये हैं।’

भुवन ने वस्त्रों को फैला-फैलाकर दिखलाया।

---

\*वादरमणि=बेरी की लकड़ी को गुरिया।

रोमक एक पोटली लिये धौम्य के पास आया और बोला, 'भुवन की माता ने ये हाल में ही बनाये हैं। इसकी बड़ी हुई देह के लिये ये उपयुक्त बैठेंगे।'।

‘इन्हें पहिनो भुवन,’ धौम्य ने मुस्कराकर कहा।

समारोह के पेटे में व्याप्त उत्साह ने भुवन को भी कुलबुला दिया। मन में संकोच और हँसी का संग चलने लगा। भुवन ने नये वस्त्रों को भी एक एक करके पहिना। कोई ओछा बैठा कोई ढीला। दर्शक हँस रहे थे। वह भी हँसता जाता था। जनरव बढ़ा। धौम्य ने हाथ के संकेत से शान्त किया और बोले,—

‘पुराने कुर्ते और कन्चुक इत्यादि देखने में तो अच्छे लगते हैं और पुराने होने के नाते पुरानी स्मृति को सुहावना भी बना देते हैं, परन्तु बड़ी हुई देह के लिये ओछे पड़ जाने के कारण पहिने नहीं जा सकते— या तो फट-फटाकर तार तार हो जायँगे या देह को जकड़ते दुखाते रहेंगे। हां, उनमें बुने हुये सोने-चाँदी के तार और पिरोये हुये हीरे-मोती नये वस्त्र बनाने के काम में आ सकते हैं। बिना ठीक नाप-तौल के नये वस्त्र भी या तो ढीले बठते हैं या ओछे पड़ते हैं। ये भी व्यर्थ जाते हैं और हँसी का कारण बनते हैं। यही बात पुराने और नये शास्त्रों के उपयोग प्रयोग के लिये भी लागू है। समझ गये न?’

‘समझ गई, महर्षि,’ सबसे पहले ममता ने कहा।

फिर और लोगों ने भी स्वस्ति की।

अन्त में सब ने मिलकर वह गीत गाया जिसका अर्थ है ‘हम सब सदा नाना प्रकार के सत्कर्म करते हुये, स्वस्थ और अदीन बने रहकर सौ सौ बरस जियें, देखें और सुनें।’

दूसरे दिन रोमक भुवन, ममता और अपने अनुचरों के साथ अयोध्या चल दिया। धौम्य ने वेद को अयोध्या तक पहुँचा आने के लिये साथ लगा दिया।

चलते समय धौम्य ने रोमक से फिर कहा,—‘सौ हाथों इकट्ठा करो और सहस्र हाथों बांटकर जनपद की कठिनाइयों को दूर करो...’

[ ४७ ]

उस रात गौरी पर क्या और कैसी बीती यह या तो नदी की भड़भड़ाती फनफनाती बाढ़ जानती थी या बादलों की तड़क चमक, मेह की बौछारें, सनसनाने और ठिठुराने वाली आंधी, सिमिट सिमिटकर बह बह आने वाली टूटी डालियां, तिनकों के पुञ्ज, प्रवाह के फेन या उस पेड़ की शाखाओं की गुथी हुई बाहें, जिनमें वह जकड़ी हुई अचेत सी पड़ी रही, जहां उसका जीवन मृत्यु से संग्राम कर रहा था ।

आधी रात के उपरान्त बरसना बन्द हो गया और आकाश में बादल जैसे आये थे वैसे चले गये । प्रातःकाल होते होते नदी का पूरा बिलकुल कम हो गया । सूर्योदय के समय गौरी सचेत हुई । जीवन ने मृत्यु पर विजय पाई । वह जिस पेड़ की डालियों में थी उसके नीचे कीचड़ तो था, पर पानी नहीं था । उस पर पद-चिन्ह किसी के नहीं थे । कल्पना असम्भव पर गई—गायें गईं तो गईं, माता-पिता शायद पार लग गये हों, आगे के गांव में पहुंच गये हों ।

गौरी गठरी की तरह पेड़ के नीचे के कीचड़ पर गिर पड़ी और उसमें लतपत हो गई । कठिनाई के साथ धीरे धीरे बढ़ी और नदी की धार को कमर कमर पार किया । उठती बैठती उस पार के गांव में पहुंची । सूर्योदय हो चुका था ।

उसकी दुर्गति देखकर गांव के नर-नारियों को बड़ी दया आई । अतिथि के सत्कार की वैसे भी परम्परा थी, गौरी को एक घर में आश्रय मिल गया । उसके माता-पिता का कोई पता नहीं चला । गायें मरी गइं पाई गईं । गौरी को तीव्र ज्वर हो आया । उसके आश्रयदाता ने पूरी सेवा-सुश्रूषा की । वह दो-तीन दिन में फिर खड़ी हो गई । मोटे-भोटे वस्त्र बदलने पहिनने को मिल गये । अब ? आगे ? उसका कोई नहीं था ! वह अनाथ हो गई थी !! गांव वालों ने उसे बहिन-बेटी की तरह

रखने का भरोसा दिया । दुर्भाग्य की बात सोचकर वह अपना मन मारने पर लग गई ।

गौरी गांव में किसी का सेंटमेंट नहीं खाना चाहती थी । श्रम का अभ्यास था ही, जितनी और जो कुछ मजूरी मिली अपना पेट पालने लगी । वह किसी को अपना पूरा हाल नहीं बतलाना चाहती थी । पूरा वृत्तान्त सुनने का वहां बहुत कुतूहल था भी नहीं । पानी बरस जाने के कारण लोग अपने अपने काम पर पिल पड़े । लगातार अकालों में वैसे ही बहुत से नर-नारी और पशु मर चुके थे, दो-चार और यों चल बसे तो किस किस का रोना रोते फिरें ?



[ ४८ ]

‘नदी तो बहुत छोटी है और धारें भी पतली, सहज ही निकल जावेंगे,’—रोमक ने गांव के उन लोगों से कहा जो उस नदी तक उसे ममता और भुवन को पहुँचाने के लिये तीर पर इकट्ठे हो गये थे। उसके रथ और अन्य जन पिछले गांव में थे उनको लेकर वह दो दिन में यहां तक धीरे धीरे आ पाया था। नैमिषारण्य पीछे दूर छूट गया था।

गांव वालों ने अपनी नदी का सम्मान बढ़ाया,—‘देखने में तो छोटी सी है हमारी यह नदी, पर है बड़ी भयङ्कर ! जब इसमें बरसा का पूरा आ जाता है तब बहुत प्रचण्ड हो जाती है ……’

‘अभी पांच सात दिन ही हुये होंगे कि तीन जन और चार गायें इसकी बाढ़ में बात की बात में बह मरे।’

‘कौन ?’ भुवन ने तुरन्त प्रश्न किया। एक लड़की और बूढ़ा बुढ़िया। नैमिषारण्य से आ रहे थे बिचारे……’

‘नाम ?’ सहसा भुवन के होठों से छूटा।

‘नाम……नाम का क्या पता……हां एक का मालूम है……बूढ़ा बुढ़िया लड़की को भौरी……धौरी……गौरी…… या ऐसी ही कुछ कहते थे……बड़ी भोली थी। उन लोगों को बहुत रोका पर माने ही नहीं। धार में घुस पड़े। पानी यहां तो थोड़ा सा ही था, किन्तु ऊपर कहीं बहुत बरसा था। एकदम बाढ़ आ गई। सांभ हो गई थी। रात भर बरसता रहा …’

‘कदाचित्त बच निकले हों आगे जाकर,’—रोमक को आशा थी।

‘जी नहीं बूढ़े बुढ़िया को थोड़ी सी ही दूर इसी किनारे दूसरे दिन दोपहर के समय मरा पाया तो हम लोगों ने उनका दाह कर दिया।’

‘और वह लड़की ?’ वेद ने पूछा।

‘लड़की भला बच सकती थी ! कहीं आगे जाकर मर गई होगी, जङ्गली जानवर खा गये होंगे।’ भुवन को लगा जैसे कलेजे में छुरी जा छिदी हो।

‘और इतना तड़कता गरजता रहा जैसे अकालों के दैत्य की छाती फोड़ने के लिये इन्द्र अपना वज्र चला रहे हों,’ उस गांव के एक मुखिया ने कहा ।

भुवन तिलमिला कर पीछे हट गया । कुछ लोग रथों के आगे आगे नदी में धँस गये । धार उथली थी । पार करने में कठिनाई नहीं हुई । भुवन पीछे रह गया । वेद ने उसके निकट जाकर धीरे से कहा,—‘इतना खिन्न होना व्यर्थ है । जो हो गया सो हो गया ।’

‘हूँ ।’ भुवन कुछ और न कह सका ।

वेद उसे साथ लेकर आगे बढ़ा । इस गांव के लोग पीछे लौट गये । जब ये सब कुछ घंटे पीछे उस गांव के पास पहुँचे जहां गौरी को आश्रय मिला था गांव के बाहर जनता की भीड़ रोमक का स्वागत करने के लिये इकट्ठी हो गई । मोटे कपड़े पहिने गौरी स्त्रियों में सबसे पीछे खड़ी थी । स्त्रियां सिर पर कलश धरे मञ्जुल गीत गा रही थीं । गौरी चुप थी ।

भुवन रथ पर अनमना बैठा था । गौरी उसे देख रही थी इन्हें अब क्या है ? भुवन देखते हुये भी कुछ नहीं देख पा रहा था ।

रोमक ने चलते समय गांव वालों से कहा, — ‘तुम सबकी भलाई के लिये कोई कसर नहीं लगाऊँगा । किसी दिन यहां फिर आकर अपने किसानों की वज्र छातियों पर फूल बरसाऊँगा ।’

गांव वालों के स्वागत सत्कार को देखकर रोमक को लगने लगा कि राज्य की पुनः प्राप्ति में बहुत कठिनाई नहीं पड़ेगी । धीम्य का उपदेश भी उसे स्मरण था ।

[ ४६ ]

रोमक इत्यादि के चले जाने पर गौरी को अयोध्या की ओर भी कही की,—याद पर याद आई। जीना तो है ही, अयोध्या से क्यों इतनी दूर पड़ी रहूँ ? गांव में दूसरे के घर पड़ी रह कर कितना और क्या कर पाऊंगी ? भोजन चाहिये, कपड़े चाहिये—काम सदा मिल नहीं सकेगा। नैमिषारण्य में लौट कर नहीं जाऊंगी चाहे अम्बिका ही क्यों न बुला रही हो। अयोध्या में अपना घर है। मजूरी भी मिल जायगी। और ? और—उनके माथे का चक्कर कभी तो ठीक होगा। चक्कर ही था या कुछ और ? इतनी दूर से कभी न जान पाऊंगी। अयोध्या में रह कर देख सकूंगी—न भी देख पाऊं तो उनके विषय में सुनती तो सब कुछ रहूँगी। दो तीन दिन पीछे गौरी ने अयोध्या जाने का निश्चय कर लिया।

जिसके यहां ठहरी हुई थी उससे विनती की,—‘भैया, यहां से अयोध्या बहुत दूर है। घर जाना चाहती हूँ। क्या वहां तक पहुंचा देने की कृपा करोगे ?’

किसान ने तुरन्त उत्तर दिया,—‘हां बहिन, पहुँचा दूँगा। अपनी बैलगाड़ी से ले चलूँगा।’

‘मैं तो पैदल ही चल सकती हूँ।’

किसान हँसा—

‘मैं तो पैदल नहीं चल सकता।’

‘यहां बैलों के बिना काम नहीं रुका रहेगा ?’

‘जितना करना था कर लिया तुम्हें अयोध्या पहुँचा आना भी तो एक काम है,’ किसान की स्त्री ने कहा।

किसान अपनी बैलगाड़ी से गौरी को अयोध्या ले गया। मार्ग अच्छा नहीं था। अयोध्या पहुँचने में सात आठ दिन लग गये। रोमक पहले ही आ चुका था।

गौरी ने जब अपना घर देखा तो विकल हो गई। घर के चिन्ह भर रह गये थे। केवल एक कोठरी टूटी फूटी हालत में बची थी।

‘घर में तो कुछ नहीं रहा। खंडहल हो गया है,’ गौरी कठिनाई से मुंह खोल सकी।

किसान बोला, ‘लौट चलो बहिन। यहाँ से तो अपना वह गाँव अच्छा।’

‘नहीं भैया, लौटूंगी नहीं। तुम जाओ। कहीं न कहीं कोई नौकरी चाकरी मिल जायगी।’

किसान अछताता-पछताता चला गया। गौरी ने अपनी पोटली— उसमें दो तीन कपड़ों के सिवाय और था ही क्या— उस टूटी फूटी कोठरी में रख दी और एक कोने में बैठ गई। घुटनों पर सिर टेक लिया और टेके रही। अब कहाँ जाऊँ ? उनके पास ? भिखारिन बनकर ! छिः !! नौकरी के लिये ? नौकरी के लिये उनके घर ! उन्होंने एक प्रतिज्ञा मेरी माँ के सामने की थी। अब माँ नहीं रही। और उस उतनी बड़ी प्रतिज्ञा के बाद ही उनका वह हाल हो गया था ! मेरा उन्होंने जान बूझकर तिरस्कार किया था। कई बार। क्या जान बूझकर ? ऐसा तो नहीं हो सकता। तब माथे भीतर का कोई रोग होगा। धीम्य के निर्दय आश्रम ने उनका वह हाल कर दिया ! अब समझी। पास पहुँच जाऊँ तो सेवा, बहुत सेवा कर सकूँ। पर मैं तो वैद्य हूँ ही नहीं। अयोध्या में अनेक वैद्य हैं। वह एक दिन अवश्य ही स्वस्थ हो जायेंगे। परन्तु अभी उनके सामने जाऊँ तो फिर तिरस्कार होगा। वह न भी करें तो उनके माता पिता करेंगे। ऐसी फटियल लड़की को घर में घुसने तक न देंगे। तो क्या दुर्भाग्य सदा मेरे पीछे पड़ा रहेगा ? असम्भव। असम्भव। मेरे भी अच्छे दिन लौटेंगे। तो इस समय क्या करूँ ? आज के खाने भर को अन्न पोटली में है। इधर उधर कभी इसकी और कभी उसकी मजूरी करने से कोई बँधी नौकरी कर लेना अच्छा होगा। किसकी करूँ ? ढूँढ़ते फिरना पड़ेगा। किसी ऐसे वैसे की चाकरी तो करूँगी नहीं। कोई बड़ा घर मिल

जाय तो अच्छा रहेगा । कई महाशाल और साहूकार होंगे । इन सबमें बड़ा नील है । अरे हां, यहां से बहुत दूर भी नहीं । उसे नौकरों की आवश्यकता रहती ही होगी । पहले उसी के यहाँ चलो । उसके एक लड़की थी—उसका नाम... नाम हेमा हिमौरी या कुछ ऐसा ही था । थी तो बहुत कड़वे स्वभाव की । पर जब मैं काम में बराबर लगी रहूंगी तो उसका कड़वा स्वभाव मेरा क्या कर लेगा ? पानी से तो पत्थर तक छिल जाते हैं । कही मर न गई हो । तो भी नील के घर में कोई न कोई स्त्री तो होगी ही । और वहां राजा के और उनके समाचार भी नित्य सुनने को मिलते रहेंगे । उसके यहाँ नौकरी न मिली तो किसी अन्य बड़े घर में मिल जायगी । कही भी रहूँ गुमसुम होकर अपना काम करती रहूंगी । फिर एक दिन—एक दिन—अच्छा भाग्य अवश्य सामने आवेगा । धन्य भगवान !

गौरी तुरन्त उठ खड़ी हुई । उसके मलिन मुख पर एक आभा छिटक आई । पोटली वही खंडहल के पुराने छान छप्पर से ढककर गौरी बाहर निकल पड़ी । नील के भवन का मार्ग जानती थी । वहाँ पहुँचकर उसे मालूम हो गया कि नील की लड़की—हिमानी—जीवित है और नौकरी मिलने की आशा करनी चाहिये । एक की क्या कई नौकरों की वहाँ आवश्यकता थी ।

गौरी साहस के साथ हिमानी के सामने पहुँच गई । हृष्टपृष्ट देह की, स्वच्छ सुन्दर बहुमूल्य वेशभूषा में । गोरे सुरूप मुख पर आतङ्क । गौरी नमस्कार करके खड़ी हो गई ।

‘नौकरी करना चाहती हो ?’

‘जी हां ।’

‘अभी तक क्या करती थी ? कहाँ थीं ?’

‘नैमिषारण्य में खेती किसानी के लिये अपने माता पिता के साथ चली गई थी । वहाँ खेती मजूरी करती रही । मां बाप नहीं रहे । अनाथ हूँ ।’

‘अच्छा, नौकरी दूंगी अपनी ही चाकरी में रखूंगी।’

‘जो आज्ञा। बहुत धन्यवाद।’

‘पढ़ी लिखी हो?’

‘जी...थोड़ीसी...’

‘हमें नौकर चाकर तो बहुत सस्ते मिलते हैं, लेकिन तुम्हारे ऊपर मुझे दया है। खाना कपड़ा मिलेगा और...और...ताम्बे के थोड़े से पए...जब देखूंगी कि काम तुम्हारा बहुत अच्छा है और मेरे मन के अनुसार चलती हो, तब बड़ा दूंगी। कभी कभी थोड़ा बहुत पुरस्कार भी दूंगी।’

‘जी बहुत अच्छा।’

‘और काम ऐसा कुछ बहुत नहीं है।’

‘काम के लिये दिन रात एक कर दूंगी।’

‘ठीक, लेकिन चोरी-चपाटी मत करना, नहीं तो—’

‘कभी नहीं, जी कभी नहीं। मैं क्षत्रिय कन्या हूं।’

‘ओह, अच्छा। मेरे इस कमरे के पास ही गैल की उस कोख में एक छोटी सी कोठरी तुम्हें रहने को दूंगी। वहां से तुम्हें जब चाहे तब बुला सकूंगी।’

हिमानी ने गौरी को वह कोठरी दिखलाई। उसकी पूर्व वाली दीवाल में एक छोटी सी खिड़की थी वहां होकर काफ़ी उज्जला आ रहा था। हिमानी के कमरे के सामने जो गैल थी उसके दोनों ओर छोटे बड़े कमरे थे। किसी में कोई सामान किसी में कुछ। सिरे पर वह कोठरी थी। बहुत छोटी सी ही थी, परन्तु गौरी को अपने लिये काफ़ी बड़ी जान पड़ी। गौरी को लेकर हिमानी अपने कमरे में लौट आई।

‘तुम्हारा सामान?’ हिमानी ने बातचीत आरम्भ की।

‘जी, है ही कितना? एक पोटली बाहर कहीं है सो उठाये लाती हूं।’

‘मैं तुम्हें अपने कुछ उतरे-उतराये कपड़े दूँगी । तुम्हारे इन कपड़ों से तो बू आती है ।’

‘जी ।’

हिमानी मन ही मन अपने सौन्दर्य की तुलना गौरी की सुरूप और बहुत सुन्दर रूप-रेखाओं के साथ कर रही थी । उसके मन में कभी हीन भावना आई और कभी अपने लिये महान—अरे मैं, मैं ही हूँ !

हिमानी ने नाम पूछा । गौरी ने बतलाया । गौरी ! मेरी टक्कर का नाम !! नाम में बराबरी करेगी !!! कभी नहीं, कभी नहीं ।

‘गौरी ! मुझे तुम्हारा नाम बिलकुल भद्दा लगा । किसी के मुँह से गौरी भी निकल सकता है । हिश ! रेवती कहूँगी । क्या कहती हो ?’

‘जी, बिलकुल ठीक है । रेवती ठीक है ।’

‘ले आओ अपनी पोटली और इसी घड़ी से अपना काम सँभालो ।’

गौरी भटपट वहाँ से चली गई और पोटली उठा लाई । हिमानी ने उतारन के कुछ रंग-बिरंगे कपड़े दिये जो उसे अपने मोटे-भोटे कपड़ों के सामने बहुत घटिया जान पड़े । पर करती क्या ? एक पुरानी-धुरानी खाट भी मिल गई । काम हिमानी और नील के कमरों की भाङ्ग-बहारू का, रसोईघर का और जब जिस काम के लिये हिमानी बुलावे तब वह । हिमानी ने उसका परिचय नील से भी उसी दिन करा दिया । दिन कटने लगे ।

[ ५० ]

रोमक के नैमिषारण्य से चले आने के उपरान्त धौम्य ने कल्पक द्वारा कपिञ्जल को बुलवाया । कपिञ्जल बरसात लगते ही पास के छोटे से गांव में चला गया था जहां अधिकांश जङ्गली वर्ग के लोग रहते थे । सीधे भोले और बड़े श्रद्धावान । वह उनकी श्रद्धा से बचना चाहता था, परन्तु वे नहीं मानते थे । ढूँढ़ते ढूँढ़ते जब धौम्य का एक शिष्य उसके पास पहुँचा बड़े चैन की सांस ली, और एक दिन धौम्य के सामने आ गया ।

धौम्य ने उससे कहा, 'मैं तुम्हारे योगाभ्यास से सन्तुष्ट हूँ, परन्तु यह पर्याप्त नहीं है । बिना कर्मशील बने निरा योगाभ्यास बहुत काम का नहीं । तुम अभी तक पढ़-लिख भी नहीं पाये हो । अब समय आ गया है ।'

'जी गुरुदेव, मैं आश्रम को लौट आना चाहता हूँ । यहीं रहकर आज्ञा का पालन करूँगा ।' कपिञ्जल हर्षमग्न था ।

'यहां नहीं । तुम्हारा कर्मक्षेत्र अयोध्या होगा । जितना इकट्ठा करो उससे अधिक बांट दो यह बात योगियों के लिये भी लागू है । कर्तव्य का पालन करो फिर यहां लौट आओ ।'

'चला जाऊँगा गुरुदेव । नीलपणि का रिन मेरे सिर पर है । उसको चुकाऊँगा, अन्य सेवा भी करूँगा ।'

'तुम्हें नील पहिचान लेगा तो सतायेगा ।'

'त्रास से नहीं डरूँगा ।'

'कदाचित न पहिचान पावे क्योंकि तुम्हारे बाल इतने बढ़ गये हैं और देह कुछ ऐसी हो गई है कि छः बरस पीछे गहरी जान-पहिचान वाले लोग भी जब तुम्हें देखेंगे तो भ्रम में पड़ जावेंगे । जाओ और अपने सहवर्गियों को चुपचाप संयम का मार्ग दिखलाओ । बिना प्रदर्शन के जो सेवा करता है वह शीघ्र ऊँचाई पर पहुंच जाना है । उपयुक्त अवसर आने पर तुमको यहां बुलवा लूँगा ।'



कपिञ्जल ने धौम्य के चरण पकड़े ।

‘सुखी रहो । आरुणि को भेजते जाना ।’ धौम्य ने कहा ।

कपिञ्जल चला गया ।

थोड़ी देर बाद वेद आ गया । वह रोमक को पहुँचा कर लौट आया था । उसने अयोध्या का समाचार दिया—

‘अयोध्या की यात्रा में रोमक का कई गांवों में स्वागत हुआ । अयोध्या में भी उनके पक्ष में अनेक लोग हैं । रोमक ने कहलाया है कि गुरुदेव की आज्ञा का अक्षर अक्षर पालन करूँगा ।’

आरुणि आ गया ।

‘आज्ञा गुरुदेव ?’ आरुणि बोला ।

‘बेटा, तुम पन्चाल जनपद के हीरे हो । जो कुछ तुमने यहां सीखा है और किया है उसे देश की उन्नति के काम में लाओ । पन्चाल से अवकाश पाकर अयोध्या जाना और शुभ कार्यों में रोमक, भुवन तथा कपिञ्जल की सहायता करना संभव है, मेघ और उसके साथी उपद्रव ठानें तो जहां तक बन पड़े रक्तपात न होने देना । सदा स्मरण रखना कि जो व्यक्ति कर्म का ज्ञान की उपेक्षा करके सेवन करते हैं वे गहरे अन्धकार में चले जाते हैं, और जो कर्म की उपेक्षा करके केवल ज्ञान में रमते हैं वे उससे भी अधिक अन्धकार में खप जाते हैं । ज्ञान और कर्म का सामंजस्य जीवन का पर्याय समझो ।’

‘जो आज्ञा गुरुदेव,—आरुणि के गले में कुछ जा अटका । चुप्पा था ही, कुछ और न कह सका ।

गुरु भी स्नेह मग्न थे क्योंकि वे आरुणि को बहुत प्यार करते थे । वेद मुग्ध था । क्या मैं भी कभी आरुणि भुवन बन पाऊँगा या कपिञ्जल बन पाऊँगा ?

[ ५१ ]

रोमक ने अयोध्या पहुँचते ही अपना घर और चिट्ठा सँभाला । राजभवन छोड़ने के बाद नगर का जो घर उसे भायं भायं करता सा दिखता था अब प्रिय लगने लगा । चिट्ठा बाँधा तो कितनी भूमि और कितने प्रचुर मणि मुक्ता और सोना चांदी ! उनसे उसे कुछ डर-सा लगा । मैं इनका वितरण करूँगा । इन सबके सबका मैं क्या करूँगा ? भुवन ही क्या करेगा ? गुरुदेव ने जो कहा था । फिर उसने अपने और भुवन की ओर से मेघ के पास क्षमा प्रार्थना का संदेश भेजा । सोचता था मेघ के मन की क्रूरवासना शासन की नाली में होकर बह गई होगी । मैं भी अपनी सशङ्कता या भीति को क्यों न धो पोछ डालूँ और आगे का काम शान्तचित्त होकर करूँ ? मेघ ने संदेश वाहक को फटकार देकर उल्टे पांव लौटा दिया ।

रोमक ने अपने अनमन में मन से पूछा, मैं स्वयं जाऊँ ? परन्तु मर्म को चोट लग गई थी । उसने विचार अनिश्चय के भूले में डाल दिया ।

अयोध्या जनपद भर में जो वर्षा हुई थी उसके समाचार बाहर भी फैले । जो लोग घर द्वार छोड़ कर इधर उधर निकल पड़े थे और किसी प्रकार जीवन यापन कर रहे थे फिर लौटने लगे । दास नहीं आये और शूद्र भी थोड़े ।

रोमक ने अपने लाखों निवर्तनों की भूमि को भूमि-हीन कृषकों में बाँटना आरम्भ कर दिया । इसका समाचार जङ्गल की आग की तरह फैला । बेगारी लौट पड़े और अब बड़ी संख्या में शूद्र भी । रोमक ने इन्हें भूमि दी । भूमि के बांटने का काम वे तीनों करते रहते थे, परन्तु ममता और भुवन अधिक । साधारण जनता में रोमक, ममता और भुवन बहुत प्रिय हो उठे ।

‘इस घर में तुम्हारे काम के लिये स्थान कम है, भुवन । राजभवन में होते तो बड़ी सुविधा रहती,’ रोमक ने कहा ।

‘राजभवन के विस्तार की मुझे थोड़ी सी भी चाह नहीं है पिता जी । काम करने वाला तो पेड़ के नीचे भी रह कर बहुत कुछ कर सकता है,’—भुवन ने उपेक्षा प्रकट की ।

अरे, यह वही भुवन है ! कितना बदल गया है !! धन्य है गुरुदेव को जिन्होंने इसे प्रकाश दिया और मेरी भी आंखें खोलीं ।

मेघ और उसके साथी, विशेषकर नील, रोमक के आगत स्वागत और बढ़ते हुये प्रभाव को आरम्भ से ही शङ्का की दृष्टि से देखने लगे थे । जब भूमिहीनों—शूद्रों—और बेटबेगारियों को भूमि बाँटते देखा तो उन्हें बहुत अखरा—रोमक फिर से राज्य-प्राप्ति की साधना कर रहा है !

नील के भवन में अविलम्ब बैठक हुई । सोम तो उस शासक—मण्डल को बहुत पहले ही छोड़ चुका था, उस दिन वहाँ मेघ, नील, हिमानी और दीर्घबाहु ही थे ।

बातचीत के क्रम में मेघ ने कहा, ‘तुम और तुम्हारी श्रेणी के लोग जो बर्ताव ब्राह्मणों और उच्च जाति वालों के साथ करते आये हैं—भोजन वसन, कम व्याज पर ऋण का देना—उससे ये बड़े लोग सब हमारे तुम्हारे साथ रहेंगे । और उन्हीं के प्रभाव में ये साधारण जन हैं और रहेंगे । और फिर मेरा शाप कहाँ जायगा ? भुजाओं का बल तथा धार और नोक वाले हथियार सेवा करेंगे । रोमक के सर्वनाश की कामना वाले मेरे यन्त्र विफल नहीं हो सकते ? कभी नहीं । समिति उसे फिर से कभी अभिषेक नहीं करेगी । अपना प्रभाव व्यापक है । जिस जन पद को मैंने उस समय चेता कर रोमक के विरुद्ध खड़ा कर दिया था वह मेरे साथ रहेगा । मैं अपने उस गाँव में बैठे बैठे ही वह काम करता रहूँगा कि रोमक को सदा के लिये अयोध्या छोड़कर वानप्रस्थ आश्रम में जाना पड़े । अटक पड़ी तो जनपद की मैं यात्रायें भी करूँगा ।’

‘आपका ही सहारा है आचार्य’,—नील धिघियाया,—‘आपके आशीर्वाद से व्योपार कुछ चेता बढ़ा है । अच्छे सलूकों के बढ़ाने का

भी सङ्कल्प है, रोमक अपनी भूमि बांटने लगा है इससे कुछ शंका हुई है ।’

‘इसी का डर मुझे भी है—’, हिमानी ने समर्थन किया । ‘मैं और मेरे इतने योधा कहाँ जायेंगे जो बहुत सा देशाटन भी कर चुके हैं ? जब कहिये तब रोमक को बिछा दूँ’ दीर्घबाहु ने हाँकी ।

मेघ ने पुचकारा,—‘अभी नहीं, अभी नहीं महाशाल । जब अवसर आवेगा बतलाऊँगा ।’

‘मैं तैयार रहूँगा ।’ दीर्घबाहु ने तुरन्त मान लिया । मेघ ने अन्त में कहा, ‘मुझे बाप बेटे क्षमा मांगना चाहते थे तो मैंने फटकार कहलवा भेजी । उन पापियों का मुँह तक नहीं देखूँगा । उस छोकरे भुवन को देखो, ऋषियों की जैसी बातें बनाने लगा है । सौम्यता का अभिनय रचता है !’

हिमानी ने और भी सुलगाया,—‘इनको तो मिटाना ही पड़ेगा आचार्य । मुझे जब कभी जो कुछ भी काम दिया जायगा करने में कभी आना कानी नहीं करूँगी ।’

गौरी किवाड़ के पास आकर झाँकी । आंख गड़ाकर मेघ और दीर्घ-बाहु को देखा और सिर नीचा करके बोली,—

‘जलपान तैयार है ।’

‘ले आ रेवती ।’ हिमानी ने कहा । गौरी चली गई ।

दीर्घबाहु ने पूछा, ‘यह कौन है ?’

हिमानी ने उपेक्षा के साथ बतलाया,—‘है एक सीधी सूधी दासी मेरी । थोड़े दिन हुये तब नौकर रखी है ।’

‘इनके भवन में दासदासियों की क्या कमी,’—मेघ जरा सा हँसा ।

गौरी ने पाव घड़ी में ही जलपान की सामग्री उन चारों के सामने परोस दी । वह नीचा सिर किये ही दीर्घबाहु को कम और मेघ को अधिक सूक्ष्मता के साथ परख रही थी । उसे भीतर भीतर न जानें क्यों लग रहा था कि यह कोई भयङ्कर जन्तु है और इससे सावधान रहना

चाहिये। दीर्घबाहु कभी इस सामग्री के लिये और कभी उसके लिये गौरी को देखने का बहाना निकालता जा रहा था। हिमानी को दो एक बार चुभा। उन्हें कोई बात नहीं। केवल कुतूहल है। दीर्घबाहु को तो ऐसा वश में कर लिया है कि ची तक नहीं कर सकता। कहीं कोई कसर रह गई होगी तो ठीक करना कुछ कठिन न होगा।

जलपान के अन्त में गौरी जूटे बर्तन उठा ले गई।

नील ने कहा, 'आचार्य जी, गांवों की ओर अधिक ध्यान देते देते कहीं ऐसा न हो कि अयोध्या पर चिन्ता कम हो जावे।'

'नहीं, मैं आता जाता बना रहूंगा,'—मेघ ने आश्वासन दिया,— 'परन्तु यह नहीं भूलना चाहिये कि जनपद समिति बड़ी है और नगर सभा छोटी नगण्य सी। यहाँ तुम साहूकार लोग, ब्योपारी और कुछ महाशाल भी हो। समस्या को साधे रहोगे। परन्तु बहुत से शाल, महाशाल, योधा और मेरे अनुयायी ब्राह्मण ग्रामीण क्षेत्र में ही बसते हैं। अकाल पीड़ित जानता इन गांवों से ही बाहर के जनपदों को भागी थी। अब लौटकर जहां की तहां आ रही है। गांवों और खेड़ों के मुखियों को हाथ में रखना बहुत अभीष्ट है। भेड़ बकरियों के यज्ञ बलिदानों में ग्रामीण क्षेत्रों के विश्वास को मेरे मन्त्र बहुत प्रभावित करेंगे।'

मेघ अपने दूर गांव चला गया।

[ ५२ ]

सन्ध्या के पहले कपिञ्जल नील के सामने आ गया। सूखा कीचड़ पैरों में, फटे मोटे कपड़े मैले-कुचैले। सिर के बाल काट कर कुछ छोटे कर लिये गये थे, पर दाढ़ी-मूछ वैसी ही लम्बी और घनी। पसीने भरी धूल से छाई हुई। वह नौकरी मांगने के लिये नील के सामने वैसे ही जा खड़ा हुआ था। सिर पर छोटा सा मुड़ासा बांधे था जिसमें होकर बाल इधर-उधर निकल रहे थे।

नील ने ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर तक देखा। यह कौन है? वह नहीं हो सकता। नाक तो वैसी ही है, पर आंखें बिल्कुल वे तो नहीं हैं? छरेरा है, लेकिन उतना तगड़ा नहीं जितना कपिञ्जल था।

‘नाम?’ नील ने पूछा।

‘जी दास।’

‘जी दास! जी दास कोई नाम होता है?’

‘जी केवल दास, दास।’

स्वर वह नहीं है। यह तो कोई दूसरा ही व्यक्ति है। वह तो योगी हो गया है! यहां आवेगा ही क्यों?

नील बोला,—‘नौकरी चाहने वालों की तो इतनी भरमार है कि जैसे पृथिवी कहीं फट पड़ी हो और उन्हें उगलने लगी हो। काम हमारे यहां कुछ ऐसा बहुत नहीं है। कहां से आ रहे हो?’

‘जी, अकालों के मारे बाहर निकल गया था अब लौट रहा हूँ।’

‘कब चले गये थे?’

‘जी, दस साल हुये तब चला गया था।’

‘पहले कहां रहते थे?’

कपिञ्जल ने दूर के एक छोटे से अप्रसिद्ध खेड़े का नाम बतलाया।

नील ने कहा, ‘हमारे बड़े नाम को सुनकर न जानें कितने आये हैं। किसी को किसी काम पर लगा दिया और किसी को किसी पर। तुम कौन कौन-सा काम जानते हो?’

‘जी, शूद्र हूँ। कोई सा भी काम अंगेज लूँगा। वैसे रसोईघर का काम और भी अच्छा कर लूँगा।’

‘अस्तु, तुम्हें रखे लेता हूँ। रसोईघर और बगीचे का काम करना। मन लगाकर भला, नहीं तो तुरन्त निकाल बाहर करूँगा।’

‘जी, बहुत अच्छा।’

‘खाना कपड़ा और ताम्बे के पन्द्रह पण हर महीने ऊपर से।’

‘जी, बहुत है। पल जाऊँगा।’

जब नील हिमानी से मिला और कपिञ्जल के सम्बन्ध में बात आई तो हिमानी ने कहा, ‘यह वह नहीं है।’ नील का मत था ही।

कपिञ्जल के पूर्व परिचित कोई भी नील के यहां नहीं मिले।

[ ५३ ]

जब कपिञ्जल रसोईघर में पहुँचा तब गौरी तीन नौकर-नौकरानियों के साथ काम कर रही थी। हिमानी पीछे से आकर बोली,—‘रेवती, तेरे साथ दास अकेला काम किया करेगा। चार-चार छः छः नहीं।’ हिमानी की नाक का नथना थोड़ा सा ऊपर को सिकुड़ गया था। कपिञ्जल ने वह नाक पहले भी देखी थी। नीचा सिर और भी नीचा कर लिया।

गौरी ने कहा,—‘जी हाँ। मेरे काम के लिये ये अकेले ही बहुत हैं।’

कपिञ्जल ने सन्तर्पण किया,—‘जी, मैं इनका सब काम करा दिया करूँगा और फिर बगीचे की भी पूरी देखभाल कर लिया करूँगा।’

उन तीनों नौकर-नौकरानियों को हिमानी दूसरा काम बतलाने के लिये साथ ले गई।

कपिञ्जल ने गौरी को नहीं पहिचाना। गौरी अपनी शङ्का का समाधान करने के लिये उसे जब तब परखने लगी।

काम करते करते कपिञ्जल को कुछ परिचय स्थापित करने की अनिवार्यता अवगत हुई।

‘तुम यहीं की रहने वाली हो, बहिन?’

‘हां, भैया। नैमिषारण्य में चली गई थी। थोड़े दिन हुये तब लौटी हूँ।’

‘नैमिषारण्य!’ कपिञ्जल को कुछ आश्चर्य हुआ।

‘हां, भैया। वहां अपने माता-पिता के साथ धौम्य खेड़े में रहती थी।’

‘धौम्य खेड़ा!’ कपिञ्जल को आश्चर्य, शङ्का और सावधानी ने यकायक फुरे ली।

गौरी की आंखों के सामने उसके माता-पिता के बह जाने का भयानक दृश्य घूम गया। निश्वास के साथ उसने दृश्य को मन में कहीं



दबा दिया। कपिञ्जल ने एक क्षण ध्यान के साथ उसे देखा। फिर आंखें नीची करली। क्या इसे वहाँ कभी देखा है ?

‘क्या तुम वहाँ कभी गये हो ?’ गौरी ने अपनी शङ्का को प्रश्न का रूप दिया।

अब क्या कहे ? कपिञ्जल रसोईघर से बाहर की आहट लेने लगा कि गौरी बोली, ‘मैंने वहाँ बड़े बड़े योगी और महात्मा देखे हैं। आठ-नौ बरस रही धौम्य खेड़े में। महर्षि धौम्य के आश्रम के निकट एक टेकड़ी के आसपास गायें चराती थी—’

कपिञ्जल को रसोईघर के बाहर कुछ आहट मिली। ‘बहिन, तुम्हारा चूल्हा अच्छी तरह नहीं जल रहा है। थोड़ा सा सूखा ईंधन उठा लाऊँ,’ कपिञ्जल ने कहा और बाहर चला गया। बाहर कोई नौकर एक काम से आया था।

गौरी सोचने लगी—बहुत सम्भव है यह वही हों जो उस टेकड़ी पर अभ्यास किया करते थे जहाँ फिर वे मिले थे—वे !

यदि वही हैं तो एक बड़ा हितू मिल गया; देखूँ भाग्य कितना साथ देता है।

कपिञ्जल लकड़ी लेकर आ गया। चूल्हा धायं धायं जलने लगा और रसोई का काम जल्दी जल्दी चलने लगा। गौरी की उत्सुकता बढ़ चुकी थी और कपिञ्जल के भीतर गुप्त रहने की वान्छा।

‘क्या तुम वहाँ कभी गये हो ?’ गौरी ने प्रश्न दुहराया। कपिञ्जल कह तो कुछ नहीं सका, पर हाथ की उङ्गली उसके होठों पर जा पहुँची। धीरे धीरे बात करो, चुप रहो या कुछ भी मत पूछो इनमें से उङ्गली का यह वर्जन किस बात का संकेत कर रहा है ?

गौरी की शङ्का दूर होने को हुई। धीरे से बोली,—‘ऐसा लगता है जैसे उस टेकड़ी पर ध्यान करते देखा हो। वहाँ कभी कभी फल फूल चढ़ा आती थी।’

कपिन्जल को स्मरण हो आया, यह वही लड़की है जिससे भेंट किये फल फूलों को मैं अपने माथे से छुलाकर आश्रम में दे देता था। इसके माता-पिता थे। इन सब के साथ मैंने नैमिषारण्य की यात्रा की थी। इन लोगों ने मुझे पकड़े जाने से बचाया था। अब यह सयानी हो गई है। समझ भी बढ़ गई होगी। हम एक से दो हुये। भेद नहीं खोलेगी, खुल भी जाये तो क्या। परन्तु नहीं गुरुदेव ने, जहां तक निभे, गुप्त रह कर सेवा करने का आदेश दिया था। रोमक और भुवन की सहायता गुपचुप ही अधिक अच्छी हो सकेगी।

कपिन्जल ने धीमें स्वर में कहा, 'हां बहिन मैं ही हूं वह। चाहता हूं कि मेरा नाम, व्यक्तित्व इत्यादि प्रकट न हो अर्थात् जब तक कि प्रकट होने की ठीक घड़ी नहीं आई।'।

न जाने कितने समय के बाद गौरी के मन को उतना हर्ष मिला था। मुर्झाया हुआ चेहरा खिल गया। तुरन्त बोली, 'नहीं भैया, मैं किसी से भी नहीं कहूंगी। तुम न रोकते तो भी प्रकट नहीं करती। मेरा स्वभाव ही नहीं है। अपने काम से काम।'।

कपिन्जल ने पूछा, 'माता पिता कहां है?'

गौरी के सिर पर जैसे गाज गिरी हो। रो पड़ी, हिलकी आ गई। कपिन्जल समझ गया। उसने प्रश्न को नहीं दुहराया।

सान्त्वना देने लगा,—'एक दिन तो सभी के माता पिता को जाना पड़ता है।'।

रोते रोते गौरी ने कहा, 'नदी की बाढ़ में बह गये!'

कपिन्जल शान्त करने लगा। रसोई घर के बाहर किसी के जल्दी-जल्दी आने की आहट मिली। गौरी ने आंसू पोंछ डाले। हिमानी आ धमकी और कड़की,—'कितनी देर और है?'

'तैयार है', कांपते गले से गौरी ने कहा। उसकी आंखें लाल थीं और आंसू सबके सब नहीं पोछे जा सके थे।

'ओह, गीले ईधन ने तुम्हारी आंखों में पानी भर दिया है। दास, तू रेवती को सूखा ईधन दिया कर।' हिमानी थोड़ी-सी पसीजी।

मैं ने सब बातें बता दीं ।  
परन्तु जब मैं बयान दे रही  
थी, तभी अकस्मात् खवास ने  
मेरे ऊपर रिवालवर चला  
दिया । परन्तु इसी क्षण  
वासुदेव महाराज गरज कर  
खवास पर चीते की भाँति  
टूट पड़े । खवास का निशाना  
चूक गया और गोली मेरे  
कान को छूती हुई दीवार में



घुस गई । इसी समय मैंने देखा कि खवास में दैत्य के समान बल था । उस  
ने अनायास ही वासुदेव महाराज को उठा कर दूर फेंक दिया और लगा  
दनादन गोलियाँ दागने । एक गोली वासुदेव महाराज की जाँघ में घुस  
गई । पुलिस के जवान तुरन्त ही उस पर टूट पड़े और उन्होंने ने पिस्तौल  
छीन कर उसे कब्जे में कर लिया तथा हथकड़ियों में जकड़ लिया । एक  
क्षण-भर में ही यह सब भयानक काण्ड हो गया । वासुदेव महाराज खून  
में भर गए, पर उन्हें इस समय अपने जल्मी होने की जरा भी परवाह न  
थी । वह हकला-हकला कर खवास पर व्यंग्य-बाण चला रहे थे और  
खवास गंदी-गंदी गालियाँ बक रहा था । मैं उस हत्यारे की गोली से  
बाल-बाल बच गई थी, इस लिए वासुदेव महाराज बहुत खुश थे । उन्हें  
तत्काल प्रारम्भिक उपचार के लिए अस्पताल भेज दिया गया । खवास  
ने प्रत्येक बात से कतई इन्कार कर दिया । पुलिस ने उसके वस्त्रों की  
भी तलाशी ली और कमरे की भी । मेरे कहने पर कोठी के पिछवाड़े  
वाले कमरे की भी । वहां से भी कई संदिग्ध वस्तुएं मिलीं । उन में सब  
से अधिक महत्वपूर्ण था एक अधूरा पत्र, जिसे वह महाराजाधिराज को  
कदाचित् उसी समय लिख रहा था जब कि पुलिस ने उसे घर दबाया  
था । पत्र अधूरा था और उस पर उसके हस्ताक्षर नहीं थे, पर वह उसी

‘जी इन्होंने ही सूखा ईधन दिया, तब काम कुछ जल्दी हो पाया,’ गौरी बोली।

‘खाना भेजो,’—आज्ञा देकर हिमानी चली गई। थालों में व्यञ्जन सजाये जाने लगे।

कपिन्जल ने धीरे से कहा,—‘यह बड़ी दुष्ट है। इससे सावधान रहना।’

‘मैंने पहले ही दिन समझ लिया था। कोठरी से कभी कभी जो बातें सुनती हूँ उनसे जान पड़ता है कि यहाँ और भी कई निर्मम हैं। एक कोई मेघ है बड़ा डरावना सा,—’

‘वह रोमक और भुवन के शत्रुओं का नायक है। इन सब का कोई षडयन्त्र उन दोनों को किसी न किसी संकट में डालने का चल रहा होगा या चलेगा। सावधानी के साथ सब देखना और सुनना है। जैसी और जितनी बने हमें रोमक और भुवन की सहायता करनी है।’

गौरी ने हामीं का सिर हिलाया, मुँह से कुछ नहीं कह सकी।

×

×

×

काम से निवृत्त होकर जब गौरी अपनी कोठरी में जा लेटी तब गरमी थी। पानी धीरे-धीरे बरस रहा था और हवा नहीं चल रही थी। थकी होने पर भी उसे नींद नहीं आ रही थी। मन कभी इधर और कभी उधर दौड़ रहा था। कपिन्जल का साथ पाना उससे अपने भाग्य का उदय समझा। पर है तो बिचारा अकेला। लेकिन योगी जो है। तो वहां से यहाँ नौकरी करने क्यों चला आया? कभी अवसर पाने पर पूछूँगी। कोई बात अवश्य है। नहीं तो रोमक और भुवन की सहायता करने की चर्चा क्यों की? किस संकट में होंगे ये? कपिन्जल को कहीं कोई मार न दे। और उन—बाप बेटे पर कोई संकट? मेरा दुर्भाग्य कहीं मुझे फिर न आ घेरे। अनाथ हूँ...माता पिता...उस रात...कैसी बाढ़ आई थी...पानी बरस रहा था...गौरी को नींद आ गई। पानी पड़पड़ाकर बरसने लगा। गौरी ने स्वप्न देखा—उसके माता पिता बहती धार पर

[ ५४ ]

दिन चढ़ आया था । किरणों चारों ओर फैली हुई हरियाली के साथ हँस खेल रही थी । सूखी भाड़ियों के मरे सिरों के नीचे पत्ते और कोपलें सघनता के साथ छा गई थी । मरे सिरों की मुर्झाई हुई डालियों के जोड़ों में से लाल धूमरी घुड़ियां फूट निकली थी । अकालों से जो ढोर बच गये थे मक्खियों मच्छरों से पीछा छुटाने के लिये पूछ डुलाते फटकारते बढ़ती हुई दूबा पर मुंह पर मुंह घाल रहे थे । नदी नाले बहते चले जा रहे थे । उनमें धार के किनारे बारीक मिट्टी के पर्त और सपाट रेत की तहों के कण चमक रहे थे । बरसों पहले छोड़ी हुई जन्मभूमि को किसान जथे के जथे बाँधकर लौटे । सिर पर सामान होठों पर मुस्कान और बीच बीच आशा के गीत । बहुत से नरनारी पुरुषार्थ भरे गाने गाते चिनोती सी दे देकर नदी नालों को पार करते हुये चले आ रहे थे ।

कोई कहता था,—अब तो अपना गांव थोड़ी सी ही दूर और है ,’

कोई,—‘बरसों के बाद जन्मभूमि देखेगे ।’

तो कोई,—‘जन्मभूमि की जय हो ।’

×

×

×

×

जिनको भूमि मिल गई थी और जिनकी पहले से अपनी थी वे हल चलाने पर जुट पड़े । पसीना बह रहा था, परन्तु वे उसे गा गाकर ठंडा कर लेते थे ।

जहाँ कहीं होम-हवन हो रहा था वहाँ के मन्त्रों का साथ किसान के गीत दूर से ही मन में गुथ गुथकर दे रहे थे ।

अयोध्या में जहाँ रोमक, ममता और भुवन अपनी निजी निवर्तन भूमि को बाँट रहे थे भूमि पाने वाले उनका जयकार कर रहे थे—

‘जय किस बात की ? भूमि जनपद की थी, उसी की जनता को वापिस कर रहा हूँ,—रोमक कहता था ।

और भुवन,—‘यह सब तुम्हारी है और मैं भी तुम्हारा....’

ममता आशीर्वाद देती थी—‘परमात्मा तुम सबको सुखी रखे। हम सब एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें।’

किसान आपस में कहते थे और उनके अनेक मुखिया भी कह उठे थे—

‘रोमक को राज्य फिर से मिलना चाहिये।’

‘उन्हें गद्दी से उतारना ही नहीं चाहिये था।’

‘जाने भी दो, जो हुआ सो हुआ—आगे की सोचो।’

×

×

×

×

रोमक के पास जब निजी खेती के लिये बहुत थोड़ी सी ही भूमि रह गई, तब उसने अपने स्वर्ण, चांदी और मणिमुक्ता के भांडार पर हाथ डाला। सोने चांदी के वितरण से लोगों को अन्नवस्त्र और अन्य साधन हाथ लगे, परन्तु मणिमुक्ताओं ने थोड़ी सी कठिनाई खड़ी कर दी। फिर वह सहज हो गई। बहुत से साहूकारों ने सोने चांदी और दूसरे सामान के बदले में इन्हें ले लिया। अधूरे छोड़े हुये कामों पर यह सब लगा दिया गया और श्रमिकों का पेट भरने लगा। यह भी जल्दी खर्च हो गया। रोमक ने उदारता इतनी मुक्तता और इतनी आतुरता के साथ बर्ती कि दो तीन महीने के भीतर रीते हाथ रह गया। मन के भीतर के बांध टूट चुके थे। विवेक और दूरदर्शिता को चिरवस्त जनता की प्यासी आंखों और कृतज्ञ वाणी ने परास्त कर दिया। अब क्या हो ? प्रश्न कुछ कठोर रूप धारण करके सामने आ खड़ा हुआ।

भुवन ने स्मरण दिलाया,—‘वे कुर्तों और कन्चुकों जो माता जी ने मेरे लिये बनाये थे कब काम आवेंगे ? मैं तो उन्हें पहिनने से रहा।’

‘उनके मणिमुक्ता और सोना चांदी दूसरे कुर्तों और कन्चुकों के काम आ जावेंगे।’

भुवन हँसा,—‘मेरी देह को सजाने के पहले जनता का पेट और सिर सजाना अत्यन्त आवश्यक है। मैं बनावट से दूर रहूंगा।’

उन कुर्तों और कन्चुकों की बहुमूल्य सामग्री भी काम में आ गई।

×

×

×

×

कपिञ्जल को एक दिन उसके कुछ पूर्व परिचित अयोध्या में मिल ही गये । उसको पाकर वे बहुत उत्साहित और उत्तेजित हुये । कपिञ्जल अभी कुछ समय तक और गुप्त रहना चाहता था ।

‘किसी को भी मालूम न होगा । हमें सिखापन देते रहो । हम लोग बहुत हैं । मेघ का वर्ग बहुत छोटा है । उसका अनाचार सहा नहीं जाता,’—वे लोग कह रहे थे ।

कपिञ्जल ने उन्हें सचेत किया,—‘अपने अपने पल्ले का काम मन लगाकर धीरज के साथ करते रहो । किसी के भी माल पर कभी मन मत डिगाओ । मैं तुम लोगों से मिलता रहूँगा, परन्तु मेरा नाम दास के सिवाय और कुछ भी प्रकट न होने पावे । अभी इतना ही कहना है । फिर जब जैसा समय आवेगा, बतलाऊँगा ।’

‘धन्य है योगी ।’ कोई मन ही मन कह रहा था, और कोई खुसफुस में ।

×

×

×

×

एक गांव में मेघ जल भुन रहा था—‘बड़ा दाता बन गया है वह नीच रोमक ! अभी बहुत छिपाये रखे है । सबके सब अयोध्या पर टूट पड़ो और उसका सारा छिपाया हुआ धन मांग लो । ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा । मत चूको ।’

जन भीड़ की भीड़ रोमक के भवन के सामने मंडला उठी तब रोमक घबरा गया । सोम ने उसकी बात सँभाली । भीड़ को सोम ने समझाया—‘रोमक जो कुछ दे रहे हैं उससे अब बहुत कम उनकी गांठ में बचा है । मैं तुम्हें अपनी आवश्यकता के अनुसार ले लेने से नहीं रोकता परन्तु भिखमङ्गी मत करो, भिखारी मत बनो । भीख मांगना बहुत बुरा है । किसी के बहकावे में आकर राजा रोमक को मत सताओ ।’

‘ठीक कहते हैं पुरोहित सोम । किसी किसी को लेने की अटक है, सब किसी को नहीं ।’ सीधी जनता के मन में जा बैठा । फिर भी बहुत से मंगते आते जाते बने रहे । अब रोमक के सामने दान की समस्या

मुँह फाड़कर आ खड़ी हुई। हाथ में ममता के आभूषणों के सिवाय और कोई बहुमूल्य वस्तुयें नहीं बची थीं।

×                      ×                      ×                      ×  
मेघ ने देखा रोमक के प्रति जनता में आदर बहुत बढ़ता जा रहा है। उसने रोमक के विरुद्ध सिरतोड़ प्रयास आरम्भ कर दिया। उस आदर के विस्तार को तो देख रहा था, परन्तु उसकी गहराई उसे नहीं दिखलाई पड़ रही थी। अपने गांव में उसने कई स्थानों के मुखियों को इकट्ठा किया। उनसे कहा, 'रोमक के पापों के कारण अकाल पर अकाल पड़े। कितने तप, आत्म-त्याग और यज्ञ-बलिदान करके तुम सबके सामने मैं सुकाल को ला पाया! अब वही रोमक दान का छल और जाल फैलाकर फिर से राज्य पाने की धुन में है। भविष्य के अकालों और सङ्कटों से बचना चाहो तो उसकी एक न सुनना।'

'चर्चा तो हो उठी है।'

'काहे की?' मेघ ने प्रश्न किया।

'रोमक को राज्य लौटा देने की। बहुत से ब्राह्मण कर रहे हैं, जनता कर उठी है।'

'तुम लोग क्या कहते हो?'

'सोचकर उत्तर देंगे।'

'अभी क्या कहते हो? मेने जो कहा है उसे गांठ में बांध लो।'

एक बोला,—'बहुत दिन गांठ में बांधे रहे। पर अब मध्यम श्रेणी के लोगों, उन ब्राह्मणों और इस जनता का क्या करें जो रोमक को फिर से राज्य देने की बात कह उठी है?'

इनका यह साहस ! मेघ को आश्चर्य हुआ। उसे क्रोध आ गया,—  
'उनके साथ तुम्हारा भी सत्यानास होगा।'

एक उनमें बहुत मुँह फट और निडर था। धीरे से बोला,—  
'सत्यानास हो तुम्हारा जो उल्टी पट्टी पढ़ाते फिर रहे हो।'

मेघ ने नहीं सुन पाया। भीड़ की हड़बोंग में बिखर गया।

×

×

×

×



दीर्घबाहु को बुलाकर मेघ ने कहा,—‘जान पड़ता है कि जनपद कोई एक राजा चाहता है क्योंकि बहुत समय से यहां गणतन्त्र की परम्परा न रह कर राज्यतन्त्र की चली आरही है—

‘रोमक को तो राज्य नहीं मिलना चाहिये चाहे कुछ हो जाय । वह हम लोगों को बहुत त्रास देगा ।’

‘वही तो वही तो । तुम राज्य करोगे ?’

‘यदि आचार्य जी आशीर्वाद देंगे तो अवश्य करूँगा ।’

‘तुम्हारे नीचे वाले सामन्त और योधा तुम्हारा साथ देंगे ? जैसे मैं कहूँ वैसे बिना किन्तु परन्तु किये चलेंगे ?’

‘बिलकुल आपके प्रभाव में जो सामन्त और महाशाल इत्यादि हैं उनकी आप जानें ।’

‘तो इन सबको तैयार रखने की घड़ी आती दिख रही है । जनपद समिति की बैठक होने के पहले,—और अभी हाल में ही उसकी कोई संभावना नहीं दीखती क्योंकि शासन अपने हाथ में है,—भुवन और रोमक से युद्ध लड़ना पड़ेगा ।’

‘हमारे म्यानों के भीतर खड़ खड़खड़ा रहे हैं और तूणीरों में वान भन भन रहे हैं, जब आज्ञा होगी तभी निकल पड़ेंगे । बतलाइये कब ?’

‘अभी नहीं थोड़ा ठहरो । अयोध्या के बड़े बड़े लोगों को भी साथ लगाना पड़ेगा ।’

×

×

×

×

एक दिन आ गया जब रोमक की गांठ में मांगने वालों को देने के लिये कुछ नहीं रहा ! भीड़ पर भीड़ तो कम हो गई थी, फिर भी मांगने और दान लेने की वृत्ति जो एक बार उमंग कर खड़ी हो गई तो उसने बैठ जाना या धीरज धरना न जाना । ममता के सारे आभूषण चले गये । रोमक की गांठ में देने योग्य कुछ नहीं बचा । प्रभाव बहुत बढ़ा सब कुछ हुआ, राज्य लौटा देने की चर्चा ने भी प्रगति पकड़ी परन्तु

जनपद समिति के अधिवेशन के लिये तिथियों का का कोई महीना तक नियुक्त नहीं हुआ। सोम प्रयत्न कर रहा था। तो भी बिगड़ी को बनाने के लिये समय तो चाहिये ही। स्वभावतः ऋण लेने पर ध्यान गया। उतना बड़ा ऋण कौन दे ? थोड़े से थोड़ा देने के लिये तैयार हो गये परन्तु अनेक ने बड़ा ऋण देने के लिये अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। थोड़ा भी दें वापिस कैसे और कब होगा ? अन्त में रोमक को अरुचि होते हुये भी नील का नाम याद आया। उसके साथ दुर्व्यवहार किया था ? उसके पास बहुत धन है, मैं फिर से राजा होते ही लोहे ताम्बे इत्यादि की खानों से आने वाले कर की आय से सारा ऋण चुका दूँगा। क्योंकि यह कर तो राजा की निजी सम्पत्ति है। ऐसे नहीं मानेगा तो उसे कुछ खानें दीर्घकाल तक के लिये लगा दूँगा। मेघ बाधा डाल सकता है। कदाचित् लच जावे। पर यह तो नील के ब्योपार और लैन देन की बात है। बड़ा कन्जूस है। मेघ की बात इस विषय में न मानेगा। बस ऋण का यह धन हाथ में आ जावे फिर विवेक के साथ व्यय करूँगा। तब तक समिति का अधिवेशन हो जायगा। फिर सब कठिनाइयाँ दूर। और राजा होते ही जन-हित के कार्य सोच समझ कर, दूर-दर्शिता के साथ, करूँगा। रोमक ने ममता और भुवन से सलाह की। उन्होंने रोमक के उत्साह को देखकर निषेध नहीं किया। रोमक ने नील के पास ऋण लेने का संदेशा भेजा।

[ ५५ ]

शरद ऋतु आ गई थी। अब की बार अयोध्या में आई भी बड़ी सजधज के साथ। सुगन्धियां बांटती फैलाती, धरती की छाती को फुलाती, हँसती,—उस गीत को सार्थक करती हुई मुस्कराती हुई शरद सौ सौ बरस हमारे सामने आती रहे। ऐसी आई कि भूतकाल के कष्टों को भुला दिया और भविष्य की आशाओं के पुञ्ज आंखों के सामने खड़े कर दिये। जन का अधमरा पुरुषार्थ दुगुने चौगुने बल के साथ उठ खड़ा हुआ।

रात्रि के समय नील के भवन के एक कमरे में नील के साथ मेघ बैठा हुआ था। कोने में एक बड़ा दीप जल जलकर मोटा धुआं छोड़ रहा था। खिड़कियों में होकर आने वाला शीतल सोंधा पवन उस धुएँ की दुर्गन्धि को कम कर देने पर तुला हुआ सा था।

मेघ उसी सांझ गांव से आया था। बातचीत एक घड़ी से चल रही थी।

मेघ कह रहा था,—‘अनेक लोगों का मन इधर से उचट उचट कर रोमक की ओर बढ़ता जा रहा है। जनपद समिति के अधिवेशन का बुलाना सङ्कट से परे नहीं है। युद्ध छेड़ा जा सकता है, परन्तु सैकड़ों सहस्रों का रक्तपात हो जायगा। रोमक भुवन इत्यादि कुछ थोड़े से ही मारे जावें तो अच्छा है, किन्तु युद्ध में यह सम्भव नहीं। रोमक की मूर्ख दान-शीलता ने समस्या खड़ी कर दी है। सोच रहा हूँ कि सांप मारा जावे और लाठी टूटे नहीं—’

‘रोमक के पास जो कुछ था दे चुका। मेरे पास रिन पर सोना चांदी इत्यादि लेने का संदेशा उसने भेजा तो मैंने टाल दिया। आप से बात जो करनी थी,’ नील ने कहा।

‘क्या उत्तर दिया था ? नहीं तो नहीं कर दी ?’

‘नाहीं नहीं की थी। कहला दिया कि सोचकर उत्तर दूँगा।’

‘ठीक किया। मेरे ध्यान में एक बात आ रही है। बतलाता हूँ।’

थोड़ी देर दोनों चुप रहे। फिर मेघ बोला, 'मेने एक दूर की सोची है। सुनो।' मेघ देर तक उसके कान में कुछ कहता रहा।

नील ने कहा, 'प्रश्न कुछ टेढ़ा है आचार्य जी। हिमानी की बुद्धि, तेजस्विता और हिम्मत में कोई बराबरी नहीं कर सकती। काफी सयानी हो गई है। उसे अनुभव भी अनेक प्रकार के हैं। दीर्घबाहु के साथ ब्याह करने की बात बहुत दिनों से चल रही है, किन्तु उसके साथ वह ब्याह करेगी या नहीं करेगी, किसके साथ करेगी किसके साथ नहीं। वही जाने। हमारे देश में रीति—'

'अपने देश की जाने दो। इस देश की सोचो। दीर्घबाहु महाशाल है, सीधा सच्चा अपने हाथ का। उसे राजा बनाने का भरोसा दे आया हूं। अन्त में ब्याह उसी के साथ होना चाहिये। मेरे तुम्हारे कहने को नहीं टालेगी। परन्तु बातचीत चलाओ भुवन के साथ ब्याह करने की। हिमानी को इस नाटक में मेरा तुम्हारा साथ देना पड़ेगा। वह उस दिन कह रही थी कि जब जिस काम के लिये कहा जायगा पूरी तरह करने में कभी नहीं चूकेगी। उसमें काम करने का हठ बहुत है। भुवन और रोमक से वह है भी, बहुत रुष्ट। उसे भुवन ने कोड़े लगाये थे, याद है न ?'

'न में भूला और न वह कभी भूल सकती है।' नील के मुँह से आह निकली।

'तो इस नाटक के लिये उसे अविलम्ब तैयार करो। नाटक ही तो है। उसको खेल रुचेगा।'

'कदाचित मेरे समझाने पर मान जाय।'

'अवश्य मानेगी। जैसे ही वह मान जाय रोमक के पास सन्देशा भेजो कि सदा के लिये संबंध करना चाहता हूं कुछ सोना चांदी इत्यादि तो सगई में अभी दे दूँगा, शेष बहुत सा विवाह मण्डप के नीचे, और फिर तो हमारा सबका सब तुम्हारा ही हो जावेगा ! हिमानी को स्पष्ट बतला देना कि विवाह मण्डप के ही नीचे बाप बेटे दोनों उस पार उतार

दिये जावेंगे। मैं, दीर्घबाहु और उसके योधा तथा अपने अनेक सामन्त युद्ध के लिये भी तैयार रहेंगे। दीर्घबाहु को यदि राज्य देने में इन सब ने आना कानी की तो हम तुम सब मिलकर राज्य करेंगे जिसमें हिमानी का हाथ सबसे अधिक रहेगा। दीर्घबाहु उसका जन्मसङ्गी हो जायगा और यदि दीर्घबाहु राजा हो गया तो हिमानी रानी बनी बनाई।'

'मैं हिमानी से अभी बात करता हूँ।'

'तब तक मैं यहीं बैठा हूँ।'

नील उठकर हिमानी के सदन में चला गया। गौरी हिमानी की सेवा में थी। नील ने सदन में पैर रखते ही उत्साह के स्वर में कहा, 'रोमक ने जो रिन मांगा था आचार्य मेघ ने कह दिया है कि दे दो। अब अपना काम बनेगा।' नील ने गौरी को नहीं लखा था।

'जाओ रेवती, अब अङ्ग नहीं दबवाऊँगी,—' हिमानी ने गौरी से कहा जो झुके झुके उसकी मालिश कर रही थी।

'हां अब तुम जाओ दिन भर की थकी होगी,' नील ने आग्रह व्यक्त किया।

गौरी चली गई।

'रोमक को उतना बड़ा रिन देने से अपना क्या काम बनेगा? आचार्य मेघ ने क्या समझकर आपको सम्मति दी है?' हिमानी ने पूछा।

'कुछ लम्बी सी बात है। रेवती को इसीलिये हटा दिया। बतलाता हूँ। रोमक को राज्य न मिलने पावे इस प्रयोजन से रिन देना है।'

'सो कैसे? मेरी समझ में तो नहीं आ रहा है।'

'धीरे धीरे सब समझ में आ जायगा। तुमने अपने लिये एक तिरा—तुर्रा—बनाया था वह लगाती क्यों नहीं?'

'यों ही। इस देश में चलन मुकुट पहनने का है।

तिरा सिर पर रखकर निकली तो अपने ही कई लोगों ने कहा कि इसको मुकुट के रूप में बदल दो इसलिये फिर रख दिया। मुकुट में बदल देने का अवकाश ही नहीं मिला, पर इससे—'

‘कहां है तुम्हारा वह तिरा ?’

‘भीतर एक पेटी में बन्द है—’

‘निकाल लाओ उसे ।’

‘अभी ? क्या करूँगी उसका इस समय ? उलझन में रक्खा हुआ है ।’

‘रेवती को बुलालो । सहायता कर देगी ।’

हिमानी ने पुकारा,— ‘रेवती ! ओ रेवतिया !!’

‘जी आई,’—गौरी ने वहीं से उत्तर दिया ।

जब गौरी आ गई, हिमानी ने कहा, ‘मेरे साथ दीप लेकर भीतर के कमरे में चलो ।’

गौरी ने दीप उठाया और हिमानी के साथ भीतर के कमरे में चली गई । थोड़ी देर में पश्चिम देश के ढंग का मुकुट—तिरा या तुरा—हाथ में लेकर आ गई । तिरा सिर के पीछे की तरफ़ खाली-सा ढलवां और बहुत नीचा था, आगे की तरफ़ बहुत ऊँचा । सोने चाँदी का बना । उसमें मणि मोती गसे हुये थे । तड़क भड़कदार ।

‘इसको अपने सिर पर रखो ।’ नील ने दुलार के साथ कहा ।

हिमानी ने अल्हड़पन के साथ रख लिया । छुटके हुये केशों पर दीप के हिलते हुये प्रकाश में तिरा गौरी की आंखों में चकाचौंध सी लगाने लगा ।

‘दीप को कोने में रखकर जाओ रेवती ।’ नील ने कहा ।

गौरी दीप को दीवट पर रखकर सिर झुकाये चली गई ।

उसके जाते ही नील बोला, ‘तुमको एक दिन रानी बनी देख लूँ तो मेरी आंखें जुड़ा जायँ और फिर मर जाऊँ तो इससे बढ़ कर कुछ नहीं ।’ नील के गले में कम्प आ गया ।

‘मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है ।’

गौरी जब हिमानी के कमरे से निकल कर अपनी कोठरी की ओर गैल से जा रही थी तब नील के कुछ शब्द कान में पड़ गये—‘तुमको रानी बनी देख लूँ’ । कुतूहल बढ़ा और उसके पैर धीमे पड़ गये ।

‘रोमक को राज्य का न मिलना और तुम्हारा रानी बनाना एक ही बात के दो रूप हैं। दोनों रूपों को एक ही होना चाहिये।’ नील ने अपने गले को सँभालकर कहा।

‘ऊँ ? कैसे ?’

ऐसे लक्षण दिखलाई पड़ते हैं कि रोमक को एक दिन गद्दी मिलेगी। उस बुरी घड़ी के आने के पहले ही रोमक का कांटा निकाल बाहर करना होगा।’

गौरी आगे की बात सुनने के लिये ऐसे रुक गई जैसे किसी ने उसके पैर जकड़ दिये हों। नील ने बात बहुत धीमें स्वर में करदी। कुछ पल पीछे उसने नील को अपेक्षाकृत ऊँचे स्वर में कहते सुना—

‘दीर्घबाहु कुछ बुरा नहीं है... फिर भी, आगे जैसी तुम्हारी इच्छा हो बैसा करना, परन्तु उसके मन में विश्वास जमा रहना चाहिये, जैसे ही रोमक को...’

इसके बाद उन दोनों में धीरे धीरे बातें होने लगीं जिन्हें गौरी न सुन सकी। गौरी का मन गिरने लगा। वह अपनी कोठरी में जाकर खिड़की की ओर मुंह करके प्रार्थना करने लगी। जब उस रात बुरे सपने से अपनी एक प्रार्थना द्वारा उसे छुटकारा मिला था और गहरी नीद सो गई थी तबसे उसकी श्रद्धा बहुत बढ़ गई थी। प्रार्थना की ध्यानमग्नता में भी उसके कान में जैसे पत्थर पड़ा—‘और भुवन को भी।’ स्वर नील का था। उसी पर उसने हिमानी के कण्ठ से कुछ ऊँचे स्वर में सुना,— ‘भुवन को उससे भी पहले।’ गौरी उचटकर अपनी कोठरी के बाहर आई। गैल में कुछ डग बढ़कर रुक गई और सावधानी के साथ इधर-उधर ताकती हुई सुनने लगी। नील कह रहा था—

‘रोमक की अन्धी उदारता हम सबको चौपट कर डालने के लिये भी लपलपा उठी है। नौकर मजूर ऐरे गैरे—सब—वेतन बढ़ाने की लहर में हैं। हमने उसे रिन न दिया तो रोमक दूसरों के पास दौड़ेगा। कहीं न कहीं उसको मिल जायगा। न भी मिले तो बहुत से ब्राह्मण

उसका साथ देकर फिर से अभिषेक कर देंगे । हम हर तरह से मरे...तो अपने शत्रुओं को पहले ही क्यों न समाप्त कर दें ?’

हिमानी वेग पर चढ़ गई,—‘सबसे पहले भुवन को, दुष्ट भुवन को !’

गौरी के शरीर की नसें जैसे ठन्ना गई हों ।

‘तो उपाय उसका केवल वही दिखलाई पड़ता है । आचार्य मेघ ने सुझाया है । सहज और सीधा है । तुम मान जाओ हिमानी तो काम को चटपट कर डालें ।’

‘और यदि रोमक या भुवन ने नहीं करदी तो ?...तो हमारा बहुत अपमान होगा ।’

‘ऐसा नहीं हो सकता हिमानी, और यदि हुआ तो दीर्घबाहु और आचार्य मेघ के सामन्त, योद्धा, कर्मकाण्डी ब्राह्मण और हम सबका धन—ये, कहां जायेंगे ? तुरन्त युद्ध शुरू कर दिया जायगा । रोमक का समर्थन करने वाले शाल सामन्त योद्धा, ब्राह्मण और ब्योपारी उतने नहीं हैं जितने अपने वर्ग के । परन्तु बहुत सा रक्तपात और अपने धन का नाश बच जाय तो अच्छा है । बाबुल पर आर्यों के शासन और आतङ्क के मारे हम लोगों को किसी युग में अपना बाबुल देश छोड़कर परिश देश बसाना पड़ा था । अब इस जनपद में हम मिटने के लिये नहीं आये हैं ।’

‘में...में मान गई भुवन और रोमक को जैसे बने मार मिटाना है । आचार्य मेघ से कह दीजिये—’

‘में बहुत प्रसन्न हूं । रोमक के पास कल की सूचना भेजता हूं कि वह यदि भुवन के साथ तुम्हारा ब्याह करने के लिये तैयार हो तो कुछ धन अभी दे दूंगा, फिर बहुत सा ब्याह मण्डप के नीचे...हां ...’

‘जी...’

‘जैसे ही रोमक की स्वीकृति आई...’

‘और भुवन की भी...’



‘हां उसकी भी—एक ही बात है। जैसे ही स्वीकृति आई आचार्य मेघ थोड़े ही समय का मुहूर्त रख देंगे। रोमक को आतुरता पड़ी ही है तुरन्त मान जायगा। बस फिर... फिर जो—कुछ जैसे करना है आचार्य मेघ और हम तै कर लेगे।’

‘तै करिये कि बाप बेटे और उनके हितुओं को...’

‘हां यहीं कहीं। तै हो जायगा। तुम्हें दीर्घबाहु के मन पर अपने इस नाटक की छाप बिठलानी पड़ेगी।’

‘पहले आप उनसे बात करना। फिर . फिर कह सुन लूँगी।’

‘ठीक है, दीर्घबाहु सीधा सच्चा है और अपना पक्का मित्र। इस खेल में अपना हाथ पूरी तरह बँटायगा।’

‘आशा तो है हां विश्वास है।’

‘एक छोटी सी बात और। अपने नौकर नौकरानियों को भलीभांति अपने पन में कसे रहना चाहिये।’

‘कुछ कठिन नहीं। ठीक कर लूँगी। दो इन सब में बहुत अच्छे हैं—रेवती और दास। वेतन बढ़ाने की बात कभी नहीं करते। चाहे जैसा खाकर सन्तुष्ट रहते हैं और जो काम कहूँ चुपके चुपके करते रहते हैं।’

‘शायद इनसे कुछ काम किसी समय लेना पड़े।’

फिर गौरी को कुछ नहीं सुनाई पड़ा।

थोड़ी देर पीछे उसे नील के शब्द सुनाई पड़े,—‘देर हो गई। आचार्य उकता रहे होंगे। मैं उनसे जाकर बात करूँ।’

गौरी तुरन्त अपनी कोठरी में चली गई।

उसका हृदय धुकधुका रहा था। पूर्व की ओर की खिड़की के सामने हाथ जोड़ कर खड़ी हो गई। देह कांप रही थी। ठंडे गालों पर गरम गरम आंसुओं की धारा भर पड़ी। उस रात की प्रार्थना ने उस बुरे सपने को भगा दिया था, अब इस सजीव क्लान्ति को दूर कर दो प्रभो ! उनको बचाओ। उनके बदले में यमराज चाहे मुझे ले लें। क्या

दुर्भाग्य मेरा पीछा करता ही रहेगा ? माता पिता गये तो क्या...? गौरी की प्रार्थना की निष्ठा और श्रद्धा का स्थान उस रात के दृश्य ने ले लिया जब उसके माता पिता बाढ़ में बह गये थे । गौरी और अधिक सहन न कर सकी, बहुत थक गई थी । खाट पकड़ ली और सो गई । उसने तुरन्त वही स्वप्न फिर देखा—उसके माता पिता नदी की बाढ़ पर खड़े हुये, डंडों से एक भयङ्कर विशाल मगर पर प्रहार कर रहे हैं ।’

‘रेवती ! रेवती !! ओ रेवती !!!’ गौरी के कान में शब्द पड़े । आंखें खुल गईं । न वह नदी, न प्रवाह, न वह और कुछ । लेटे लेटे ही उसने निर्बल स्वर में कहा,—

जी ?’

‘कितनी बार बुलाया ! आओ तो इधर—’ हिमानी के स्वर में उतना तोखापन न था ।

‘अबकी बार गौरी ने ऊँचे स्वर में उत्तर दिया,—‘जी आई ।’

जब गौरी हिमानी के सामने पहुंची तो देखा कि वह उस तिरे को अब भी सिर पर रखे है । गौरी नीचा सिर किये हाथ जोड़ कर खड़ी हो गई ।

‘क्षमा कीजियेगा, मैं सो गई थी ।’

‘अरी सो तो कह ही दिया था कि जा सोओ । कोई अपराध नहीं किया तुमने । आओ इधर । उदास क्यों हो ?’

गौरी दो एक पग बढ़ी ।

‘जी...जी वही सपना फिर देखा ।’

‘तो अपने किसी देवता की पूजा कर डाल, या हमारे बालदेव की । बालदेव सबसे बड़े हैं ।’

‘जी ।’

‘अरे भई ऐसे नहीं । मैं तुम्हें चाहती हूं । नौकरों में दास को और नौकरानियों में तुम्हें सबसे अधिक खुलकर बातें किया करो, ऐसी मरी-मरी सी मत रहा करो ।’

‘जी’ — गौरी ने सिर उठाया जैसे बतला रही हो कि मैं बहुत कुछ जीवित हूँ । चेहरा उसका कुम्हलाया हुआ था ।’

‘अरी मैं तुम्हें जल्दी अपने भवन में ऊँचा पद दूँगी । तुम हमारी सखी बनकर रहोगी । अच्छा भोजन, बढ़िया वस्त्र, कभी कभी कुछ पुरस्कार इत्यादि मिला करेगा । मेरे साथ हँसा खेला करो । ऐं ।’

गौरी बर बस मुस्कराई—जैसे घने धूमरे बादलों के भीतर सन्ध्या के समय बिजली की पतली सी रेखा कोंधी हो ।

‘तुम भी क्या हो रेवती खूब हँसा करो—लेकिन हां केवल मेरे सामने ।’

‘जी ।’

‘मेरे सिर पर जो मुकुट है इसे हमारे देश में तिरा कहते हैं । तुम्हें कैसा लग रहा है ?’

गौरी ने तिरे पर धीरे धीरे आंखें घुमाई,—‘जी ऐसा पहले कभी नहीं देखा ।’

‘गाना जानती हो ?’

‘जी यों ही थोड़ा सा ।’

‘मुझे सुनाया करो । नाचना जानती हो ?’

‘जी नहीं । छुटपन में कुछ सीखा था । भूल गई ।’

‘बहुत जल्दी सीख लोगी । मैं स्वयं सिखलाऊँगी । गाने नाचने के बहुत से अवसर आते रहते हैं और आवेंगे ।’

‘जी ।’

‘जी जी के सिवाय और भी तो कहा करो । बहुत कम बोलती हो । मुझसे बातचीत किया करो ।’ हिमानी हँस रही थी, ‘मैं किस योग्य हूँ... स्वभाव ही मेरा कम बोलने का है ।’

‘सो तो बहुत अच्छा है—दूसरों से कम बोला करो मुझसे बहुत । तुम्हें बहुत योग्य बना दूँगी । मेरे कहे पर चली चलो बस ।’

‘जी अवश्य ।’

‘तुम्हें एक बहुमूल्य वस्त्र, पेशगी इनाम, अभी देती हूँ।’- हिमानी अपने सदन के एक कोने में रक्खे हुये सन्दूक की ओर मुड़ी। गौरी ने सिर ऊँचा किया। उसकी आँखों में स्थिरता और दृढ़ता थी।

हिमानी ने सन्दूक में से एक रँगबिरङ्गी रेशमी साड़ी निकालकर गौरी को दी। गौरी ने बिना निरख-परख किये कृतज्ञता के साथ ग्रहण कर ली।

हिमानी ने कहा, ‘और कहीं पहिनो या न पहिनो, मेरे सामने बराबर इस साड़ी को पहिना करो। मुझे प्रसन्न किये रहो, इससे भी बढ़िया दूँगी और, और अभी कुछ नहीं कहती...तुम्हारे अन्य काम कर दिये जावेंगे, मेरे पास अधिक रहा करो। अब जा सोओ। अपने देवता से प्रार्थना करना और हमारे बालदेव का भी जप करना तो जो प्रेत तुम्हें अभी सताते हैं वे ही तुम्हारी सेवा कर उठेंगे।’

गौरी चली गई।

उसके पास सन्दूक तो था ही नहीं, मोटे विस्तर के नीचे सिरहने उस साड़ी को रख लिया। फिर प्रार्थना करने लगी। अबकी बार न तो उसकी देह थरथरा रही थी और न आँखों में आँसू थे। आकाश में छिटपुट बदली थी। चन्द्रमा से दूर डरती हुई सी। खिड़की में होकर किरणें आ रही थीं। गौरी की आँखों में जो कुछ था उसे उन किरणों ने देखा—या गौरी ने देख पाया हो। वह प्रार्थना में चुपचाप कह रही थी—दुर्भाग्य, मुझे ले लेना, पर उन्हें बचा देना उनके पास तक न जाना।

गौरी को विश्वास था कि लेटते ही सो जाऊँगी, परन्तु वह देर तक करवटें बदलती रही।

नील ने मेघ को हिमानी की स्वीकृति जा सुनाई। मेघ को हर्ष हुआ। सफलता की पहली सोढ़ियां दिखलाई पड़ने लगीं। अब केवल दीर्घबाहु के चित्त में बात बिठलाने की समस्या रह गई। उहँ उसका समझ लेना तो बायें हाथ का खेल है। कपिन्जल के द्वारा उसे तुरन्त बुलवाया गया। मेघ ने सब बातें उसके गले उतारकर कहा—‘खेल बहुत

चतुराई के साथ खेलना है। इसमें तुम हिमानी का पूरा साथ देना। बराबर यही समझना कि जो मनुष्य भुवन के ब्याह के लिये तैयार किया जा रहा है वह वास्तव में तुम्हारे लिये है। और, तुम होगे अयोध्या के राजा, हिमानी रानी।’

‘मे कोई भूल नहीं करूँगा, आचार्य, मैं शिकारी खिलाड़ी जो हूँ,— दीर्घबाहु बोला।

‘तुम मान गये, मुझे बहुत अच्छा लगा। इस प्रसंग की कुछ बातें ये कर लेगे। मैं अब जाता हूँ। कल या किसी समय हिमानी से मिल लेना,’ कह कर मेघ चला गया।

‘अच्छा ही हुआ, भाग्य की ही बात कि जो छः सात बरस ठहरे रहे, यदि तुम्हारा विवाह पहले ही हो गया होता तो आज क्या कर पाते?’—नील ने दीर्घबाहु को और भी दृढ़ किया।

दीर्घबाहु ने स्वस्ति की,—‘जो कुछ होता है भले के लिये ही होता है...आचार्य मेघ का शाप व्यर्थ थोड़े ही जावेगा। बड़े मन्त्रविद हैं।’

‘हिमानी का भी बदला चुक जावेगा।’

‘सारे काम एक साथ निबटेंगे। वाह क्या घड़ी आ रही है!’ दीर्घ-बाहु हँस पड़ा।

‘हिमानी बड़ी कठिनाई से मानी है,’—नील ने कहा।

दीर्घबाहु प्रसन्न था।

[ ५६ ]

दूसरे ही दिन नील रोमक के भवन पर सगाई की बात करने के लिये स्वयं गया। रोमक ने उसकी आवभगत की। मेरे प्रति जिसके मन में जो भी आंस गड़ी हो वह दूर हो जावे तो बहुत अच्छा, रोमक की धारणा थी।

नील ने एकान्त पाकर बात की। रुपये देने का प्रश्न और भुवन हिमानी की सगाई के पक्की होने पर घूमने लगा।

‘महाराज, मेरा जो कुछ है सब आपका हो जायगा। बड़ा सुहावना दिन होगा वह ! आपके शत्रु और मित्र सब उस दिन एक होकर घुल-मिल जायेंगे—मित्र ही मित्र दिखलाई पड़ेंगे।’ नील ने कहा।

‘और आचार्य मेघ ?’ रोमक ने शङ्का प्रकट की।

‘आचार्य मेघ वैसे भी उतने कठोर नहीं रहे। कन्या-पक्ष की ओर से विवाह की रीतियों को वे ही निभायेंगे। उस समय जैसे ही आपने उनका चरणस्पर्श किया कि पुराना सब समाप्त। इतने ही के तो भूखे हैं वे।’

‘मैंने उनके पास क्षमा-प्रार्थना का सन्देशा भेजा था तो उन्होंने ठुकरा दिया।’

‘कहते थे मुझसे। परन्तु जो कुछ मैंने कहा है मान गये हैं। आप पुछवा सकते हैं।’

‘नही, नहीं मैं तुम्हारा विश्वास करता हूँ।’ रोमक के मन में विश्वास घर करता जा रहा था कि मेघ अब बिना दांत का सांप हो गया है।

‘तो ब्याह की स्वीकृति देकर मुझे कृतार्थ कीजिये,’ नील ने विनय की।

‘मुझे कोई इनकार नहीं। मैं हामी भरता हूँ...’

नील ने तुरन्त उत्साह के साथ बात काटी,—‘सगाई के उपलक्ष में कुछ रुपया मैं अभी भेजता हूँ—शेष—’

रोमक ने अपनी बात पूरी की,—‘भुवन से मुझे बात करनी पड़ेगी ।’

‘हिमानी में कोई कमी तो है नहीं, महाराज ?’

‘सो तो नहीं है । हमारे यहां स्वयम्बर के साथ कई प्रकार के विवाहों की भी प्रथा है । भुवन से बात करके शीघ्र आपके पास उत्तर भेजूंगा ।’

‘तो जो कुछ भी विलम्ब है वह आपकी ओर से है । चाहता हूँ कि आपका दान-कार्य अविलम्ब फिर अपनी उसी गति से चल पड़े और विवाह के उपरान्त शीघ्र ही जनपद समिति का अधिवेशन हो जावे, और आपका अभिषेक । सगाई पक्की होते ही कुछ सोना-चांदी तुरन्त भेज दूँगा । आप राजकुमार से कब बात करेंगे ?’

‘भुवन कहीं चला गया है । थोड़ी देर में आ जायगा । आज ही बात करके सूचना भेजता हूँ । विश्वास है कि मान जायगा ।’

‘जैसे ही आपका समाचार आया कि बहुत थोड़ी अवधि का मुहूर्त रखवा के मैं आपको सूचना दूँगा । फिर मेरी जन्म भर की कम्माई सुफल और मैं जीने-मरने की चिन्ता से दूर,’ कहकर पुनः पुनः नमस्कार करता हुआ नील चला गया ।

रोमक को भुवन से बात करने का अवसर शीघ्र मिल गया । सुनते ही नाना प्रकार के दृश्य भुवन की आँखों में चक्कर काट गये,—बरसों पहले उसके रथ पर हिमानी का अपने रथ को चढ़ा देना, हिमानी के नटखट और उसके लफङ्गपन और अन्त में—मैंने उसकी पीठ पर चाबुक भाड़े थे ! चीख पड़ी थी, तिलमिला गई थी !! जान-समझ कर नहीं पीटा था, फिर भी शासन का चाबुक अटक आ पड़ने पर फिर उठ सकता है । क्रूर स्वभाव की है । जीवन भर का साथ ! इसके हृदय के किसी कोने में कुछ ही कोमलता हो तो हो । और एक वह ! अरे वह !! कोमलता, स्नेह, सौन्दर्य और निर्मलता की मूर्ति । जिसे जीवनसङ्गिनी

बनाने का शपथपूर्वक वचन दिया था । मेरे दुर्भाग्य ने उसे मुझ से छीन लिया ।

भुवन का माथा जलने लगा । वह उस पर हाथ फेरने लगा ।

‘क्या सोच रहे हो, भुवन ?’

‘जी—’ रीती आंखों भुवन ने देखा, जैसे प्रश्न को सुना ही न हो ।

रोमक ने कहा, ‘मेरे भीतर राज्य पाने की लालसा उतनी नहीं है जितनी निस्सहाय दुखियों की सहायता करने की ।’

‘सो तो बराबर देख रहा हूँ, पिता जी ।’

‘लोगों को देते-देते, देते रहने का स्वभाव ही बन गया है ।’

‘परोपकार से बढ़कर और कुछ है भी नहीं ।’

‘सोने-चांदी की घोर आवश्यकता बहुत आंस रही है । तुम्हारी हां पर हम सब का भविष्य निर्भर है, इस जनपद का भी । मेव और उसके साथी भी अपने हो जायेंगे । हिमानी रूपवती और गुणवती है ।’

भुवन की कल्पना में किसी और के रूप और सौन्दर्य का चित्र खड़ा था ।

‘अब क्या सोच रहे हो ?’

‘कुछ नहीं पिता जी । नैमिषारण्य के जीवन और दृश्यों पर ध्यान चला गया था—’

‘अरे पागल,’—रोमक हँसकर बोला,—

स्तातक होने के उपरान्त नैमिषारण्य दूर चला गया है और अयोध्या नाक के नीचे है ।’

नैमिषारण्य दूर चला गया ! वह नदी की बाढ़ में बहकर दूर धाम को सिंधार गई !! और मैं पत्थर सा यहां खड़ा हूँ !!!

‘जैसा आप उचित समझें पिताजी, वैसे मेरा विचार विवाह करने का नहीं है ।’ भुवन ने अधमरे से स्वर में कहा ।

‘अरे ऐसा नहीं बेटा ! हमारे वंश की बेल आगे कैसे फूले फलेगी ?’

‘आपने नील से क्या कहा है ?’



‘आर्य लोग पणियों की सुन्दर कन्याओं के साथ विवाह कर सकते हैं इसलिये और इस कारण भी कि सोने चांदी की अपने अनिवार्य कार्यों के लिये अत्यन्त आवश्यकता है मैंने अपनी तरफ से हामीं भरदी, किन्तु यह भी कह दिया है कि तुमसे बात करूंगा ।’

बात करूंगा ! सोने चांदी के लिये मेरा ब्याह उसके साथ किया जाना है और ये नील को हां भर चुके हैं !! भुवन को क्षोभ हो आया । रोमक की ओर आंख फेरी । तुरन्त स्मरण हो आया — कितनी विपत्तियां सही हैं इन्होंने । क्षोभ हिल गया ।

धीरे से बोला, ‘यदि उचित समझें तो मुझे सोच विचार करने के लिये तीन चार दिन का समय दे दें । नील के पास ऐसा संवाद भेजने में क्या कोई हानि है ?’

‘नहीं है । यही कहलाये भेजता हूं ।’

[ ५७ ]

नील के पास रोमक ने तुरन्त समाचार भेज दिया—भुवन इन दिनों कुछ अस्वस्थ है। तीन चार दिन में उसका उत्तर पहुँच जायगा, लक्षण आशाप्रद हैं। ये तीन चार दिन क्यों ? नील को शङ्का हुई। उसने हिमानी को समाचार सुना दिया, पर अपनी शङ्का प्रकट नहीं की। हिमानी उस योजना को चलाने के ही नहीं प्रत्युत दौड़ाने के फेर में थी। भुवन अस्वस्थ नहीं है। टाल रहा है। उसे हामी भरनी पड़ेगी। नाहीं कर ही नहीं सकेगा। उसके मनमें मेरी तरफ़ से एक भय लगता होगा—मेरे उस स्वभाव से जो उसने बरसों पहले देखा था। उसके भय को दूर करूँगी। इन तीन चार दिनों के भीतर वह जाँचना चाहता होगा कि अब मेरा स्वभाव उतना ही कड़वा है या नहीं। पैंतरे बदलने वाले शत्रु को अपने दाँवपेच में चित करना विजय को दुगुना मोहक बनाता है। मैं उस पर विजय पाऊँगी। मैंने जहाँ उसकी शङ्का दूर की कि स्वीकृति आई। फिर—मुहूर्त और बस। हिमानी सोच रही थी किससे क्या काम लेना पड़ेगा, परन्तु कब और क्या होगा इसका निर्धार तो हुआ ही नहीं है। हो ही जायगा। तो अब अपने हथियार तो शीघ्र हाथ में करूँ।

चौथे पहर का समय था। उसने गौरी को बुलाया। 'तुमने वह साड़ी क्यों नहीं पहिनी जो मैंने कल रात दी थी ?'

'जी किसी अच्छे अवसर पर पहिन लूँगी।'

'और भी दूगी। अच्छा अवसर भी जल्दी आयगा। क्या कर रही थी ?'

'रसोई घर की तैयारी के लिये जाने को थी।'

'थोड़ी देर बात करलो। कल से किसी और के हाथ में उस काम को दे दूँगी। चूल्हा कोई और फूँकेगी तुम देखभाल भर कर लिया करो।'

'जी बहुत अच्छा।'

गौरी भूमि पर बिछी तरी पर बैठने लगी ।

‘वहां नहीं रेवती । एक चौकी उठा लाओ । उस पर बैठो ।’

गौरी एक चौकी उठा लाई और सङ्कोच के साथ उस पर बैठ गई ।’

‘मैं तुम्हारे सङ्कोच को तोड़ना चाहती हूं । तोड़कर रहूंगी,’—हिमानी ने कहा और हँसी ।

गौरी भी मुस्कराई । उस मुस्कान में भोलापन अधिक था, बनावट कम ।

‘तुमने कभी प्रेम किया ?’ हिमानी ने आंख गड़ाकर पूछा ।

गौरी ने आंखें नीची कर लीं । उठती हुई सांस दबा ली ।

‘जी कैसा ?’

‘यह लो ! प्रेम कैसा ? जानती न हो जैसे ।’

‘मैं क्या जानूँ—आप ही बतलाइये । मैं तो वहां जङ्गल में ढोर चराती थी ।’

‘मैं बतलाती हूँ—तुम भुवन को जानती हो ? राजकुमार भुवन विक्रम को ?’

गौरी को कपकपी आने को हुई—

‘नाम तो सुना है ।’

‘हां तुमने उन्हें देखा न होगा । बड़े अच्छे हैं, बहुत सुन्दर । उनके साथ मेरी सगाई होने वाली है । अब बतलाओ तुमने कभी किसी पुरुष से प्रेम किया है ?’

गौरी नीचा सिर किये खांसने लगी और कुछ क्षण खांसती रही ।

हिमानी ने दया दिखलाई,—‘रसोई घर में काम करते करते तुम्हें खांसी आने लगी है तुमको धुयें से दूर रखूँगी ।’

गौरी की खांसी बन्द हो गई । उसने सिर उठाया । आंखें लाल थीं और माथे पर पसीना ।

‘बतलाओ रेवती,’ हिमानी ने प्रश्न दुहराया ।

गौरी के मुँह से निकला — 'नहीं तो।' और पीठ फेर ली। उसकी तयारी पर करालता आ गई।

'तब तुम क्या जानो—कौन किसकी चिन्ता में रात दिन एक करता रहता है—सोते भी जगता रहता है और जागते भी सोता रहता है। मेरे तो प्राणों पर ही कभी कभी आ बनती है।'

गौरी को फिर खांसी आई। खांसते खांसते वह कमरे से बाहर चली गई। वहां भी खांसती रही। खांसते खांसते या जैसे भी हो उसकी आंखों में आंसू आ गये। बगल से कपिञ्जल आ रहा था। गौरी ने तुरन्त आंसू पोंछ डाले।

'कपिञ्जल ने कहा, 'बहिन तुम्हें खांसी बहुत आ रही है ! कोई दवा लाऊंगा। रसोई घर का प्रबन्ध—'

'हां भैया,' फटे से स्वर में गौरी ने कहा, आगे कुछ और कहने का संकेत में वर्जित कर दिया।

कपिञ्जल उल्टे पैरों गया। गौरी कमरे में लौट गई।

'कौन था ?' हिमानी ने पूछा।

'जी दास...काम के लिये बुलाने आये थे।'

'थोड़ी देर में चली जाना। बैठ जाओ।'

गौरी बैठ गई

'कुछ गाओ न।'

'खांसी बहुत आ रही है।'

'अच्छा, अच्छा काम करवा के जब आओ तब सही।'

कुछ क्षण दोनों चुप रहीं। गौरी कुछ सुनने के लिये उत्सुक थी।

हिमानी ने कहा, 'राजकुमार भुवन से कोई ऐसी वैसी चर्चा आमने-सामने—प्रेम की तो नहीं हुई है, पर शीघ्र होगी। अरी तुमको फिर खांसी आने लगी !'

गौरी ने फिर खांसते खांसते कपड़े में अपना मुँह छिपा लिया था। पर अब खांसी नहीं आ रही थी दम फूलने लगा था।

‘इधर देखो,’ हिमानी ने कहा गौरी ने पीठ फेर ली थी और कमर झुकाली थी जैसे किसी बड़े बोझ को सहकर संभाल रही हो ।

गौरी को उसके सम्मुख होना पड़ा । चेहरे पर भोलेपन और करालता का रङ्ग रच सा गया था । हिमानी को कुछ और भासा—

‘तुमने अवश्य कभी प्रेम किया है । छिपा रही हो, बात दबा रही हो । तुम्हें अपने प्यारे की याद आ गई है । सच बतलाओ, तुम्हें अपने उसी की सौगन्ध है ।’

कितनी निर्मम है यह स्त्री ! गौरी ने सोचा ।

उसने आंख नीची किये कांपते हुये स्वर में कहा,—‘किया था ।... चला गया ।’

‘ओह ! मेरा अनुमान गलत नहीं निकलता । किसी बाढ़ में वह भी बिचारा डूबमरा ! यह दुष्ट पानी जब बरसा तो इतना बरसा !! हिमानी की कल्पना में किसी के मरने जीने के सम्बन्ध में उतना बड़ा चित्र नहीं आया था जितने चित्र उतना पानी बरस पड़ने के कारण रोमक, भुवन और उनके बहुत से स्नेहियों के लोट पड़ने के उतरा गये थे ।

गौरी यकायक उठ खड़ी हुई—‘मैं अब रसोई घर में जाऊँ ?’

‘अच्छा रेबती, रसोई का प्रबन्ध करके जल्दी आजाना फिर बातें करूँगी; तुम्हारे उस घाव की छेड़-छाड़ नहीं करूँगी जो अभी अच्छी तरह पुरा नहीं है । जल्दी भर जायगा तुम्हारा वह घाव । और देखो वह नई साड़ी पहिनकर आना भला ।’

‘थोड़ी देर में मैं आजाऊँगी,’—गौरी चली गई ।

इतनी सी ही बातों और उस साड़ी के देने से रेवती कितनी जल्दी अपने को मेरे निकट सम्पर्क में समझने लगी है ! हिमानी इस निर्धार पर पहुँची ।

[ ५८ ]

रोमक से ममता को सब बातें मालूम हुई। भुवन के लिये इतने सोच बिचार की क्या बात है ? तीन चार दिन की अवधि का अनुरोध गर्वीली हिमानी को उचटा सकता है और उस हठी कंजूस नील के आवेदन को डिगा सकता है। हिमानी रूपसरूप की है। भुवन को तुरन्त निश्चयात्मक उत्तर दे देना चाहिये था। माता का हृदय अपने बेटे के मन के दूसरे कोनों की खोज में नहीं गया।

‘यों ही अनमने से हो। आश्रम की बातें जब चाहे तब करने लगते हो जैसे अब भी गुरुकुल में हो ! जनपद की जितनी सेवा कर रहे हो आगे उससे भी अधिक करने के दिन आ रहे हैं। ब्याह तो किसी दिन तुम्हारा होगा ही। तो—’ ममता समझाते समझाते रुक गई।

भुवन ने कहा, ‘सोचता हूँ माता जी की कैसे निभेगी हिमानी के साथ—’ ममता हँस पड़ी।

‘वाह ! आश्रम से पुरुषार्थ लेकर लौटे हो। वह तो तुम्हारी उँगलियों पर नाचती फिरेगी।’

‘आपको स्मरण होगा माता जी कि मैंने उसे कोड़े लगाये थे।’

‘बात बहुत पुरानी पड़ गई है। अब उस पर फूल बरसाना। जो कुछ किया था उसका यह प्रायश्चित्त हो जायगा। और देखो बेटा, हिमानी के साथ ब्याह कर लेने से कितने काम बन जायेंगे—मेघ के सारे साथी अपने हो जायेंगे। इतनी धन सम्पत्ति मिल जावेगी कि सारे जनपद को निहाल कर दोगे। तुम्हारे पिता का फिर अभिषेक हो जावेगा—’

‘बुरे दामों हाथ लगेगा यह सब।’

‘तो क्या मेरी बात नहीं मानोगे ?’

‘आपकी आज्ञा की अवज्ञा नहीं कर सकता माता जी,’ फिर हाथ जोड़कर बोला, ‘आरुणि आ रहा है। उसने पन्चाल से सम्वाद भेजा है। आज कल मैं आता ही होगा। संभव है धन सम्पत्ति की सहायता उससे मिल जाय। आश्रम में वह मेरा आदर्श हो गया था। जङ्गल में उसके साथ घूमा करता था। धौम्य खेड़े के नाबदान तक स्वच्छ किया करता

था वह । एक दिन जब मैं गांव में भिक्षाटन के लिये गया तब उसकी टेहुनी तक नाबदान का कीचड़ रचा हुआ था । मैंने उससे अर्थार्थना की कि मेरी भी थोड़ी सी सेवा उस काम में ले लो तो उसने हँसकर नाहीं करदी—' भुवन ने उस हँसी के अनुकरण का प्रयास किया । होठों पर थोड़ी सी आई । साथ ही गला कांप गया और आँखों में आँसू छलक आये ।

मां द्रवित हो गई,—'अच्छा बेटा अच्छा । तीन चार दिन में उत्तर दे देना ।'

'जङ्गल और जङ्गल के फूलों को अब भूल जा । जैसे भय, क्रोध, हिंसा और ईर्ष्या तामसी वृत्ति के लक्षण हैं वैसे ही विषाद भी । वहाँ के फूल नहीं अब अयोध्या के उद्यानों के फूलों पर आँख पसार जिन्हें परमात्मा ने बारह वर्ष उपरान्त पानी बरसाकर दिखलाया है ।' ममता चली गई ।

नैमिषारण्य के वे जंगली फूल ! उस दिन वह मुझे दे रही थी और उसकी गाय गर्दन उभका कर हम दोनों की ओर देख रही थी ! भुवन ने मोटी उँगलियों अपने आँसू पोंछ डाले । मैंने उसको कितना कष्ट दिया था ! भोले सौन्दर्य की उस प्रतिमा को !! साक्षात् गौरी को !!! वह चली गई और मैं यहां खड़ा खड़ा रो रहा हूँ । निर्मम ! पत्थर !! नहीं यह कुछ नहीं । गुरु का आदेश था । उन्होंने मुझे पशु से मनुष्य बनाया । माता जी ठीक कहती हैं कि विषाद तामसी वृत्ति का लक्षण है । गुरुदेव ने एक दिन कहा था कि मनुष्य का अपना मानसिक सन्तुलन ही उसके लिये संसार में सबसे अधिक बहुमूल्य और महत्वपूर्ण पदार्थ है । परन्तु अभी तो वह संतुलन मेरी गाँठ में नहीं है । तीन चार दिन में कर लूँगा । तब तक आरुणि भी आ जायगा । महापुरुष है वह । इसी निजी सन्तुलन ने उसे महापुरुष बनाया है । लेकिन क्या कभी उसने प्रेम किया है ? ओफ ! फिर वही !! अपने आपको तीन चार दिन में अवश्य ठीक कर लूँगा आज की दशा में तो हमारी की ठोकर नहीं ओढ़ सकूँगा । देखूँ आरुणि कब तक आता है । वह सचमृच महापुरुष है । परन्तु—भुवन फिर विचलित हो गया ।

[ ५६ ]

हिमानी के सदन में हिमानी थी और दीर्घबाहु । एक कोने में ऊँची चौकी पर दो सिर रखे हुये थे । एक तो वही जिसे गई रात हिमानी ने अपने सिर पर रक्खा था और दूसरा उससे कुछ छोटा, परन्तु वैसा ही जडाऊ और तड़क भड़क वाला । उसी चौकी पर दीवार के सहारे एक बड़ा कांच टिका हुआ था ।

‘मैं आज सवेरे से ही जो जुटी तो दोपहर बीता कि तैयार करवाके रही । सुनारों ने बड़ा परिश्रम किया,—’ हिमानी ने दीर्घबाहु के कन्धे को छूकर कहा ।

‘तिरे बड़े विचित्र हैं—जैसी तुम,—’ दीर्घबाहु बोला ।

‘यह लो ! कैसी विचित्र हूँ बतलाओ । बतलाओ न ।’

‘यहीं बतलाऊँ ? या बगीचे में चलकर ?’

‘अरे नहीं । न यहां न वहां । अभी नहीं । उस दिन तक नहीं ।’

‘जानता हूँ । याद है । ये तिरे किसलिये बनवा डाले हैं ? बहुत मूल्य वाले होंगे ये तो ।’

‘एक तुम्हारे लिये । एक अपने लिये । एक राजा के लिये एक रानी के लिये ।’

‘लगाओ जरा कैसी फबती हो ।’

‘इसी उद्देश्य से तो वहां उन्हें ला रक्खा है ।’

‘रक्खो एक अपने सिर पर और देखो कांच में तुम कैसे जँचते हो ।’

‘मैं नहीं जानता कैसे पहिना जाता है यह । हमारे यहां के मुकुट से भिन्न है ।’

‘अरे वाह ! लो मैं बतलाती हूँ ।’ हिमानी चौकी के पास गई । सहसा उसका हाथ छोटे तिरे पर गया । उसी को उठाकर दीर्घबाहु के हाथ में दे दिया ।

‘लो रक्खो इसे सिर पर ।’



दीर्घबाहु ने बिना भिन्न के लेकर सिर पर रख लिया—रक्खा पीछे का भाग आगे ! आगे के भाग में होकर सिर के बड़े बड़े बालों की खीसें सी निकल पड़ीं । पीछे का भाग बहुत ऊँचा होने के कारण बहुत बेडौल दिखने लगा । हिमानी हँस पड़ी,—‘बहुत दिप रहे हो !’

‘क्यों क्या बात है ? सोना और हीरे मोती कहीं भी रख दो अवश्य दिपेंगे ।’

‘काँच में देखो ।’

‘दूसरे को तुम भी रक्खो । फिर दोनों मिलकर काँच में देखेंगे ।’ हिमानी ने बड़ा तिरा उचित ढङ्ग से रख लिया । दीर्घबाहु प्यासी आँखों सा हिमानी को देखता हुआ काँच की ओर बढ़ा । हिमानी पहले ही उसके सामने पहुँच गई थी और अपने बड़े चढ़े गौरव को देखकर प्रसन्न हो रही थी । उस प्रसन्नता में दीर्घबाहु ने मादक आकर्षण का उल्लास अवगत किया । अपनी आकृति को काँच में न देखकर हिमानी को निरख रहा था । हिमानी उसकी छबि (!) को देखकर फिर हँसी ।

दीर्घबाहु के मुँह से यकायक निकला, ‘वाह मेरी...वाह मेरी ही...’ वाक्य पूरा नहीं हो पाया । गौरी कमरे में आ गई थी । वह हिमानी की दी हुई नई साड़ी पहिने थी ।

एक क्षण खण्ड में ही हिमानी का रंग आया और गया । दीर्घबाहु के चेहरे पर कोई चढ़ाव उतार नहीं आया । वह मुड़कर गौरी की ओर देखने लगा । यह दासी तो बहुत सुन्दर है ! बहुत ही सुन्दर !! किन्तु है तो दासी । दीर्घबाहु के मन में उठा । गौरी भूमि को देखने लगी । उसके पैर लौट पड़ने के लिये उठे । हिमानी ने अपने को तुरन्त संभाला ।

‘बोली, ‘तुम इन्हें नहीं जानती हो रेवती । अर्थात् केवल नाम जानती होगी इनका । ये मेरे छुटपन के साथी हैं और बड़े मित्र ।’

‘जी...में थोड़ी देर में आई जाती हूँ ।’ गौरी कमरे से बाहर जाने को हुई ।

‘ठहर भी रेवती । इधर आ ।’

गौरी को लौटना पड़ा। सिर नीचा किये रही।

हिमानी ने कहा, 'ये तिरे जिन्हें यहां मुकुट कहते हैं कैसे दिख रहे हैं?' हिमानी अपने कलेजे की धड़कन को गले तक नहीं आने देना चाहती थी। दीर्घबाहु गौरी को टकटकी सी लगाये देख रहा था।

'जी, बहुत अच्छे हैं,'—गौरी ने ऊपर न देखकर कहा।

'अरी बाह ! ऊपर देखो फिर बतलाओ।'।

गौरी ने विरक्ति की, रीती, आंखों देखा। दीर्घ की टकटकी को भी देखा। भूमि पर दृष्टि घुमाती हुई बोली, 'जी, बहुत अच्छे हैं।'।

'रसोई का काम निबटा आई?' हिमानी ने पूछा।

गौरी वहां से तुरन्त चली जाना चाहती थी। उत्तर दिया,—  
'थोड़ा सा और रह गया है।'।

'उसे भी निबटा लो। भोजन-ब्यालू के बाद आना।' हिमानी ने कहा। गौरी तुरन्त चली गई।

अब हिमानी का रङ्ग कुछ फीका पड़ा। इधर-उधर देखने लगी। उसको चुपके देखकर दीर्घबाहु बोला, 'यह रेवती अपनी नौकरानी है और तुम्हारे हाथ की। बड़ी अच्छी मालूम होती है।'।

हिमानी ने दीर्घबाहु की टकटकी के एक अंश को अपने मन की उस गड़बड़ में देख लिया था।

'हां आं, सो कोई बात नहीं। एक दिन उसके सामने सब बातें वैसे भी प्रकट होनी हैं। परन्तु तुम से कहती हूँ कि वह वाक्य जिसका आधा तुम्हारे मुंह से फूट पड़ा था आगे न निकले। बड़ी ही सावधानी की आवश्यकता है। बगीचे में चलो वहां बात करूँगी।'।

तिरों को यथास्थान रखकर हिमानी दीर्घबाहु के साथ बाहर चली गई।

[ ६० ]

गौरी अपनी बन्द कोठरी में उस नई साड़ी को उतार कर पुरानी पहिन रही थी। कितने नीच और निर्लज्ज हैं ये दोनों ! और वह दीर्घ-बाहु ? भेड़िये की जैसी आंखें हैं उसकी। मुझे कहां से कहां आना पड़ा ! नौकरी कहीं भी कर लूंगी नहीं, कुछ दिनों के लिये यही स्थान अच्छा है, बहुत अच्छा। कहीं और होती तो वह सब कैसे जान पाती ? वे कैसे बच पायेंगे इन हत्यारों के हाथ से ? ये लोग किस समय क्या करने जा रहे हैं ? हिमानी बातों बातों में कदाचित्त कह जाय। उसके ढँग से मालूम होता है। निकट सम्पर्क में उसी दिन से मुझे लाने की धुन में है जब इन सब ने वह षड्यन्त्र रचा। अम्बिका साथ में होती तो कितनी बड़ी बात होती। क्यों होती—सुखी रहे वह धौम्य खेड़े में या जहाँ ब्याही जावे हे भगवान वह सुखी रहे। उन्होंने तीन चार दिन की अवधि क्यों चाही है ? हामी भरने के लिये ? हामी न भरें तो बहुत ही अच्छा होगा। उनके भीतर न जाने क्या हो गया है। मुझे तो भूल ही गये होंगे। सोचते सोचते गौरी को चक्कर आ गया और वह खाट की पाटी पर बैठ गई। खिड़की की ओर देखा तो सूर्य की किरणें तिरछी लम्बी हो गई थीं। सन्ध्या होने में थोड़ा सा विलम्ब था। उसने फिर अपने देवता से प्रार्थना की मन में एक उत्तेजना उठी। तो मैं क्या यह चाहती हूँ कि उनके भीतर का विकार बढ़ना जावे इसलिये वे नाही कर दें ? नहीं, बिलकुल नहीं। हे भगवान वे हामी भर दें और वह दिन आवे जब मैं पहले मर जाऊँ और फिर—चाहे जो कुछ हो। यह मेरा दुर्भाग्य नहीं होगा, सौभाग्य होगा। तुम्हारी कृपा से दुर्भाग्य मेरे सामने नहीं आयगा—नहीं आने दूँगी। गौरी उठ खड़ी हुई और एक नई स्फूर्ति लेकर रसोई घर में चली गई। वहाँ दो नौकरानियों के साथ कपिञ्जल काम कर रहा था।

नौकरानियों से गौरी ने कहा, 'तुम लोग कोई दूसरा काम देखो। आज मैं ही सब करे देती हूँ।'

थोड़ा सा शिष्टाचार करके दोनों नौकरानियां चली गईं। गौरी काम करने लगी।

कपिञ्जल ने कहा, 'बहिन, तुम्हारे लिये खांसी की औषध ले आया <sup>२५</sup>।'।'

'चूल्हे में अब धुआं नहीं है। औषध नहीं खाऊंगी। वैसे भी मौत से डरना क्या भैया।'।'

कपिञ्जल को आश्चर्य हुआ। गौरी के स्वर और शब्दों में प्रखरता थी। वह बात करना चाहता था।

'ब्याह की बात चल रही है, पर यहां ब्याह की तैयारी कोई नहीं।'।'

'उस षडयन्त्र की तैयारी हो रही है जिसका अपने कानों सुना हाल तुम्हें बतलाया था,'— गौरी ने धीरे से कहा स्वर में अब वह उत्तेजना नहीं थी।'।'

'तुमने उस समय बात करने से संकेत में वर्जित कर दिया था। ऐसा क्या था?'

'वैसे ही रोक दिया था। एक बात पूछूँ?'

'हां बहिन, कहो।'।'

गौरी ने रसोई की सामग्री इधर-उधर करते हुये पूछा, 'उनका... ..राजकुमार का तन-मन कैसा है—अर्थात् अभी यहीं सुना कि मस्तिष्क में कुछ विकार हो गया है, कुछ अस्वस्थ है।'।'

'बहुत समय से नहीं मिला। उनके निवास की ओर से कभी सांझ-सवेरे निकला तो देख नहीं पाया। सुना अवश्य है कि अनमने बने रहते हैं।'।'

क्यों अनमने बने रहते हैं, कब से यह दशा है वह पूछ ही कैसे सकती थी?

'उनके पास यदि इस षडयन्त्र का समाचार पहुंच जाय तो वे सावधान हो जायेंगे।'।'

‘परन्तु मेघ इत्यादि ये सब सचेत हो जायेंगे। यह षडयन्त्र तो गड्ढे में चला जायगा पर सम्भव है कोई दूसरा रचा जावे जिसका पता ही न लगे। ये लोग दूसरा षडयन्त्र न रचकर खुला युद्ध भी छेड़ सकते हैं। फिर बहुत रक्तपात होगा और अपने पक्ष की विजय की पूरी आशा नहीं, क्योंकि इधर पूरी तैयारी हो रही है और उधर केवल दान-पुण्य का सङ्कल्प बढ़ रहा है। अपने पास कोई भरा-पूरा प्रमाण नहीं, क्योंकि तुम्हारी बात का वे लोग विश्वास करें या न करें और तुम यों ही सङ्कट में पड़ जाओ।’

‘नहीं भैया, नहीं। मैं राजा या राजकुमार के सामने कदापि नहीं जाऊँगी। जो कुछ बन पड़ेगा यहीं करूँगी। चार-छः दिन में इन नीच दुष्टों की योजना भी कदाचित् पूरे व्योरे में मालूम हो जाय।’

‘हां बहिन, बहुत सतर्क रहकर सब देखना-सुनना है। समय आने पर और आवश्यकता पड़ने पर मैं और मेरे साथी अपना सिर कटवा देने के लिये तैयार रहेंगे।’

एक जो मेरा भाई हो गया है और मुझे इतना मानता है, क्या यह मारा जायगा ? उस समय न मालूम क्या से क्या हो जाय। मैं अपना प्राण देकर भी उन्हें कैसे बचा पाऊँगी ? तो अभी क्यों न वे सचेत कर दिये जावें ? फिर युद्ध छिड़ जायगा। रक्तपात होगा और युद्ध में न जाने किस का क्या हो। न जाने युद्ध कहां होकर होगा। उनके पहले ही मर जाने का सन्तोष भी मुझे प्राप्त न हो पायगा। गौरी की आँखों में वही दुर्भाग्य फिर आ खड़ा हुआ। उसकी आँखों में आँसू आ गये।

‘बहिन, तुम चूल्हे पर से हट जाओ। आँसू आ गये हैं और अब खांसी आ जावेगी।’

‘नहीं भैया, मैं बड़ी अभागिन हूँ।’ गौरी के होठों तक आ गया कि कह दूँ—मैं भुवन से प्रेम करती हूँ, वह चाहे या न चाहे मैं उसकी रक्षा मैं अपने तन के खण्ड-खण्ड करा दूँगी। मैं उस अवसर पर दूर नहीं रह सकती। हूँगी भी तो दौड़ पड़ूँगी और जलती आग में कूद पड़ूँगी। प्रेम

की बात अम्बिका को ही ठिकाने से नहीं बतला पाई तो भैया कपिन्जल से कैसे कह दूँ । गौरी के होठों को जैसे किसी ने जकड़ दिया हो ।

कुछ क्षण उपरान्त बोली, 'भैया, तुमने जो कहा कि अपना सिर कटवा दूँगा तो बुरा लगा । मां-बाप की याद आ गई । एक भाई मिला सो क्या वह भी चल देगा ?'

कपिन्जल हँसने लगा । प्यार के साथ बोला, 'मेरी बहिन कुछ पगली सी है ।'

भाई के उस प्यार के स्वर और सम्बोधन ने गौरी के आँसुओं को थोड़ी सी हँसी दी जैसे वर्षा में रीना भीना सा इन्द्रधनुष उदित हुआ हो ।

'देखो बहिन, एक बहुत बड़े महापुरुष ने, योगियों के पराग ने, कहा है कि अपने धर्म के निभाने में मर मिटना बहुत श्रेयस्कर है । ये आंसू कैसे ?'

गौरी ने आंसू पोंछ डाले और दृढ़ स्वर में कहा,—'आगे अपनी बहिन को मरियल नहीं पाओगे । पगली तो वह है ही नहीं !'

[ ६१ ]

सन्ध्या की किरणों आकाश के बीच में जड़े हुये से छठवीं सातवीं के चन्द्रमा को सजीव करने के लिये पश्चिम में बटुरती जा रही थीं। नील के उद्यान में जो उसके भवन के पीछे लगा हुआ था तरह तरह के शीतकालीन फूल खिलकर मुद रहे थे—और रात में खिलने वाले खुल रहे थे। ठिठुराने वाला जाड़ा अभी नहीं आया था, परन्तु सन्ध्या की ठण्डी हवा भविष्य का सङ्केत दे उठी थी।

उद्यान के एक कोने से हिमानी के मुर्गे बांग दे रहे थे मानो अपने रात के विश्राम को पुकार पुकार कर बुला रहे हों।

दीर्घबाहु के साथ थोड़ी देर टहलकर हिमानी ने कहा, 'मैं तो थक गई हूँ।'

'इतने में ही !'

'दिन में उस तिर्रे के बनवाने में घोर परिश्रम जो किया था।'

'तो चलो पत्थर की उस चौकी पर बैठ लें दोड़ी देर।' वे दोनों पत्थर की एक चौकी पर जा बैठे जो एक विशाल वृक्ष के नीचे रक्खी थी।

'अब करें कुछ बातें', हिमानी ने प्रसन्नता के साथ कहा।

'इस मुर्गे का क्या नाम रक्खा है जो सबसे ऊँचा बोल रहा है?'

हिमानी हँस पड़ी।

'इस समय मुर्गों की बात नहीं करूँगी। वे सामने नहीं हैं, तुम सामने हो। तुम उस समय क्या कहना चाहते थे जब रेवती यकायक आ गई?'

रेवती आ गई थी और दीर्घबाहु ने उसे कुछ घूर घूर कर देखा था। पहले पहल जब आचार्य मेघ को खाना परोसने की बात कहने आई थी, तब भी कुछ वैसे ही देखा था, मैं उसकी अपेक्षा कहीं अधिक रूपवाली हूँ। वह फटियल है और मैं बहुत ऊँची। मेरी अपेक्षा के कारण दीर्घबाहु कही ऊब तो नहीं उठा है? मैं इस पर विजय प्राप्त

करूँगी। सम्भव है जीवन भी इसी के साथ बिताना पड़े। मूर्ख है। पुरुष अधिकतर होते ही ऐसे हैं। किसी अन्य दुष्ट मूर्ख के साथ से तो ऐसे सीधे सरल मूर्ख की सज्जिनी बनना कहीं अच्छा। यह राजा होगा और मैं रानी। फिर राज्य तो मैं ही करूँगी। रेवती ! रेवती बहुत सीधी है, परन्तु सदा इसको अपने यहां रखना कदाचित् कभी संकट खड़ा करदे। काम हो जाने के उपरान्त अच्छा सा पुरस्कार देकर बिदा कर दूँगी पुरुष की मूर्खता कुछ का कुछ करा सकती है।

दीर्घबाहु बगलें सी भाँककर बोला, 'तुमने रोक दिया था। कहती थी कि वह शब्द मुँह से कभी न निकले।'

'मेने यह तो नहीं कहा था कि कभी मुँह से न निकले।'

'मैं कहना चाहता था—मेरी ही रानी हिमानी।'

हिमानी ने मोहने वाली हँसी के साथ कहा, 'सो अब कह लिया।'

दीर्घबाहु उसकी ओर रिपटा। हिमानी हँसती हुई खड़ी हो गई। दीर्घबाहु भी खड़ा हो गया।

'अभी नहीं, अभी नहीं। पहले अपना काम हो जाने दो। फिर हमें तुम दोनों तो हैं।'

'तुम्हारी थकावट कहाँ गई?'

'तुम्हारे उस शब्द ने सब हर ली।'

दीर्घबाहु को बहुत अच्छा लगा।

'बरसों के बाद आज इतना देखने सुनने को मिला। कितनी प्रतीक्षा की ! ओफ़ !!'

'थोड़ी और। बस थोड़ी सी ही और। देखो उस नाटक को बहुत ही अच्छी तरह खेलना है। भुवन से मैं कितने और कैसे भी श्रृङ्गार के शब्द कहूँ जिन्हें तुम सुनो या न सुनो पर विश्वास रखना कि वे सब वैसे ही हैं जैसे तुम किसी जंगली जानवर को मारने के पहले प्रयोग करते होगे।'



‘मैं कभी भूल नहीं करूँगा । तुम मेरी हो और मैं पूरा समूचा तुम्हारा । एक बार केवल एक बार उस शब्द को कहलूँ ?’

थोड़ी दूर हट कर हिमानी हँसती हुई बोली, ‘कौन सा शब्द मेरे ?’ हिमानी के भाव और प्रश्न में प्रोत्साहन था । ‘मेरी प्राणेश्वरी’—‘दीर्घबाहु’ ने धीरे से कहा ।

‘बस बस बहुत ही गया । अब चलो रात होने आ रही है । योजना की कड़ियों को तुरन्त बना कर काम में लाना है,’—हिमानी ने सावधान किया ।

[ ६२ ]

भोजन ब्यालू के उपरान्त गौरी हिमानी के पास उसी साड़ी को पहिनकर आई जिसे उसने तीसरे पहर उतार कर रख दिया था। नत मस्तक खड़ी हो गई।

‘रेवती तुमसे आज बहुत बातें करनी हैं—अर्थात् थोड़ी होते हुये भी बड़ी बातें करनी हैं,’ हिमानी ने मृदुलता के साथ कहा।

‘जी बहुत अच्छा। आपके अङ्ग दुख रहे होंगे, मलदू?’ गौरी उसकी ओर देखती हुई बोली।

हिमानी ने देखा उसके चेहरे पर वह उदासी नहीं है, कुछ ओज है। क्या कारण हो सकता है? उन्हें मेरी शङ्का निराधार है। दीर्घबाहु बिलकुल नहीं हिलडुल सकता। अरे स्मरण हो आया—मैंने ही तो कहा था इससे कि मरियल सी न रहा करो। इसके हृदय की तली आज थथोलनी है। बहुत काम निकालने हैं इससे।

‘अच्छा अङ्ग दाबती जाओ और बातें सुनती जाओ,’—हिमानी ने कहा।

वह पलंग पर जा लेटी और गौरी उसकी सेवा करने लगी।

‘रेवती, तुम मुझे प्यारी लगने लगी हो?’

‘जी आपकी बड़ी कृपा है मुझ पर।’

‘तुम्हारा ब्याह हो गया था?’

‘जी नहीं।’

‘ओ हो बहुत दुख भेलना पड़ा। तुम चिन्ता मत करो। मेरा सारा काम मेरी इच्छा के अनुसार पूरा हो जाय—बलदेव पूरा करेंगे फिर तुम्हारे लिये बहुत अच्छा वर ढुँढ़वा दूगी। मेरे पिता का बहुत प्रभाव है।’

गौरी ने अपनी निश्वास को दबाया। बोली कुछ नहीं हिमानी ने सुन लिया।

‘विषाद मत करो । तुम ऐसी ही नहीं बनी रहोगी । सोना चांदी भी दूँगी । बस मेरे कहने पर चली चलो ।’

‘जी अक्षर अक्षर पर ।’

‘अपनी गुप्त से गुप्त बातें तुम्हें शीघ्र बतलाऊँगी ।’

गौरी गला साफ़ करके बोली, ‘जी जब इच्छा हो । जो कुछ करने के लिये कहेंगी करूँगी, हो मेरे वश का ।’ उसके स्वर में कम्प नहीं था ।

आतुर हिमानी के मन में विश्वास बैठ गया ।

‘नगर के मार्ग तो तुम्हें मालूम होंगे ?’

गौरी सावधान हुई ।

‘जी बहुत थोड़े । बरसें हो गईं जब नगर छोड़कर बाहर चली गई थी ।’

‘राजकुमार भुवन के भवन का मार्ग तो जानती होगी ?’

‘जी राजभवन का मार्ग ?’

‘अरी नहीं । जब से राजा रोमक गद्दी से उतारे गये तब से वे लोग नगर के एक भवन में रहने लगे हैं । तुम्हें मालूम नहीं है । खोजने से बिना कठिनाई के मिल जायगा । कल उन्हें मेरा एक पत्र जाकर देना है तुम्हें । दूसरे किसी के हाथ नहीं भेजना चाहती ।’

‘मैं अकेली कहाँ फिरेगी ?’ गौरी के गले में कपकपी आ गई ।

‘अरी रेवती डर मत । दास बतला कर लौट आवेगा । अब तो अकेली नहीं भटकना पड़ेगा ?’

‘जी,’—इससे अधिक गौरी और कुछ नहीं कह सकी ।

‘तुम्हें बहुत सी बातें बतलानी हैं, पर आज नहीं । नींद आ रही है । गाना भी फिर कभी सुनूँगी ।’

[ ६३ ]

दूसरे दिन हिमानी ने गौरी को एक छोटी सी रंग बिरंगी रेशमी थैली देकर कहा, 'वह पत्र इसी में है। दास से कह दिया है। वह तुम्हें मार्ग दिखला देगा। थैली राजकुमार को दे देना। तुमने उन्हें पहले देखा ही होगा।'

'जी क्या जानूँ—छुटपन में देखा होगा.....'

'फिर वही मरी मरी सी ! कह दिया कि डरो मत। तुम्हें तो न जाने कितने बड़े बड़े काम करने हैं। क्या साहस की इतनी कच्ची हो ?'

गौरी को फुरफुरी-सी आ गई। जैसे भीतर कुछ भभक पड़ा हो।

'आप मुझे कच्ची नहीं पायेंगी।'

'तो चली जाओ दास को लेकर। उत्तर देंगे। लेती आना।'

गौरी ने अपनी कोठरी में जाकर किवाड़ बन्द कर लिये और चिन्ता में डूबने उतराने लगी—

सामना होने पर क्या होगा ? पहिचान तो लेंगे ही। उन्होंने फिर पीठ फेर ली और न बोले तो ? तो मेरा कितना अपमान न होगा। कैसे सह पाऊँगी ? तत्काल मर जाने को जी चाहेगा। अरी हिश ! वह सब कोई विकार था जो उनमें अब भी सुना है। वहां तत्काल क्यों मलूँगी ? कदापि नहीं। उनकी रक्षा करते करते मलूँगी। फिर चाहे वे भले ही रोबें, मैं तो मृत्यु के साथ हँसती हँसती जाऊँगी। और जो मस्तिष्क में विकार न हुआ और उन्होंने कुछ वैसी बातें करनी चाही तो कह दूँगी, मेरे प्राणों के स्वामी तुम्हारे विरुद्ध यह और वह जाल बिछाया जा रहा है। हिमानी के पास लौटकर नहीं आऊँगी। युद्ध होगा तब उनके सामने ही लड़ती लड़ती मर जाऊँगी। पर ऐसा क्यों सोचू ? मरे मेरा दुर्भाग्य। और यदि वहां साक्षात्कार न करके कपिञ्चल भैया के हाथों पत्र भिजवा दूँ तो ? अरी नहीं। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि सामने प्रकट होने का

अभी समय नहीं आया है । मैं स्वयं जाऊँगी । मेरे भीतर साहस है । परमात्मा उसे बढ़ायेंगे, अवश्य बढ़ायेंगे । इस चिट्ठी में क्या है ? देखूँ ? पराये पत्र को क्यों पढ़ूँ ? यह तो चोरी होगी । वाह ! वाह !! पराया क्यों ? मेरा अधिकार है । पढ़ूँगी ।

थैली का मुँह रेशम की डोर से बँधा हुआ था । गौरी ने थैली खोल कर चिट्ठी पढ़ी । भोज पत्र पर थी । उसमें लिखा था—

‘अत्यन्त प्यारे भुवन, मुझे कब अपनाओगे ? हमीं भरने में क्यों विलम्ब कर रहे हो ? हिमानी देवी ।’

गौरी ने दाँत भींचे—अत्यन्त प्यारे भुवन ! हूँ—हिमानी देवी !! छिः !!! गौरी ने पत्र थैली में रख दिया और उसका मुँह जैसे का तैसा कस दिया ।

[ ६४ ]

गौरी ने पहले अपनी मोटी मैली धोती पहिनकर जाने की बात सोची । नहीं । मैं जिस स्थिति में हूँ उसे क्यों छिपाऊँ ? गौरी ने हिमानी के उतारन की साड़ी पहिनी और कपिञ्जल के साथ चल दी । आगे वह था । नगर के मार्ग उसके देखे हुये थे । बाजार भरा हुआ था । मुझे लोग देख रहे होंगे । कौन है ? कहां की है ? किसके पास जा रही है ? उतारन के कपड़े पहिने जा रही है ! उसे शायद ही कोई लख रहा हो । सब अपने अपने काम में उलझे थे । गौरी आँख नीची किये हुये कई मार्गों को पार करके एक ऐसी मोड़ पर पहुँची जहां कपिञ्जल रुक गया ।

‘वह रहा राजकुमार और उनके पिता का स्थान जहां तीन चार लोग उसारे के नीचे चबूतरे पर बैठे हैं । मैं लौट पड़ूंगा । तुम चिट्ठी देकर आ जाना,’—कपिञ्जल ने एक दुखण्डे भवन की दिशा में सङ्केत करके कहा ।

‘मैं अकेली...’ गौरी का साहस खिसकने को हुआ ।

‘अकेली नहीं हो बहिन, भगवान तुम्हारे साथ हैं । दिन की बात है, लौटने पर मार्ग नहीं भूलोगी ।’

‘अच्छा भैया—’ गौरी ने हृदय की धड़कन को सँभाला । कपिञ्जल उधर चला गया, गौरी उस भवन की ओर बढ़ी—या उसके पैर बढ़े ।

उसारे के पास पहुँचकर सड़क पर खड़े खड़े उसने घीरे से पूछा, ‘राजकुमार कहाँ हैं ?’

‘भीतर हैं । उनसे क्या मांगने आई हो ? हलका फुलका-सा दान तो मिल जायगा पर बड़े दान अठवारे पखवारे में ही खुलने की आशा करो,’ एक ने उत्तर दिया ।

वे सब रोमक के पहरेदार थे ।

गौरी ने आँखें नीची किये दबे स्वर में कहा, ‘एक चिट्ठी लाई हूँ ।’

‘एक ही बात है । मुँह से न माँगा लिखवा कर माँगा ।’

‘कुछ भी मांगने नहीं आई हूँ । नीलपणि की पुत्री हिमानी की चिट्ठी राजकुमार के लिये लाई हूँ ।’ गौरी का साहस उठ खड़ा हुआ ।

‘अच्छा ! अच्छा !!’ उन सबों के मुँह से निकला । ‘लाओ चिट्ठी । राजकुमार को स्वयं दोगी या मैं दे आऊँ ?’

‘आप दे दो’,—गौरी के मुँह से निकला और अपने वस्त्रों से वह रेशमी थैली निकाल कर प्रहरी के हाथ में दे दी ।

‘तुम कौन हो ? यदि राजकुमार ने पूछा तो क्या कहूँ ?’ उसने प्रश्न किया ।

गौरी ने धीरे से उत्तर दिया, ‘हिमानी जी की नौकरानी ।’ गौरी का हृदय फिर धुकधुकाया । सड़क की ओर से इधर उधर देखने लगी, पर दिखलाई उसे कदाचित् कुछ नहीं पड़ रहा था । यह क्या ! मैं अपने को सम्भालूँगी, अब जो कुछ भी हो ।

प्रहरी भीतर चला गया ।

प्रहरी ने थैली भुवन के हाथ में दे दी,—‘हिमानी देवी की चिट्ठी है ।’

‘कौन लाया है ?’

‘उनकी एक दासी ।’

‘बही ममता भी थी ।

ममता ने प्रहरी से कहा, ‘उससे कह दो उत्तर थोड़ी देर में मिल जायगा ।’

प्रहरी चला गया ।

‘पढ़ो क्या है उसमें,’ ममता बोली ।

भुवन ने पत्र पढ़कर थैली में रख दिया ।

‘क्या कहती है हिमानी ?’

‘और क्या कहेगी, माता जी वह निर्लज्ज जो है ।’

‘तो अब तुम्हारे सामने कौनसी कठिनाई है ? हिमानी भी एक वर्ग विशेष की नारी ही है । निर्लज्जता को इसमें क्या बात हुई ? तुम तीन

चार दिन की अवधि चाहते थे सो दो दिन और रह गये है। जो कुछ आज समझ है वही दो दिन उपरान्त भी रहेगा।'

'मे हामी नहीं भरूँगा माता जी। गले में पत्थर को नहीं बांधूँगा। राज्य हम लड़ कर लेंगे।'

'उस नारी का यह अपमान ! धन सम्पत्ति निरीहों की सहायता से उनके रक्त की नदी बहाकर !!'

भुवन सन्न रह गया। क्या यह वही माता है जो सदा पुचकार-पुचकार कर बोला करती थी ?

ममता दूसरे कमरे में चली गई। भुवन के कानों में साय साय हो रही थी। नथनों से सांसें तीव्र गति से आ जा रही थीं। क्या मैंने अपनी माँ के साथ अशिष्ट व्यवहार किया है ? ऐसा तो मैंने कुछ नहीं कहा। फिर वे इतनी क्षुब्ध होकर क्यों चली गईं ? मैं उनके पैरों में गिरूँगा और मना लूँगा। इतने में वहाँ भीतर से रोमक आ गया। उसने भुवन की पीठ पर हाथ फेरा—

'बेटा, हम क्षत्रिय हैं। लड़ाई में मरने से हमें स्वर्ग मिलता है। परन्तु इस समय यह युद्ध तो उचित नहीं होगा। जैसे जैसे अकालों से पीछा छूटा तो युद्ध की आग से जनता भुलस जायगी।'

भुवन चुप रहा।

रोमक ने आग्रह के स्वर में कहा,—'उस दिन एक बात मैंने तुम्हारी मानी थी, क्योंकि उचित थी—मैंने अपना खज्ज फेंक दिया था और पुण्य कमाया था। आज मेरी एक तुम मानो और दूसरा बड़ा पुण्य कमाओ। राज की लालच भुके नहीं है। जनपद का कल्याण मन में सब से ऊपर है।'

भुवन के ध्यान में रोमक के उस थके हुये चेहरे का चित्र घूम गया जो उसने आश्रम में छः वर्ष पीछे पहले पहल देखा था।

'मैं हाँ करता हूँ पिता जी,'—भुवन के कण्ठ से कांपते हुये शब्द निकले।



ममता दूसरे कमरे के किवाड़ों के पीछे से आ गई। आकृति गम्भीर थी।

‘तुम्हारा भुवन कितना अच्छा है ! मान गया। नील को मैं स्वयं संदेश भेजता हूँ।’

माता की मुस्कान विकसित हुई और गम्भीरता चली गई।

‘उत्तर भुवन ही भेज देगा या आप ही कह देना — कोई बात नहीं।

भुवन को ‘नारी के अपमान’ वाली बात का स्मरण हो आया।

बोला, ‘मैं उत्तर लिखे भेजता हूँ।’

ममता ने कहा,—‘ठीक है। उस दूसरे कक्ष में लिखने की सामग्री रक्खी होगी। लिख दो।’

भुवन दूसरे कमरे में गया। लेखनी और स्याही मिल गई तो भोजपत्र नहीं मिला। प्रहरी को बुलवाया।

‘हिमानी देवी की दासी बाहर है या चली गई?’

‘जी बैठी है।’

‘कह दो कि थोड़ी देर में उत्तर देता हूँ।’

प्रहरी ने गौरी से कह दिया। वह चबूतरे के एक छोर पर पीठ फेरे गठड़ी बनी सी बैठी थी। तीसरे पहर की घूप थी, परन्तु उसका तीखा-पन ठण्डी हवा के कारण हलका पड़ गया था। तो भी मुँह पर पसीना आ आ जाता था जिसे वह अञ्चल से पोंछ पोंछ डालती थी। जी चाहता था कि यहां से उठकर कही जा छिपूँ।

जब उत्तर बड़ी देर तक नहीं आया तब गौरी उठ खड़ी हुई। पहरेदार से कहा, ‘उनका उत्तर वही भिजवा देना।’ और सोचा कि मेरा वास्तविक कार्य यहां नहीं वहां है, वही।

पहरेदार ने भुवन को गौरी की बात भुगता दी।

‘ठहरो, मैं स्वयं उससे जाकर कहे देता हूँ क्योंकि लिखने की सामग्री नहीं मिल रही है।’ भोजपत्र सुरक्षित रक्खे जाते थे और थे भी वहीं कहीं, परन्तु भुवन की आँखें कहीं थी और ध्यान कहीं।

भुवन बाहर आया। उस क्षण गौरी मार्ग के उस मोड़ पर पहुंच गई थी जहां से कपिञ्जल लौट गया था। गौरी की चाल और ठवन

को देखकर भुवन के मन में तुरन्त प्रश्न उठा—यह कौन है ? उँचाई उतनी ही, गति भी वैसी ही । देखूँ । भुवन चबूतरे से उतर कर उसकी ओर बढ़ने को ही था कि यकायक रुक गया—आश्रम का संयम, राजकुमार का पद, भीतर की लालसा और गौरी का चित्र एक दूसरे से जा टकराये । यह वह नहीं है । हो ही नहीं सकती । गौरी तो चली गई ! साँस भर के भुवन भीतर चला गया ।

रोमक ने भुवन की स्वीकृति का सम्वाद नील के पास भेज दिया और कहला भेजा कि विवाह का मुहूर्त थोड़ी सी ही अवधि का चाहते हैं । भुवन के मन में फिर कोई हेरफेर न हो जाय ! धन-सम्पत्ति शीघ्र हाथ लग जाय जिससे आगे का काम बने । मेघ वहाँ था । तुरन्त सातवें दिन का मुहूर्त रक्खा गया—दो पहर रात गये नील के भवन में मण्डप के नीचे पाणिग्रहण और परिक्रमा । रोमक के पास मुहूर्त की सूचना भेज दी गई ।

हिमानी के मन में शङ्का उठी—भुवन ने स्वयं उत्तर क्यों नहीं दिया ? लिख सकता था, कहलवा सकता था । रेवती इतनी देर वहाँ बैठी रही, फिर भी उसे वैसे ही लौट आना पड़ा ! क्या बात है ? भुवन का पूर्ण निश्शस्त्रीकरण अत्यन्त आवश्यक है । कल ही कर के रहूंगी ।

रोमक ने पुरोहित सोम से बात करके मुहूर्त स्वीकार कर लिया । शीघ्र विवाह हो जायगा और अविलम्ब बहुत सी धन-सम्पत्ति मिल जावेगी, जनपद का काम प्रचुरता और कुशलता के साथ चलेगा—फिर राज्याभिषेक और थोड़े से ही वर्षों के उपरान्त वानप्रस्थ ! सोम को भी अच्छा लगा । टंटा टूटा, किसी तरह भी टूटा ।

नील ने सगाई पक्की करने के उपलक्ष में थोड़ा सा सोना-चांदी, मोती और वस्त्र रोमक के यहाँ भेज दिये । बहुत नहीं आये तो कोई बात नहीं—भविष्य तो उन्हीं-उन्हीं से भरा हुआ है !

कब क्या करना है इसके ब्योरे को नील और दीर्घबाहु के साथ तै करके मेघ अपने अन्य अनुयायियों को साधने-सँभालने के लिये गांव चला गया ।

[ ६५ ]

पञ्चाल से उसी दिन आरुणि आ गया । भुवन को लगा जैसे आश्रम का बल और उल्लास उसकी एकान्तता को भगा देने के लिये आ पहुँचा हो । कहीं वेद और कल्पक भी यहां होते । उनको शीघ्र बुलवाऊँगा ।

आश्रम की और आश्रम से बाहर की, अयोध्या की और पञ्चाल की, अर्थ की बातें और व्यर्थ की उल-जलूल भी, उन दोनों में होती रहें । आरुणि को होने वाले सम्बन्ध का ब्योरा सुनने को मिला—गौरी की चर्चा हो ही कैसे सकती थी ? आरुणि प्रसन्न था । मितभाषी आरुणि को अधिक बोलने के लिये नई भाषा मिली ।

‘अच्छा हुआ तुम ने हमीं भर दी रक्तपात बचा, कठिनाइयाँ सहज हुईं, वैरी मित्र हो जायँगे, जनपद का काम अच्छा चलेगा’, आरुणि ने कहा ।

‘हमीं भरनी पड़ी अपने हाथ में काफ़ी सामन्त, सैनिक हथियार और जनता है धन सम्पत्ति की अवश्य कमी है । कर्तव्य का पालन करना पड़ा ।’

भुवन के स्वर में उदासी आ गई थी ।

‘तो अब उदास क्यों हो ? ब्याह करने जा रहे हो या श्मशान में ?’—प्रश्न आरुणि के योग्य ही था । भुवन के होठों पर फीकी मुस्कान आई ।

‘यह हिमानी बड़े कठोर स्वभाव की स्त्री है ।’

‘और तुम तो बिलकुल भेड़ बकरी ही हो !’

भुवन ज़रा सा हँसा । आरुणि से बात करते भुवन उस दिन जितना हँसा उतना महीनों से नहीं हँसा था ।

‘भैया आरुणि, कहीं तुम जैसा पत्थर में होता ...और तुम जैसा कर्मशील ज्ञानी भी ।’

‘बस उतना ही कहो—मैं पत्थर ही ठीक हूँ। तुम व्यर्थ ही पत्थर बन जाना चाहते हो। होते भी तो ब्याह के बाद तुम पानी हो जाते और वह कठोर स्वभाव वाली स्त्री मोम। मैंने एक पुस्तक में पढ़ा है।’

भुवन ने लम्बी सांस भरी निकाली—

‘आरुणि, मैं दो एक दिन में ही पत्थर होने वाला हूँ। पत्थर का ब्याह आँधी के साथ होना है।’

×

×

×

×

दूसरे दिन लगभग एक पहर दिन चढ़े हिमानी ने गोरी को बुलाया।

‘देखो रेवती तुम्हें आगे रसोई घर का काम नहीं करना है। मैंने दूसरों को सोंप दिया है। दास भी उस काम पर नहीं रहेगा। बस अब तुम्हारा काम मैं हूँ। यह अलङ्कार, वह आभूषण, यह वस्त्र वह सामग्री—तुम्हें ये उठानी धरनी और सँभालनी हैं। काम करने के बाद तालों की कुन्जियां मुझे सँभला दिया करो और फिर चैन की बंसी बजाओ। मेरे साथ बातें होती रहेंगीं। बातों से थकी तो गाने लगीं। गाने से थकीं तो नाचने लगीं। घबराओ मत मैं तुम्हें गिखलाऊँगी।’

‘बहुत अच्छा। दास के लिये काम?’

‘बगीचे का काम। मेरे पास से जैसे ही तुम्हें अवकाश मिला करे बगीचे से फूल इकट्ठे कर लाया करो। दास इसमें तुम्हारी सहायता करेगा। हार, माला गूथना जानती हो?’

‘जी हाँ—कुछ कुछ।’

‘अरी उसमें है क्या। दास जानता होगा, न भी जानता हो तो जल्दी सीख लेगा घड़ी भर में आ जायगा माला का गूथना।’

‘बना लूँगी।’

‘दास को लेकर बगीचे में चली जाओ और बड़े बड़े से फूल तोड़कर दो बढ़िया मालायें गूथ लाओ। एक मेरे लिये होगी, एक राजकुमार के लिये।’

गौरी का चेहरा यकायक फक हो गया ।

‘अरी यह क्या ? तुम तो राजकुमार भुवन के नाम से इतनी डरती हो जैसे वह तुम्हें काटने दौड़े हों ।’

गौरी ने अपने को तुरन्त सँभाला,—‘वे तो मुझे मिले ही नहीं थे, आते ही आपको बतला दिया था ।’

‘तुम बिलकुल मत डरो, किसी से भी मत डरो । निडरपने के बहुत से काम करने को आगे आने वाले है । मैं सब बतलाऊँगी । जानती हो मालायें काहे के लिये बनवा रही हूँ ? नहीं जानती । स्वयम्बर की प्रथा है ही । मैं राजकुमार के गले में जयमाल डालने आज ही उनके भवम पर जाऊँगी । वर के घर जाना हमारे यहां अच्छा समझा जाता है, और तुम्हारे यहां भी कुछ लोग इस रीति को बर्तते होंगे । मैंने उनके पास संवाद भेज दिया है । अब चली तो जाओ और दास की सहायता लेकर बना तो लाओ बड़िया रंग-बिरंगे पुष्पहार अविलम्ब ।’

गौरी ‘बहुत अच्छा’ कहकर हिमानी के कमरे से ऐसे गई जैसे गरम अंबे के भीतर से बाहर निकल पाई हो ।

×

×

×

×

गौरी और कपिञ्जल ने अनेक प्रकार के फूल तोड़कर उद्यान के एक वृक्ष की छाया में इकट्ठे कर लिये ।

वे दोनों माला गूँथ रहे थे और सतर्क भी थे ।

‘ये लोग सातवें दिन अपने ही घर में विवाह मण्डप के नीचे वह घोर राक्षसी कर्म करना चाहते हैं !’ कपिञ्जल ने धीरे से कहा ।

‘तो क्या वे लोग सफल हो जायेंगे ?’

‘नहीं हो पायेंगे, मुझे आशा है ।’

‘मैं तो रहूँगी ही वहां ।’

‘किसी न किसी बहाने मैं भी मंडप के नीचे बने रहने का उपाय करूँगा ।’

‘फिर भैया तुम्हारे सहयोगियों के साथ बाहर कौन रहेगा उस घड़ी ? भवन के भीतर मण्डप के आसपास वे बहुत से होंगे और हम तुम थोड़े से ही, पर—पर इससे क्या । जब तक देह में प्राण रहेंगे उन पर अर्थात् राजकुमार पर—आंच नहीं आने दूगी ।’ गौरी की उस असाधारण उत्तेजना पर कपिश्रुल को कुछ विस्मय हुआ ।

गूँथते गूँथते गौरी के हाथों, एक अनायास भटके से माला टूटकर गिर गई ।

‘अरे भैया, यह तो बिखर गई !’

‘कोई बात नहीं फिर बन जायगी ।’ माला फिर से गूँथी जाने लगी ।

‘यह किसी प्रकार मालूम हो जाय कि ये लोग उस दिन क्या क्या करने वाले हैं तो हम सबका काम सहज हो जाय ।’

‘भगवान कृपा करेंगे । मैं अपने आँख कान बहुत सजग और सावधान रखूंगी ।’

×

×

×

×

‘तुमने बहुत देर लगादी रेवती !’ हिमानी ने कहा । उसकी नाक का नथना जरा सा ऊपर को सिकुड़ा फिर तुरन्त अपने स्थान पर आ गया ।

‘जी फूल बीनने और गूँथने में कुछ समय निकल ही गया—’ गौरी नत-मस्तक हो गई, परन्तु उसके गले में कातरता नहीं थी ।

‘कोई बात नहीं, कोई बात नहीं मेरी रेवती । बनाई अच्छी है ।’ हिमानी हार लेकर उस ऊँची चौकी के पास गई जिस पर कांच रक्खा हुआ था । एक माला उसने अपने हाथ को पहिना दी और दूसरी गले में डाल ली । कांच में अपना प्रतिबिम्ब देखकर मुस्कराई—‘मैं कितनी रूपवती हूँ ! हिमानी ने नहीं देखा कि गौरी की आँखों में एक क्षण के लिये कितनी ग्लानि छा गई थी जिसे कदाचित ही कोई कांच सह पाता ।

हिमानी ने मालायें उतार कर सावधानी के साथ चौकी पर रख दीं ।

‘तुम्हें हमारे साथ चलना है रेवती ।’

‘कहां ?’ गौरी जैसे तिलमिला गई हो ।

‘अरी वहीं रेवती वहीं—राजकुमार भुवनविक्रम के भवन पर ! वह देखो, पीली सी पड़ गई ! धत्तेरी की !! इस देश की स्त्रियों के बिकट कामों की मैंने बड़ी बड़ी कहानियाँ सुनी हैं, पर न जाने तुम्हें छोटी छोटी सी बात पर क्या हो जाता है । भुवन कोई भेड़िया या तेदुआ या रीछ नहीं है । कह दिया कि न जाने कितने ऊँचे कामों में तुम्हें मेरा साथ देना है—’

‘जी कभी कभी कुछ ऐसे ही हो जाता है । अब नहीं होगा ।’ गौरी ने दृढ़ स्वर में आश्वासन देने का प्रयास किया, परन्तु स्वर में दृढ़ता की कमी थी ।

हिमानी ने अपनी पेटी में से एक बहुत बढ़िया रंग बिरंगी साड़ी निकाली, टटोली और उलट पलट कर देखी । उसे पेटी में फिर से रख देना चाहती थी कि गौरी पर आंख जाकर अटक गई । गौरी की लम्बी काली बरौनियां उसकी दृष्टि को अघमुंदी किये थीं—जैसे कोई छोटी सी हिरनी सोने के प्रयास में हो । हिमानी के मन में उठा—मेरी बादामी आंखों को नहीं पा सकते इसके बड़े बड़े गटे जो छिपे रहना चाहते हैं ।

‘रेवती यह साड़ी पहिनकर चलो मेरे साथ तो कैसा रहे ?’

‘यह साड़ी !’ गौरी के बड़े बेत्रों की उन बरौनियों ने भोंह को विस्मय के आवेश के छू लिया,—

‘यह साड़ी ! दैयारे !! यह तो आपके पहिनने योग्य है । क्या करूँगी पहिनकर ! मैं नहीं पहन सकती ।’

हिमानी हँस पड़ी । छोटे वर्ग की गवारिन है न—दैयारे ! अच्छा लगा इसके मुँह से ।

हिमानी ने तुरन्त वह साड़ी जहां की तहां रखदी । उसे वह देना ही नहीं चाहती थी । क्षणिक आवेश ने या गौरी को बड़प्पन देने की भावना ने ही हिमानी से उतना कहलवाया था ।

‘अच्छा तो यह ले लो’,—हिमानी ने दूसरी साड़ी निकाल कर गौरी को दी। यह भी रेशमी थी, परन्तु उस पर हलके रंग के छोटे-छोटे छपके थे और थी भी कम बढ़िया।

‘पहिनकर आ जाओ।’

गौरी चली गई। हिमानी साज सिंगार करने में व्यस्त हो गई। उसकी सजधज अभी पूरी नहीं हो पाई थी कि गौरी उस साड़ी को पहिनकर आ गई। गौरी के मन में आया कि कांच में देखूँ मैं कैसी लगती हूँ इस साड़ी में। फिर—उहँ, रहने दो क्या करना है। तो भी वह एक क्षण के लिये कांच के सामने पहुँच गई। मेरे गले में कोई गहना नहीं। ऐसी जान पड़ती हूँ जैसे जङ्गल की कोई छोटी सी भाड़ी हूँ और हिमानी जैसे कोई रंगबिरंगा भाड़ ! जब आँधी चलेगी तब यह भाड़—?

‘रेवती आओ तो इस मुक्ता हार का बँध पीछे से बांध दो।

गौरी तुरन्त कांच के सामने से हटकर उसका श्रृङ्गार कराने लगी।



[ ६६ ]

जब भरप पड़े रथ में गौरी हिमानी के साथ बैठी भुवन के भवन की ओर जा रही थी तब उसके मन में उमङ्ग कम थी कातरता अधिक। नैमिषारण्य में वहां जब फल फूल देने जाती थी तो कितनी बाट जोह जोह कर कितनी आंखें बचा बचाकर, कितनी गायों को भटकने से रोक-रोक कर उस ठौर पर पहुँच पाती थी। और हाथ के बुने मेरे उन मोटे कपड़ों पर जिन पर बछड़ों के गोबर में वन की घूल सनकर भट्टे छपके ठोक देती थी वे अपनी कितनी मुस्कानें बरसा देते थे ! आज इस साड़ी के ये बुंदके ! देखकर क्या सोचेंगे ? पहिचान नहीं सकेंगे। उनका मन कुछ का कुछ हो गया। वही वृत्ति निषारण्य में मेरा तिरस्कार करवा उठी थी। तो मैंने भी मुँह फेर फेर लिया फिर मैं उस दिन क्यों झपट दौड़ी जब वे उस टेकड़ी पर पत्ते चबा चबाकर खा रहे थे ? और वे मुझे देखते ही भाग गये ! जैसे मैं कोई डायन थी ! वैसी विकृति न होती तो कभी नहीं भागते। क्षत्रिय अपना दिया वचन कभी नहीं भूल सकता। मैं ही दुष्ट हूँ। मुझे उस प्रकार का बर्ताव नहीं करना चाहिये था। जब उस दिन मैं पानी के घड़े लिये धौम्य खेड़े में उनकी ओर चली आ रही थी बहुत चाहा कि आँखों ही आँखों उनसे पूछूँ कि क्या बात है तो उन्होंने सिर तक नहीं उठाया। उसमें तो मेरा कोई अपराध था नहीं।

‘इस चौरहे के जितने दूकानदार हैं वे सब अपने रिनिये हैं,’—हिमानी ने भरप के छेदों की ओर मुँह किये हुये कहा।

‘जी।’

वह सब उसी विकार के कारण रहा होगा। और कुछ हो ही नहीं सकता था। आज फिर इतने दिनों पीछे देखूँगी। वे कदाचित न पहिचानें। पहिचान भी लेंगे तो फिर तिरस्कार—नहीं उपेक्षा—या क्या ? करें तो करलें, मुझे क्या। मेरे लिये तो वे ही हैं और रहेंगे अर्थात् जब

तक मैं मरी नहीं हूँ। आज से कितने दिन रह गये हैं ? गौरी उँगलियों के सिरों पर अँगूठे को सहसा फेरने लगी। हिमानी ने देख लिया।

‘क्या गिन रही है रेवती ?’ हँसकर हिमानी ने पूछा। गौरी चौंक पड़ी,—‘जी—जी—ब्याह के कितने दिन—’ ‘अच्छा ! ठीक है, ठीक है। गिनले जिसमें भूले नहीं। कहती थी थोड़ी सी पढ़ी लिखी हूँ ! याद रखना आज से छठवें दिन की रात के दूसरे पहर।’

गौरी ने भटपट उँगलियों पर से अँगूठा हटा लिया था।

रथ रोमक के भवन के सामने जा खड़ा हुआ। रोमक और ममता ने हिमानी का सत्कार किया हिमानी की बनावटी लाज और संवारी हुई बन ठन ने उन दोनों को मुग्ध कर दिया। गौरी हिमानी के पीछे थी। उसकी सहज स्वाभाविक लाज कुछ और बोझिल हो गई। यह कौन है ? ममता के मन में उठा—न कोई बड़ी वेशभूषा, फिर भी बहुत सुन्दर ! नौकरानी है। रोमक और ममता हिमानी को एक कक्ष के द्वार तक पहुँचा कर दूसरे में चले गये।

जिस कक्ष में हिमानी और गौरी ने प्रवेश किया उसमें आरुणि और भुवन थे। सजी हुई चौकियां बिछी थीं। आरुणि ने हिमानी को थोड़ा सा लखा और मन में निर्धार किया—इस स्त्री में कठोरता प्रचण्डता का कोई लक्षण नहीं पाया जाता, भुवन तो यों ही है। गौरी के चेहरे को उसने नहीं परखा। हिमानी की कोई सेविका है उसे भासा। भुवन ने हिमानी को एक क्षण में ही ऊपर से नीचे तक निरखा जैसे वह कोई कुतूहल हो। गौरी हिमानी के पीछे खड़ी थी। भुवन ने उसको केवल छाया की तरह देखा। गौरी ने आरुणि को पहिचान लिया। धन्य परमात्मा ! ये आ गये !! गौरी अपनी धुकधुकी के साधने में लग गई—ओट से, कनखियों भुवन को देखा। नारङ्गी रंग का कोपीन आश्रम में रह गया, कमण्डल और भोला भी वहीं। सुन्दर कन्चुक, धोती और उष्णीश में हैं। न कि दृष्टि नीची है और न सिर। बड़ी बड़ी आंखों

हिमानी को देख रहे हैं ! क्या भीतर छिपे हुये इसके दैत्य को देख पा रहे होंगे ? गौरी विचलित हुई ।

आरुणि और भुवन ने हिमानी को सम्मान के साथ चौकी पर बिठलाया और वे भी थोड़ी दूर चौकियों पर बैठ गये । हिमानी की चौकी कक्ष की दीवार के निकट थी । गौरी उसके पीछे दीवार से सटी हुई सी मुँह फेर कर खड़ी हो गई ।

भुवन के भीतर एक ज्वार-भाटा सा उठ खड़ा हुआ—इसने मेरे रथ पर अपना रथ चढा दिया था ! वाण-विद्या अच्छी जानती है, परन्तु है उस मेघ की शिष्या । मैंने उस दिन इसे चाबुक से पीट डाला था जब छद्मवेश में जनता को बहका भड़का रही थी । परन्तु मैंने स्त्री समझकर नहीं पीटा था । यह बात इससे कह कभी नहीं पाया । यह विवाह के लिये तैयार ! और मैं ? आज यह वरमाल डालने आई है । पिता जी के उतने दान-पुण्य ने यह दिन न दिखलाया होता तो अच्छा होता जन्म भर कुआँरा रहता । अरे यह क्या ! पिता जी को उतना बड़ा वचन दे चुका हूँ । क्या मैं अब पीछे हट रहा हूँ ? पुरुष को सब कुछ सहना चाहिये । पत्थर के साथ आंधी का विवाह होगा तो आंधी उसका क्या कर लेगी ? पत्थर के चारों ओर भँवर बनकर चक्कर काटती रहेगी । भुवन के भीतर भँवर मच रही थी ।

सब चुप थे । उस चुप्पी ने कई क्षण ले लिये । आरुणि बिचारा बगलें सी भाँक रहा था—कहे तो क्या कहे ? हिमानी की वनावटी लाज ने वास्तविक सङ्कोच का रूप पकड़ा । मैंने बहुत आतुरता बर डाली ! यह अभागिन रेवती इतनी सङ्कोचिन और निकम्मी है कि कुछ ही नहीं । कोई और वाचाल दासी होती तो मेरी ओर से बातों का झाड़ खड़ा कर देती । परन्तु कोई और इतनी विश्वसनीय है भी नहीं । भुवन क्यों कुछ नहीं कहता ? ओह ! शायद पुरानी बातों के लिये मन में अछूता-पछता रहा है । तो मैं क्यों चुप रहूँ ? जब छठवें

दिन उतना बड़ा काम मुझे को ही करना है तो मैं और अधिक लाज सङ्कोच क्यों करूँ ?

गौरी ने कनखियों देखा भुवन आँखें नीची किये अपने हाथ की उँगलियाँ चटका रहा है। वही विमनता है या कोई खिन्नता ?

हिमानी को बोलना पड़ा,—‘आप बीती बिसार दीजिये,—मन कैसा है ?’—फिर लजाकर,—‘अब तो आपकी होने जा रही हूँ ।’

गौरी की आँखों से चिनगारियाँ सी छूट पड़ी ।

आरुणि ने सोचा हिमानी कठोर स्वभाव की तो नहीं पर कुछ लफझी अवश्य है। शास्त्र में इस स्त्री का वर्गीकरण क्या होगा ? होगा। आरुणि ने भुवन की ओर देखा। यह आश्रम में मुझे यह अपना बड़ा मानता था। इसीलिये इतना सकुच रहा है ! मुझे यहां बैठना नहीं चाहिये। कहीं और चल दूँ ।

हिमानी ने उसी लाज लोच के साथ भुवन से एक क्षण उपरान्त कहा, ‘किस सोच बिचार में पड़े हैं ।’

‘सोच रहा था क्या से क्या करना है,’—भुवन के चेहरे पर बरबस मुस्कान आई ।

आरुणि खड़ा हो गया,—‘थोड़ी देर लिये अपने कक्ष में जा रहा हूँ। तब तक तुम दोनों बातें ‘कर लो। अवसर पर बुला लेना ।’ और बाहर चला गया ।

भुवन ने सोचा आरुणि कर्मशील ज्ञानी तो है, परन्तु है भोंड़ा। गौरी को लगा जैसे उस सुनसान में वह अकेली रह गई हो ।

हिमानी बोली,—‘तब से अब तो आप बिलकुल बदल गये हैं ! तपोवन के आश्रम से जय बांध लाये हैं ।’

‘वहीं की कुछ स्मृति के साथ यहां की पुरानी बातें उमड़ पड़ी थीं। कुछ महीने ही तो हुये हैं जब वहां से लौटा हूँ ।’

‘यहां की उन पुरानी बातों को छोड़िये। वहां के जङ्गल के मङ्गल के साथ अब यहाँ नगर के मङ्गल की बात सोचिये ।’

हिमानी एक लचक के साथ मुस्काई ।

भुवन ने सोचा मैं पत्थर तो हो रहा हूं, परन्तु बात पुरुष की भांति करनी चाहिये—‘अब आपके साथ यहां नगर में ही मङ्गल पर मङ्गल होगा ।’

अरे ! यह बात तो भीतर के किसी विकार की रचना सी नहीं लगती ! गौरी के मन में कोंधा ।

‘उसी मङ्गल का प्रारम्भ करने के लिये ही इस घड़ी यहाँ आई हूँ । जयमाल डालूँगी गले में । अरी...ओ...वे गजरे दे दो जो तुम्हारे अञ्जल में है ।’

गौरी सिर बहुत झुकाये हिमानी के पार्श्व में आई । जैसे ही उसने हिमानी को हार दिये भुवन ने देखा । नीचे नीचे से ही गौरी ने भी ।

भुवन को लगा जैसे उसकी नसों में रक्त का संचार यकायक रुक गया हो । जैसे उसके हृदय को किसी ने वेग के साथ झटका दिया हो । गौरी ने वहां से हटकर फिर दीवार जा पकड़ी जैसे अचेत होकर गिरने से अपने को साध रही हो ।

ओह ! उन्हें !! मैं थोड़ी देर में आता हूँ, भुवन कह कर तुरन्त एक कक्ष में चला गया ।

हिमानी का चेहरा तमतमा गया । दाँत पीसकर बहुत धीरे से बोली,—‘क्या हो गया तुम्हें ?’

गौरी दीवार के सहारे को साधती-साधती झुक गई थी । मरे से स्वर में बोली,—‘एक रोग है...कभी कभी हो जाता है ।’

‘अभागिन ! इसी घड़ी होने को था, यह सब !! यह दशा देखकर वह घबरा गये और वहां चले गये ।’

गौरी ने किसी प्रचण्ड शक्ति या प्रबलदेव का स्मरण किया । फुरेरु आई और वह सचेत हो गई ।

‘कभी कभी उमड़ पड़ता है यह रोग । आगे न हो पायगा ।’

हिमानी ने अपने को कोमल किया,—‘मैं शीघ्र औषधि उपचार का

प्रबन्ध करूँगी। जाओ, बुला लाओ उन्हें। तुम्हें तो मेरी ओर से दपादप बातें करनी चाहिये। तुम चुप खड़ी रहों, मुझे बोलना पड़ा। जाओ।'।

'जी' गौरी के मुँह से ऐसे निकला जैसे किसी पत्थर की मूर्ति के मुँह से भाँई आई हो।

गौरी ने सांस साधी। आघे क्षण के लिये किसी का ध्यान किया और पैरों को लोहे जैसा कठोर बनाने का प्रयत्न करती हुई उस कक्ष में धीरे धीरे गई जिसमें भुवन यकायक चला गया था।

कमरे के किवाड़ खोलते ही गौरी ने देखा कि छाती पर हाथ कसे भुवन कमरे के दूसरे छोर पर कुछ द्रुतगति के साथ टहल रहा है। सिर उससे भी अधिक नीचा किये हुये जैसा उसने नैमिषारण्य में देखा था। अब यह सब क्या? वहाँ से एकदम उठ आये और अब यहाँ क्या कर रहे हैं! सिर झुकाये गौरी धीरे धीरे भुवन की ओर बढ़ी। जब कमरे में आई भुवन को नहीं मालूम हो पाया था।

'आपको देवी जी बुला रही हैं',—धीमें, कांपते, बैठे स्वर में गौरी ने कहा।

भुवन यकायक रुक गया। यह तो बिलकुल वैसी ही सी है! सिर उठाये तो देखूँ। पर कैसे कहूँ कि सिर उठाओ, कोई और न हो।'।

'हूँ',—'भुवन बोला,—'तुम कौन हो?'

'दासी...कहीं...की...थी...अब कहीं...की... नहीं हूँ...' भुवन ने पहला शब्द स्पष्ट सुन लिया। बाद का शब्द अस्फुट और अन्तिम वाक्य तो जैसे गौरी के होठों के संचरण के नीचे ही कहीं पिस गया हो।

भुवन ने कुछ और जानना चाहा—

'तुम्हारा नाम?'

'जी दासी',—वैसे ही झुका हुआ सिर, स्वर भी वंसा ही मन्द। गौरी के भीतर घोर द्वन्द्व मच रहा था—इनकी इसी दशा में अपने को खोल दूँ या अभी छिपाये रखूँ? अपने को खोल देने के उपरान्त और भी बहुत कुछ—संभवतः सारे का सारा खोल देना पड़ेगा। पर इतना

समय कहाँ है ? अवसर भी नहीं । वह निकट ही बैठी हुई है । इस विकृति में भी इन्हें क्या मेरा कुछ संशय हो गया है । कहूँ तो क्या कहूँ ?

‘रेवती ! ओ रेवती !!’ हिमानी ने दूसरे कमरे से ऊँचे स्वर में पुकारा ।

‘आई ।’ गौरी ने वहीं से उत्तर दिया और चले जाने के लिये पीठ फेर ली ।

‘यह गौरी नहीं हो सकती’, मिलती-जुलती शकल की कोई नौकरानी ही है । भुवन ने निष्कर्ष निकाला और गौरी से कहा, ‘कह देना थोड़ी देर में आते हैं ।’

गौरी कक्ष से बाहर हो गई ।

भुवन ने उसी समय ऊपर की ओर आँखें उठाईं और हाथ जोड़कर प्रार्थना की, ‘हे परमात्मा, मुझे उजियाले का मार्ग सुझाओ । मैं अपने वचन से न डिगूँ । मुझे कर्तव्यपालन करने की शक्ति दो, मुझे माता-पिता का ऋण चुकाने योग्य बनाओ\*\*\*।’

‘क्या कर रहे हैं ?’ हिमानी ने धीमे चिन्तित स्वर में पूछा जब गौरी उसके निकट पहुँच गई ।

गौरी ने उत्तर दिया,—‘कुछ समझ में नहीं आया’ कहते थे कि थोड़ी देर में आते हैं ।’

हिमानी की चिन्ता बढ़ी—क्या बात है ? वह उस कोठे के द्वार की ओर बार-बार देखती हुई प्रतीक्षा करने लगी ।

गौरी उसके पीछे वैसी ही दीवार के सहारे जा खड़ी हुई । उस द्वार की ओर उसकी भी दृष्टि जा-जा अटकती थी । उसके भीतर अब शान्ति थी, फिर भी डिगमिगाती हुई ।

भुवन आ गया । आँखों में तेज था, बालों के नीचे गालों पर फीकापन, पर दृढ़ता । उसने गौरी की ओर नहीं देखा—होगी कोई । गौरी ने भाँक लिया । उस रात भी कहीं इनके सन्तुलन में कोई बड़ी हलचल न मच जावे । मन ही मन प्रार्थना करने लगी ।

‘क्या करने लगे थे, राजकुमार ?’ हिमानी ने मृदुलता के साथ प्रश्न किया ।

भुवन ने मुस्कराने की चेष्टा करते हुये बतलाया, ‘यकायक स्मरण हो आया था कि वरमाल ग्रहण करने के पहले परमात्मा से वचन निभाने की समर्थता के लिये प्रार्थना करूँ—हमारे यहाँ की रीति है ।’

ऐसी कैसी प्रार्थना ! ये तो वहाँ उस छोर पर दौड़-धूप सी कर रहे थे । प्रार्थना का यह ढङ्ग तो कभी कहीं नहीं देखा सुना । परमात्मा इनको सन्तुलन दो, मेरा चाहे जो कुछ हो जाय । गौरी मन में कह रही थी ।

‘और हमारे यहाँ’,—हिमानी हँसती हुई खड़ी हो गई—और बोली,—‘हमारे यहाँ भी एक परम्परा है; ब्याह की रीति के पहले दूल्हा-दुलहिन बालदेव की पूजा करते हैं ।’

उसमें क्या होता है, गौरी के मन में प्रश्न उठा ।

‘उसमें क्या होता है ?’ भुवन ने अधिक विकसित मुस्कान के साथ प्रश्न किया ।

‘फूलों की माला चढ़ाते हैं शङ्ख फूँकते हैं और कुछ नहीं । शङ्ख हम लोगों के समुद्र अभियानों का प्रतीक है । बालदेवता का मन्दिर हमारे भवन में ही है ।’

‘ठीक है, ठीक है ।’

‘तो अब—?’ हिमानी ने अपनी चौकी पर से दोनों भूलमालायें उठाकर लोच-लचक के साथ भुवन से कहा ।

‘आरुणि को भी बुला लूँ । मेरा सहपाठी और गुरु भाई है । माता पिता का भी आशीर्वाद आवश्यक है ।’ भुवन ने कहा और बाहर चला गया ।

माता पिता का आशीर्वाद ! मेरे सम्बन्ध में मेरी माता को वचन देते हुये भी इन्होंने यही कहा था । फिर गौरी की कल्पना में माता पिता का उस रात देहान्त और अयोध्या की कोठरी में देखा हुआ वह स्वप्न



आ गया। मेरा दुर्भाग्य ! परन्तु उसे अब पीछा नहीं करने दूंगी। मैं अपने दुर्भाग्य के मगर को मिटा कर रहूंगी। परमात्मा मेरी सहायता करेंगे। इन्होंने मुझे पहिचान ही नहीं पाया ! हे भगवान् !! भुवन अपने माता पिता और आरुणि को लेकर आ गये।

हिमानी ने भुवन के गले में जयमाल पहिनाई। भुवन ने दूसरी माला उसके गले में डाली। हिमानी ने रोमक और ममता के चरणों का स्पर्श किया और आरुणि को नमस्कार।

रोमक ने आशीर्वाद दिया,—‘परमात्मा तुम दोनों को सुखी रखे, चिरायु करें। तुम दोनों जनपद की सेवा करते रहो।’

ममता और आरुणि ने भी स्वस्ति की।

यह उनमें से किसी ने नहीं देखा कि गौरी के आंसू आ गये थे जिन्हें उसने वहीं पोंछ डाला था।

हिमानी ने बड़ी नम्रता के साथ ममता से घर जाने की आज्ञा माँगी।

‘एक अठवारे के उपरान्त ही यहां आ जाओगी। फिर यही तुम्हारा घर होगा।’

हिमानी लाज के साथ सिर नीचा करके मुस्कराने लगी।

‘चलो रेवती,’— बड़ी मिठास के साथ हिमानी ने गौरी से कहा।

गौरी उसके पीछे हो गई। वे सब उन्हें रथ पर बिठलाने के लिये सड़क तक आये।

गौरी ने किसी की भी ओर नहीं देखा। रथ और उसके साथी चले गये। आरुणि ने सोचा हिमानी लफङ्गी भी नहीं है। बड़ी आयु होने के कारण ही कुछ लपलप सा कर उठी है, इसमें विनय पर्याप्त है। शास्त्र में उसे किस वर्ग में रक्खा जावे वह नहीं सोच सका। भुवन से अकेले में कहा,—‘यह भयङ्कर तो अंशमात्र भी नहीं। तुम मूर्ख ही रहे।’ और हँसा।

‘हाँ—आँ अब जैसी है तैसी है,’—भुवन भी मुस्कराया ।

निश्चय हुआ कि वेद और कल्पक को तुरन्त निमन्त्रण भेजकर बुलाया जावे और गुरुदेव के चरणों में निवेदन अर्पित किया जावे । शीघ्रगामी अश्वारोही और घोड़े भेज दिये गये ।

[ ६७ ]

रात लग चुकी थी। नील-भवन के हिमानी सदन में ठंड कम थी—बाहर भी तीखी नहीं थी। हिमानी मौज पर थी और गौरी उत्सुक।

मने कहा था कि तुम्हारा उपचार करूँगी। यहां एक वैद्य है जो बड़े बड़े रोगों को चुटकी में उड़ा देते हैं,—हिमानी हँसकर कह रही थी,—‘एक से एक बढ़कर औषधियां है उनके पास—महापाचक चूर्ण से लेकर महुआसार, हाथी बटी, ताड़करन, मूर्छाहरन, बसीकरन और न जानें क्या क्या !’

औषधियों के विचित्र नाम सुनकर गौरी के भी होठ खिले।

‘वह वैद्य कहते हैं कि महुआसार और ताड़करन से नरनारी को महुआ और ताड़ जैसे लम्बे तड़ङ्गे वृक्षों सदृश बना सकता हूँ।’ और मूर्छाहरन से किसी भी प्रकार की मूर्छा को छूमन्तर कर सकता हूँ।’ हिमानी और भी हँसी।

गौरी को भी फीकी-सी हँसी आई।

‘रेवती, तुम मुझे अब बहुत अच्छी लग रही हो। तुम्हें अपनी सखी बनाऊँगी। नौकरानी नहीं रहोगी। सावधान जो कल से सिवाय फूल इकट्ठे करने और मेरे साथ रहने के कोई और काम किया।’

गौरी ने सिर नवाकर और हाथ जोड़कर कृतज्ञता व्यक्त की।

‘वहां उस सयय तुम्हें क्या हो गया था? मूर्छा-सी आ रही थी !’

हिमानी ने चिन्ता के भाव के साथ पूछा।

‘बात कुछ नहीं थी। दिन में काम करते करते थक गई। रात नींद बहुत ही कम आई थी। वह सपना फिर देखा था।’ गौरी जान गई थी कि हिमानी भूतप्रेतों से डरती है।

हिमानी की हँसी एक क्षण के लिये तिरोहित हो गई।

‘अपने देवता का भजन पूजन किया करो और हमारे बाल देवता का भी । मैं तुम्हें अपने मन्दिर में साथ ले जाया करूँगी । फिर भूतप्रेत सतावेंगे नहीं, उल्टे मेरी तुम्हारी सहायता करेंगे ।’

‘जी अच्छा ।’

‘तो आज से तुम्हें नाचना सिखलाऊँगी ।’

हे भगवान क्या यह भी भुगतना पड़ेगा ? गौरी ने अपने इष्ट को सुमिरा ।

बोली,—‘जी मुझे नाचना नहीं आवेगा ।’

‘अरी वाह ! मैं अपने यहाँ का नाच सिखलाऊँगी । बड़ा सुन्दर है । देह को स्वस्थ और पुष्ट करने वाला । उस वैद्य की सागोनसार और ताड़करन दवाओं से कही अच्छा ।’ हिमानी हँसी ।

गौरी को भी हँसना पड़ा ।

गौरी ने कहा,—‘दो चार दिन देख लूँ तो समझूँगी कि आपके देश के नृत्य में कौन कौनसी बारीकियाँ हैं । फिर सीखने की चेष्ट करूँगी ।’

हिमानी ने नाचना आरम्भ कर दिया और कुछ समय तक नाचती रही । गौरी को लगा जैसे बन्दर कूदनी हो, भट्टी मटकों लचकों से भरा हुआ ।

हिमानी ने अन्त में पूछा, ‘कैसा लगा ?’

‘जैसा आपने कहा था है तो वैसा ही, परन्तु मेरे लिये बहुत दुस्साध्य है । मेरी देह वैसे भी स्वस्थ और पुष्ट है इस नृत्य को सीख कर करूँगी ही क्या ? गौरी ने उत्तर दिया ।

‘नहीं मैं सिखवा कर रहूँगी, पर अभी नहीं । कुछ बातें करें । नींद तो नहीं आ रही है ? कल रात की जागी हो ।’ हिमानी के स्वर में प्यार की पुट थी ।

‘नहीं जी । देर तक बैठ सकती हूँ ।’ गौरी सावधान हुई ।

हिमानी ने कहना प्रारम्भ किया,—‘भुवन से छुटपन में ही मेरी खटपट हो गई थी और बनी रही ।’

‘अरे !’

‘हाँ रेवती । आज से तुम्हें रेवती रानी कहा कलूँगी ।’

‘आपकी बहुत कृपा ।’

‘एक दिन तो बात इतनी बिगड़ी इतनी बिगड़ी कि मेरी पीठ पर उन्होंने बड़ी दुष्टता के साथ चाबुक मारे,’—हिमानी का स्वर प्रखर हो गया और आंखें जल उठीं । गौरी ने दीपक के प्रकाश में देखा ।

गौरी को आश्चर्य हुआ,—‘ऐं ! बहुत बुरा किया । हम लोगों ने कभी नहीं सुना ।’ मन में उसने कहा, भीतर का विकार उन्हें नया नहीं है । परन्तु नैमिषारण्य में पहले दिनों में कई बरस इस प्रकार की तो कोई बात कभी नहीं देखी पाई । यह भी कुछ कम नहीं है । अवश्य ही इसने कोई बड़ा नीच व्यवहार किया होगा ।

हिमानी बोली, ‘किसी से कहने सुनने की बात नहीं । मेरी पीठ पर अब भी निशान हैं । बरसों बीत गईं पर हृदय के भीतर के घाव तो कभी पुरे ही नहीं । अब भी—’ हिमानी कहते कहते रुक गई ।

इसकी प्रतिहिंसा का एक कारण यह भी है, परन्तु यही एक कारण नहीं हो सकता । मेघ, दीर्घबाहु, नील और न जानें कौन कौन उस षडयन्त्र में एक हो गये हैं । और भी कई कारण होंगे । गौरी ने सोचा ।

‘इतनी बड़ी बात कैसे कोई भूल सकता है ? बहुत बुरा हुआ ।’ गौरी ने कहा ।

‘तुम्हारे साथ कोई ऐसा बर्ताव करता तो तुम क्या करतीं ?’

‘मैं कोई ऐसा काम ही न करती तो मेरे साथ बैसा बर्ताव कोई कैसे कर लेता ? गौरी के मन में उठा, परन्तु उसने उत्तर दिया, ‘कह नहीं सकती उस समय क्या कर बैठती, कर डालती अपने मन का अवश्य कुछ न कुछ ।’

‘रेवती मेरी, मैं तुम पर प्रसन्न हुई । तुम बोदी तो नहीं हो । तलवार, छुरी, लाठी कुछ चलाना जानती हो ?’

‘लाठी, तलवार का चलाना तो नहीं सीखा, परन्तु छुरी चलाना जानती हूँ।’

‘अच्छा—अब और बातें फिर कभी करूँगी। दास को एक पत्र लेकर कल आचार्य मेघ के पास जाना है। पिताजी से बात कर लूँ। तुम जा सोओ।’

गौरी चली गई।

[ ६८ ]

अयोध्या नगर में सङ्गीत का कोलाहल सा मचने लगा । मृदङ्ग, बांसुरी, वीणा और ढोल के साथ कोई गा उठा और कोई नाचने लगा । रोमक और नील के भवनों के उसारों में बधावों के गान की बाढ़ सी आ गई ।

नील अपने कमरे में बैठा कुछ लिख रहा था कि कपिञ्जल आकर खड़ा हो गया ।

जब नील ने लेख पूरा कर लिया तब कपिञ्जल से पूछा, 'मिले थे ?'

'जी नहीं । वे तो कल दोपहर ही शिकार खेलने कहीं दूर जङ्गल में निकल गये हैं ।'

एक क्षण उपरान्त नील ने कहा, 'तुम घोड़े पर चढ़ना जानते हो ?'

'जी साधारण से घोड़े पर ।'

'अच्छा । तुम्हें एक पत्र आचार्य मेघ के पास ले जाना है । रात तक उनके गाँव पहुँच जाओगे । कल सन्ध्या तक लौट आना ।'

कपिञ्जल ने गाँव के मार्ग से अपना अपरिचय प्रकट किया । नील ने ब्योरे वार सब समझा दिया और थैली में पत्र बन्द करके उसे दे दिया ।

'अब यहां से देरदार किये बिना चले जाओ,'—नील ने कहा । कपिञ्जल ने वहां से आकर गौरी से उद्यान में अकेले मिलने का अवसर निकाल लिया ।

अपने वस्त्र के नीचे छिपी थैली की ओर हाथ का संकेत करके बोला, 'बहिन मैं आवश्यक काम से बाहर जा रहा हूँ । कल सांभ तक लौटूंगा । यहां का मेरा भी थोड़ा सा काम करती रहना । उस कुञ्ज के नीचे की क्या रियों का थोड़ा सा काम है । मैं बतलाकर चला जाऊँगा ।' गौरी ने आँख मीचकर हामीं भरी परन्तु कहा, 'वाह ! मैं इधर उधर के काम क्यों करने चली । स्वामिनी ने निषेध कर दिया है । पर मेरे भाई हो सो थोड़ा बहुत कर दूगी ।'

इस सावधानी की आवश्यकता न थी, क्योंकि वहां आसपास कोई भी नहीं था।

दोनों एक कुञ्ज के नीचे जा पहुँचे। धीरे धीरे बातें होने लगी।

‘बहिन, नगर के लोग गाने बजाने पर दूट पड़े हैं। उन्हें क्या मालूम कि उनके नाचने वाले पैरों के तले की धरती में मृत्यु मुंह बाये पड़ी है।’

‘मेरे तुम्हारे सिवाय और कौन जानता है। कपड़ों में वह क्या है?’

‘मेघ के लिये नील का पत्र। इसे पढ़कर मुझे दे दो।’

कपिञ्जल ने सतर्कता के साथ थैली गौरी के हाथ में दे दी। उसने खोलकर पत्र पढ़ा और कपिञ्जल को सुनाया—

‘... है तो आज से पांच दिन मुहूर्त के, परन्तु आप अपने सब भक्तों को लेकर पहले ही पधारिये। कौन रीति कैसे निभाई जायगी इत्यादि का पूरा-पूरा ब्योरा आपके पधारने पर ही निर्धारित होगा। साष्टांग प्रणाम स्वीकार करें। नील।’

‘इसमें पकड़ की कोई ऐसी बात नहीं। मेघ के साथ अनेक सामन्त और योधा आयेंगे, और उसके आने पर ही इनके षडयन्त्र की पूरी रूपरेखा बनेगी इतना निश्चित है।’ कपिञ्जल ने पत्र को थैली में बन्द करके भटपट जहाँ का तहाँ रख लिया और वे दोनों कुञ्ज से बाहर निकल आये।

गौरी ने कपिञ्जल को संक्षेप में बतलाया कि हिमानी के अधिक निकट सम्पर्क में आ गई है और वह किसी दिन सब बतलावेगी। अन्त में उसने कहा,—‘आरुणि आ गये हैं। मैंने उन्हें कल राजकुमार के भवन में देखा था।’

‘आरुणि ! आरुणि आ गये हैं !! धन्य भगवान। राजकुमार को बहुत सहारा मिलेगा। कुमार स्वस्थ हैं?’

गौरी थोड़ी सी विचलित हो गई,—‘वैसे स्वस्थ दिखलाई पड़े, परन्तु माथे में विकार है—’



‘तुम्हें तो कदाचित् पहिचान लिया होगा, क्योंकि भिक्षाटन के लिये धौम्य खेड़े में आते-जाते रहे हैं ?’

‘नहीं— कह नहीं सकती—नहीं पहिचाना—’

गौरी आगे कुछ नहीं कह सकी । उसका गला रुँध गया था । कपिञ्जल ने सोचा बिचारी के माता-पिता चले गये और अब इसका कोई पहिचानने वाला तक नहीं ! राजकुमार पहिचान ही लेते तो कहते भी क्या ?

[ ६६ ]

मेघ ने अपने गाँव पहुँचते ही उस मुहूर्त के अवसर के लिये अपने सहवर्गियों का सङ्गठन सतर्कता के साथ आरम्भ कर दिया । इधर-उधर के महत्वपूर्ण समाचार पाने के लिये उसने अपने गुप्तचर छोड़े । रोमक के दान-प्रदान का प्रभाव शूद्रों और निम्न श्रेणी के लोगों पर अधिक पड़ा था । छोटे-छोटे अनेक सामन्त जो बारह बरसों के लगातार अकालों के कारण त्रस्त हो गये थे रोमक पर प्रसन्न थे । शान्तवृत्ति के ब्राह्मण भी । परन्तु इनमें कई ऐसे थे जिन्हें शूद्रों का वह सत्कार अच्छा नहीं लगा । उनमें ईर्ष्या, द्वेष या परिग्रह की भावना न थी, परन्तु वे उस परम्परा के उपासक हो गये थे जिसके विरुद्ध धीम्य और उनकी विचार-धारा वाले कुछ और थे । शूद्र की तपस्या उसे किसी दिन ब्राह्मण बना देगी उनके अन्तर्निहित अभिमान को चुपचाप कुरेदती रहती थी । बड़े लोगों के उदार और प्रगतिशील वाक्यों पर उनका माथा तो झुक जाता था, पर भीतर का वंशानुगत पवित्रता-गर्व आहत हो हो जाता था । फिर भी उनके निस्पृह चरित्र का उदार अङ्ग रोमक की सम्मरित्रता और दानशीलता के लिये सद्भावना रखता था । वे रोमक में शूद्रों के प्रति वृत्ति का कुछ परिवर्तन तो चाहते थे, परन्तु उसके किसी भी बड़े अनिष्ट के लिये उनके शान्त संयमी मन में कोई भी इच्छा न थी ।

खुले युद्ध में रोमक का साथ छोटे छोटे अनेक और थोड़े से बड़े बड़े सामन्त, जो शान्त संयमी ब्राह्मणों के प्रभाव में भी थे, देते । शूद्र और श्रमिक ऐसे युद्ध में रोमक के लिये कट मरते । रोमक यज्ञ में पशुओं के बलिदान के विरुद्ध था । जो ब्राह्मण और क्षत्रिय ऐसे यज्ञ बलिदानों के विरुद्ध थे वे सब उसका साथ देते । मेघवर्ग का नाश हो जाता । शाप में विश्वास करने वाला मेघ और उसके साथी इस बात को जानते थे । मेघ के पक्ष की यह दुर्बलता थी ।

परन्तु मेघवर्ग जानता था कि रोमक भुवन आदि का वध कर डालने के बाद बारह वर्षों के अकालों की मार खाई हुई जनता उसके विरुद्ध

हथियार नहीं उठावेगी कुछ ने सिर उठाया भी तो कुचल दिये जावेंगे । कुड़मुड़ा कर रह जावेंगे और फिर जहां दो एक बरस मुशासन पाया कि सब भूल भालकर ज्यों के त्यों अपने अपने काम में लग जावेंगे ।

परन्तु एक समस्या भीषण रूप धारण करके मेघ के सामने खड़ी हो गई ।

दो दिन में उसने अपने वर्ग के विशेष प्रभावशाली मुखियों को इकट्ठा किया । उसके गांव के घर का आंगन लम्बा चौड़ा था । भीतर बड़े बड़े उसारे थे । यहां सब लोग रात के पहले पहर में इकट्ठे हुये । उसारे में चटाइयों पर बैठे थे । एक आड़ में दीपक टिमटिमा रहा था । मेघ एक छोटी सी मञ्जिका से टिका हुआ, अलग सा । उसने त्याग के रूपक और तपस्या के बानक को अपना रक्खा था । घर के बाहर फाटक पर पहरा था ।

मेघ के सहवर्गी रोमक और भुवन की समाप्ति के उपरान्त किसको राजा बनाया जावे इस पर असहमत थे ।

मेघ समझा रहा था,—‘रोमक और भुवन के मार दिये जाने पर उनके साथी सुन्न पड़ जावेंगे । कोई भी राजा बनाया जा सकता है । मैं दीर्घबाहु को बचन दे आया हूं । दीर्घबाहु बहुत बड़ा सामन्त है । जनपद में सबसे बड़ा ।’

‘और कदाचित् सबसे बड़ा गधा भी !’ एक ने बेखटके कहा । थोड़े से चुपचाप हँसे ।

दूसरा बोला, ‘आचार्य जी, वह तो यों ही है । देखिये, नीलपणि के टाँड़ों के साथ महीनों यों ही मारा मारा फिरा किया ।’

‘ऐसे पशु को राजा बनाने से क्या होना जाना है ?’

दो तीन दिन के थके हुये मेघ का क्रोध उबला, परन्तु उसने कड़वा घूँट-सा पी लिया—

‘दीर्घबाहु को राजा बना देने पर राज्य तो हमीं तुम्हीं चलावेंगे ।

‘ऐसे बन्दर की आवश्यकता ही क्या आचार्य जी ? राजा ही किसी को बनाना है तो हम यहां इतने क्षत्रिय तो बैठे हैं, किसी एक को भी बना लीजिए ।’

‘दीर्घबाहु क्या कहेगा ? उपद्रव खड़ा हो जायगा ।’ मेघ ने घुटे हुये स्वर में कहा ।

‘दीर्घबाहु को राजा बनाने से प्रत्येक जनपद में हमारी हँसी की जावेगी और दूर पड़ौस का कोई हमारे ऊपर चढ़ दौड़ेगा ।’

इतने दिनों राज्य चलाते चलाते उन सबको शासन बहुत प्रिय हो गया था । उन्हें चिपक गया था । मेघ को सबसे अधिक । परन्तु अब वह सब अस्तव्यस्त होता दिख रहा था । इतना किया कराया सब चौपट ! मेघ को क्रोध पर क्रोध आ रहा था । कितने मूर्ख हैं ये सबके सब ! उधर जाता हूं तो खाई है इधर जाता हूं तो खड्ड ।

द्वारपाल ने आकर निवेदन किया कि अयोध्या से नील का कोई दास समाचार लेकर आया है । कपिञ्जल को भीतर बुला लिया गया । वह जान बूझ कर इतनी देर लगाकर मेघ के समक्ष आया था—ऐसा न हो कि कहीं पहिचान ले । वैसे मेघ उसे दिन में भी पहिचान न पाता । परन्तु कपिञ्जल को सन्देह था । पत्र देकर वह दूर जा बैठा ।

मेघ के नेत्र और भी निर्बल हो गये थे । किसी दूसरे से पत्र पढ़वाया गया ।

मेघ का क्रोध उतार पर आ गया था । पूछा, ‘पत्र लाने वाला दास कहां है ?’

मेघ को बतलाया गया ।

मेघ ने कहा, ‘इसके भोजन विश्राम का ठिकाना कर दो ।’

कपिञ्जल बाहर चला गया ।

एक सामन्त ने दूरदर्शिता की बात की,—‘दिन बहुत थोड़े रह गये हैं । यहां हम जितने हैं यदि दीर्घबाहु के अभिषेक के लिये हमीं भर भी दें तो बाहर अनेक ऐसे हैं जो उसके लिये तैयार नहीं होंगे ।’

मेघ ने सुझाया, 'तो अयोध्या चलकर निर्णय कर लेगे। नील और दीर्घबाहु से आमने सामने बात हो जायगी।'

'नहीं आचार्य जी, जो कुछ भी निर्णय करना हो यहीं कर लीजिये। अयोध्या में पहुँच कर यदि परस्पर तोड़ फोड़ हो गया तो फिर कुछ हाथ नहीं लगेगा—संभव है हममें से बहुत से यों ही संत में मारे जावें,'—उसी दूरदर्शी ने कहा। '“एक उतावला बोल पड़ा,—‘यदि यहीं निर्णय नहीं होता है तो हममें से अनेक अयोध्या जावेंगे ही नहीं। यों भी कई एक नितान्त उदासीन हैं।’

अब मेघ के कान खुले। कई एक उदासीन हैं ! अयोध्या नहीं जावेंगे !! मेरी शाप मिट्टी में मिल जावेगी !!! मेरे तन्त्र मन्त्र व्यर्थ जावेंगे ? दीर्घबाहु को कौन समझावे ? नील और हिमानी को भी जिनके हाथों ही बहुत सा होना है ? क्या मुझे अयोध्या जाना पड़ेगा ? और दीर्घबाहु, नील, हिमानी को ठीक करके इन सबको अयोध्या साथ ले जाने के लिये लौटना पड़ेगा ? मेरे अयोध्या जाने पर यहां शिथिलता और उदासीनता बढ़ सकती है और यदि वहां रोमक सोम इत्यादि में से किसी को सन्देह हो गया कि मैं क्यों आया और लौट पड़ा तो गये ! मेरा यहीं बना रहना अधिक श्रेयस्कर है। यदि कुछ भी न कर पाया तो दूर तो रहे, परन्तु कर क्यों नहीं पावेंगे ?

मेघ ने आचार्य-पद निभाने वाले स्वर में कहा, 'हां आं, दीर्घबाहु सीधा तो बहुत है, परन्तु है विश्वसनीय और बड़े काम का। यदि तुम में से किसी को राजा बनाते हैं तो सम्भव है वह बिगड़ खड़ा हो। शासन जैसा चल रहा है यदि वैसा ही हम तुम थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में बना रहे तो कैसा ?'

'बहुत अच्छा।'

'हम सब यही चाहते हैं।'

उन सब की यही इच्छा थी और यही निश्चित हुआ।

एक ने कहा, 'नील और दीर्घबाहु को पत्र भेज दीजिये । उन्हें मानना पड़ेगा, मान जावेंगे ।'

'पत्र में सब बातें नहीं आ सकती । मैं अयोध्या जा नहीं सकता । इसलिये तुम में से किसी को मेरी ओर से जाना पड़ेगा । लिख दूंगा कि जो कुछ ये कहें मेरा कहा समझा जावे ।'

उन में से जिसे अत्यन्त चतुर और स्फूर्ति वाला समझा जाता था उसको भोर होते ही अयोध्या जाने के लिये नियुक्त किया गया । मेघ की ओर से उसे अधिकार-पत्र दिया गया ।

मेघ ने उससे कहा, 'शीघ्र ही लौटना और सफल होकर लौटना, भला । नील के दास को साथ मत लगाना । वह अलग से जावेगा ।'

[ ७० ]

दूसरे दिन संध्या समय मेघ का दूत नील-भवन में आ गया। कपिञ्जल उससे पहले चल पड़ा था इसलिये कुछ पहले जा पहुंचा। मेघ के दूत का स्वागत करने के लिये नील तैयार था।

भोजन के उपरान्त रात के एकान्त में बातचीत हुई।

‘दीर्घबाहु को ये ही दिन मिले आखेट के लिये ! बड़े ही—’ दूत ने कहा।

‘बड़े ही भोले अच्छे हैं। कोई कैसा भी हो आचार्य मेघ तो हैं अपने बीच में। मैं उनकी हर एक बात को शिरोधार्य करता हूं। आशा है कि दीर्घबाहु भी मान जावेंगे।’

‘मानना पड़ेगा अन्यथा सब मटियामेट हो जावेगा।’

‘जैसे ही दीर्घबाहु लौटे पहला काम उन्हें अनुकूल कर लेने का ही होगा।’

‘कब तक लौटेंगे ? किस जङ्गल में गये हैं ?’

‘सो तो नहीं मालूम। कहकर नहीं गये हैं। उधर हिमानी रोमक के घर माला पहिनाते गई इधर वे जङ्गल की ओर चल दिये !’

‘क्या बुद्धि पाई है ! इसी पर राजा बनाये जाने वाले थे !! मैं प्रतीक्षा में यहां कब तक पड़ा रहूंगा ? आचार्य मेघ ने बहुत शीघ्र लौट आने का आदेश दिया है।’

‘ढूंढ़ने के लिये मैं अपने अनुचर भेजता हूं। वे उन्हें लेकर ही आवेंगे।’

दूसरे दिन बाट देखते देखते जब दूत व्याकुल हो गया तब क्षुब्ध होकर उसने नील से कहा, ‘मैं और अधिक नहीं ठहर सकता। उस मुहूर्त के लिये केवल तीन दिन रह गये हैं। ऐसा न हो कि आतुर होकर वे सब यहां चले आवें और सब नष्टभ्रष्ट हो जावे।’

‘पास के जङ्गलों का समाचार मिल गया है कि वे यहां नहीं हैं, एक दूर के जङ्गल में हैं। आते ही होंगे।’

‘किसी को कहीं मिले भी या नहीं ?’

‘मिले तो नहीं, किन्तु मिल जायेंगे ।’

‘मैं नहीं ठहरूँगा, ठहर ही नहीं सकता । दीर्घबाहु मान जावें तो स्पष्ट लिख भेजिये या स्वयं चले आवें । न आ सकें तो चिट्ठी भिजवा दीजिये कि बिलकुल पूरी तौर पर मान गये हैं । स्पष्ट लिख देना । हम लोग गोल बात पसन्द नहीं करेंगे । न मानें या तब तक आवें ही नहीं तो वैसा लिख देना और मुहूर्त को किसी भांति लम्बी अवधि के लिये टाल देना जिसमें दीर्घबाहु मनचाही शिकार खेल लें और हम लोग अपने विवेक के साथ आगे की बात सोच सकें ।’

‘नही आर्य, वे मान जावेंगे । आवेगे भी शीघ्र ही । योजना की लगन उनके मन में भी वैसी ही है जैसी हमारे आपके मन में । मुहूर्त टाला नहीं जा सकता । कुछ धन-सम्पत्ति तो रोमक को दे ही चुका हूँ । और भी देनी पड़ेगी । उस पर यदि भेद खुल गया तो मैं कहीं का न रहा और हिमानी यों ही मरी !’

‘तो फिर ठीक है । पत्र भिजवा देना । पत्रवाहक वही दास ठीक रहेगा । चुप्पा और सीधा है ।’

नील ने स्वीकार कर लिया । दूत दूसरे दिन चला गया ।



[ ७१ ]

दीर्घ इसके एक दिन पीछे लौट पाया। जब जङ्गल में नील का सन्देशवाहक पहुँचा वह बाघों की शिकार के आनन्द में मुग्ध था। एक क्षण के लिये मन ही मन कुडकुड़ाया—कहाँ की विपद आई यह ! दिन के दिन तो पहुँच ही जाता। न मालूम नील को ऐसी कौन सी आतुरता ने धर दबाया। पत्र में कुछ भी नहीं लिखा—केवल इतना कि तुरन्त चले आओ !

और वह सीधा नील के पास पहुँचा। सन्ध्या नहीं हुई थी। नील ने तत्काल बात का भुगतान किया। दीर्घबाहु के माथे में चक्कर आया, गया।

नील ने कहा,—‘आज से दो दिन रह गये हैं ! केवल दो दिन !! तुम स्वयं बड़े सवेरे आचार्य मेघ के पास चले जाओ और आश्वासन दे आओ।’

‘मैं नहीं जा सकता बिल्कुल थका हुआ हूँ,—दीर्घबाहु ने बच्चों जैसी रिस व्यक्त की।

नील एक क्षण के लिये घबराया।

‘मान जाओ नहीं तो पूरा सत्यानास होने वाला है। मेरा धन का धन गया और किसी दिन हम सबका सिर जायगा।’

‘मैं नहीं जानता था कि आचार्य मेघ के साथी इतने नीच निकलेगे।’

‘भैया रे, न हो कोई एक व्यक्ति राजा तो बिगड़ क्या जायगा ? शासक—मण्डल में तुम्हारा स्थान सर्वोच्च रहा है और रहेगा। नाम-मात्र के राजा न कहला कर वास्तव में राजा तो तुम्ही होगे और हिमानी तुम्हारी रानी। तुम्हारे इस त्याग के कारण तुम्हारा पद और सम्मान और भी अधिक बढ़ जायगा।’

हिमानी के उस तिरे को सिर पर व्यर्थ रक्खा वा ! हिमानी का स्वप्न भी यों ही रहा !! दोनों तिरे सन्दूक में बन्द पड़े रहेंगे !!! न

रक्खूँ सिर पर तिरे को ? कुछ बहुत अच्छा सा तो लग भी नहीं रहा था । अरे ! मैंने उल्टा पुल्टा रख लिया था !! उसे सिर पर बाँध कर शिकार नहीं खेल सकता । अपने यहां का ही कोई मुकुट बांध कर यदि शिकार में जाऊँ तो कौन रोक लेगा ? राजा का शब्द मेरे नाम के साथ न रहे तो क्या बिगड़ जायगा ? और फिर राजगद्दी पर बिठलावेंगे ये ही सब । सिंहासन पर बिना बैठे ही यदि शासक—मण्डली में सबसे ऊँचा स्थान मिलता रहा तो बुरा क्या ? काम कम और आनन्द मङ्गल तथा शिकार के लिये समय बहुत ! हिमानी को भी शिकार खिलाने ले जाया करूँगा । वह वाण विद्या की जानकार है .....’

‘क्या सोच रहे हो भैया ? तुरन्त हमी भरने का निश्चय करो ।’

‘अस्तु, मैं तो खिलाड़ी हूँ । हिमानी को बुरा न लगे कहीं ।’

‘नहीं लगेगा । मैं सब समझा लूँगा । मान गये न भैया ?—राजा मुन्ना मेरे ।’

‘मानने के सिवाय और करूँ भी क्या ? कदाचित् ठीक है भी । सब जो चाहते हैं वही करना चाहिये, परन्तु मैं आचार्य मेघ के पास स्वयं नहीं जाऊँगा । मुझ पर लोगों की दृष्टि रहती है, मैं परखने से नहीं चूकता । मेरे उस गांव में आने जाने पर कहीं रोमक को सन्देह हो गया तो ?’ दीर्घ ने काइँयाँ पन व्यक्त करते हुये कहा ।

‘बहुत बहुत धन्यवाद भैया । तुम बड़े दूरदर्शी हो । मैं पत्र भिजवाये देता हूँ । तुम भी अपने हस्ताक्षर कर देना उस पर ।’

‘अपनी दूरदर्शिता की सराहना पर दीर्घबाहु प्रसन्न हुआ । बोला, लाइये अभी कर दू । फिर जाकर खाऊँ पिऊँ और सो—जाऊँ कई रात पलक नहीं मारा ।’

‘अभी लिखे लाता हूँ । लिखने की सामग्री यहां नहीं है ।’ कह कर नील चला गया ।

[ ७२ ]

हिमानी के सदन में गौरी गा रही थी और हिमानी नाच रही थी । गौरी का गीत करुणारस के स्वरों में था, पर बोल भक्ति और निष्ठा से उत्पन्न पुरुषार्थ के थे । हिमानी का नृत्य ताल में चौकस था, परन्तु राग की प्रवृत्ति और शब्द-भाव के प्रतिकूल । हिमानी की उछल-कूद, चटक-मटक और थिरकन वही और भी बढ़ जाती थी जहाँ गौरी के गीत की करुणता अपनी कोमल गति में आत्मा की चिन्ता और व्याकुलता को आत्मसात कर लेने पर तुल जाती थी । गौरी को कई बार खटका — ऐसी असङ्गति तो कभी नहीं देखी, बड़ी फूहड़ है । गौरी अपने को हिमानी के और भी अधिक निकट सम्पर्क में पा रही थी । वह अपनी निष्ठा में से शक्ति पा रही थी, इसलिये उस खटक या अखर को पीती जा रही थी ।

उसी समय किसी ने किवाड़ों पर हस्तक दिया । गौरी ने खोल दिये । नील भीतर आ गया ।

‘एक बहुत आवश्यक चिट्ठी आचार्य मेघ के पास भेजनी है । यहीं होकर लिखूँगा,’ — नील ने हिमानी से कहा और गौरी को आज्ञा दी, — ‘तुम दास को बुलाकर अपनी कोठरी में बिठला रखो । थोड़ी देर में बुलाऊँगा ।’

गौरी तुरन्त चली गई ।

नील ने हिमानी को समस्या का पूरा रूप बतलाया । हिमानी को सहमत होने में बहुत देर नहीं लगी — यों भी रानी से मेरा पद किस बात में कम रहेगा ?

नील बोला, ‘बड़ी बात हुई कि दीर्घबाहु मान गये । तुम्हारे विषय में तो विश्वास था ही कि शीघ्र मान जाओगी । लिखने की सामग्री दो ।’

‘यही गुण तो उनमें बड़ा है — मान जाते हैं’, हिमानी ने कहा और लिखने की सामग्री ढूँढ़ लाई ।

नील ने पत्र लिखकर उसे दिखलाया। हिमानी को ठीक जँचा। नील पत्र को दीर्घबाहु के पास ले गया। वह जमुहाइयों पर जमुहाइयाँ ले रहा था—कब छुट्टी मिले। दीर्घबाहु ने पढ़कर तुरन्त हस्ताक्षर कर दिये। नील उसे बिदा करके फिर हिमानी के पास आ गया।

गौरी बुलाई गई। उसने आकर बतलाया,—‘दास आ गये हैं।’

‘भेज दो।’ नील ने कहा।

नील ने पत्र एक थैली में बन्द कर दिया और कपिञ्जल के आने पर कहा, ‘यह चिट्ठी बहुत शीघ्र आचार्य मेघ के हाथ में पहुँच जानी चाहिये। अपने उसी गाँव में मिलेगे जहाँ पहले मिले थे।’

कपिञ्जल थैली लेकर बोला, ‘जी, मैं तो रात में ही चल देता, परन्तु मार्ग भूल जाने का डर है, क्योंकि एक ही बार गया हूँ। बड़े भोर चल दूँगा।’

‘कल सांझ तक पहुँच जाओगे। वहाँ से आधी-रात गये लौट पड़ो तो परसों दोपहर तक यहाँ आ सकते हो। चांदनी रात है। लौटते समय मार्ग नहीं भूलोगे। जो कुछ उत्तर दें उसका भुगतान मुझे तुरन्त आकर करना। लौटने पर सोना पुरस्कार में दूँगा।’

कपिञ्जल ने बड़ी विनय के साथ उत्तर दिया,—‘आपका ही दिया खाता हूँ। परसों दोपहर तक लौट आऊँगा।’

‘हिमानी ने पूछा, ‘रेवती क्या कर रही है।’

‘जी संध्या कर रही है।’

‘संध्या कर चुके तब भेज देना।’

कपिञ्जल गौरी की कोठरी में गया। दीपक जल चुका था। संकेतों में बात हुई। भीतर से किवाड़ बन्द कर लिये। कपिञ्जल ने गौरी को थैली दे दी। दीपक के पास जाकर गौरी ने पत्र पढ़ा और एक क्षण के लिये माथा पकड़ कर रह गई। यह है दुष्टता की पराकाष्ठा ! गौरी ने कपिञ्जल के कान में पत्र का विषय सुनाया। गौरी हाँफ उठी थी। कपिञ्जल एक क्षण के लिये ध्यान मग्न हो गया ! निश्चल।

‘अब पूरा प्रमाण हाथ में आ गया बहन, राजकुमार के पास अभी जाता हूँ । वहाँ आरुणि है । उनके आमन्त्रितों में सम्भव है और भी कई विश्वसनीय होंगे । ये राक्षस अपने किये का पावेंगे । जाता हूँ ।’

‘भगवान तुम्हें सब सङ्कटों से बचावें भैया,’ कांपते स्वर में गौरी बोली ।

कपिञ्जल ने कहा, ‘धीरज को दृढ़ और साहस को स्थिर रखना, घबराने से काम नहीं चलेगा । केवल उस घड़ी की बात अचलता के साथ सोचो जब तुम्हें और मुझे यही न जाने क्या क्या करना पड़ेगा । मेरे अनेक साथी हैं जिन्हें तैयार कर लिया है । हम सब बहुत हैं ।’

‘मुझे कभी घबराया हुआ नहीं पाओगे, भैया । अब चिन्ता केवल यह है कि इस पत्र के समाचार से राजकुमार की विकृति कही और अधिक न हो जाय ।’

‘नहीं होगी बहिन ! इसके धक्के से सब विकार पलायन कर जायेंगे । मैं जाता हूँ ।’

‘भोर की यात्रा के पहले मुझे कुछ समाचार मिल जाय तो अच्छा होगा ।’

कपिञ्जल सतर्कता के साथ चला गया । थोड़ी देर बाद गौरी हिमानी के पास पहुँची । गौरी के मुख पर ओज था ।

हिमानी हँसकर बोली, ‘रेवती या तो तुम अब वह महुआ सार या ताड़करन चूर्ण खाओ या सदा ऐसी ही दिखो ।’

‘दवाइयो के नाम से ही रोग भाग गया । आप मुझे मरी-गिरी नहीं पायेंगी । मैं किसी से नहीं डरूँगी ।’

‘तुम्हारी संध्या और हमारे बालदेव की पूजा ने किया न अपना प्रभाव । आज कुछ बातें सुनाती हूँ । जो रह जावेंगी उन्हें कल अवश्य ।’

‘जी बहुत अच्छा ।’

‘तो पहली बात यह है कि राजकुमार के उस अत्याचार को मैं कभी नहीं भूली। आचार्य मेघ का उन बाप बेटों ने बड़ा अपमान किया था। उसे वे नहीं भूले। राजा ने महाशालों की भूमि छीनी, हम लोगों को बहुत सताया यह हम कोई नहीं बिसार सके। यज्ञ बलिदान वाले ब्राह्मण शूद्रों की तपस्या की गहरी नोच-खरोँच कभी विस्मृत नहीं कर सके।’

‘मे समझी नहीं।’

‘अपनी निजी और ब्याह से सम्बन्ध रखने वाली बातें कल बतलाऊँगी, शेष सब अभी बतलाती हूँ। इन्हीं में बहुत समय बीत जायगा। फिर मे सोऊँगी और तुम सो जाना। कल दूर नहीं है।’

‘जी हाँ’—गौरी ने कहा। वह झटपट सुनकर बिदा लेना चाहती थी, क्योंकि बहुत सी बातें पहले ही इधर उधर सुन चुकी थी। कपिश्रल भैया कोई अत्यन्त महत्वपूर्ण समाचार कब आकर सुनायेगे उसके सुनने के लिये उसका मन बहुत व्यग्र था।

[ ७३ ]

उसी दिन सूर्यास्त के पहले वेद और कल्पक नैमिषारण्य से आ गये । धूल धूसरित शरीर को स्नान और मन को सन्ध्यावन्दन से स्वच्छ करके वे रोमक भवन के उस कक्ष में जा बैठे जिसमें रोमक, आरुणि और भुवन पहुंच गये थे । स्वागत और अभिवादन पहले ही हो चुका था ।

वेद ने गुरुदेव का आशीर्वाद सुनाया,—‘उन्होंने आदेश किया है कि धर्म अर्थ और काम को इस प्रकार भोगो कि एक दूसरे से टकराते न फिरे । तीनों में से प्रत्येक की अति को वर्जित किया है ।’

रोमक ने कहा, ‘मैंने अपना कान पकड़ा । भविष्य में पूरा ध्यान रखूंगा ।’

वेद कहता गया,—‘उन्होंने यह भी कहा है कि मन का सन्तुलन प्राप्त करने पर रजोगुणी और तमोगुणी कर्तव्यपालन के समय आत्मा के निर्मल सतोगुणी प्रकाशमय कांच के सामने अपने को मत देखते फिरो । तन्मयता के साथ कर्तव्य का पालन करो और जब कर चुको तो जो कुछ किया है उसके लिये सन्ताप मत करो और न उसकी परछाही को आकांक्षा के साथ लौट लौटकर देखो । परिग्रह और विषाद की जलन को कभी मन में न आने दो ।’

रोमक ने शिरोधार्य किया,—‘यदि मुझे राज्य फिर से कभी मिला तो वर्णाश्रम का पूरा पालन करूंगा—एकान्त साधना द्वारा जो अध्ययन और चिन्तन करके समाज को कल्याणकारी मार्ग पर चलने का संदेश सुनाते हैं वे ब्राह्मण हैं, उनका पूजन करूंगा, वे कभी कोई दुःख नहीं उठा सकेंगे । कोई अपराध भी करेंगे, क्योंकि मानव-प्रकृति है तो उन्हें कम से कम दण्ड दूंगा; परन्तु यज्ञों में पशुओं का बलिदान कराने वाले और अन्य प्रकार के तामसी ब्राह्मणों का कोई आदर सत्कार न करूंगा और भरसक यज्ञों में पशु बलिदान न होने दूंगा । राष्ट्र की रक्षा में

अपना प्राण-विसर्जन करने के लिये तैयार रहने वाले क्षत्रिय हैं, समाज का आर्थिक कल्याण करने वाले वैश्य और वणिज । क्रम में ये ब्राह्मण के कुछ पीछे हैं । बर्ताव भी अपेक्षाकृत उनके साथ शास्त्रों के अनुसार कम-बढ़ होगा—'

‘और शूद्र पिताजी ?’ भुवन ने टोका ।

‘वे अपने अन्धविश्वासों के वशीभूत रहकर जड़ बने रहें वह दूसरी बात है । वैसे मैं तो शूद्रों का भी आदर सम्मान करूँगा । उन्हें सुखी बनाऊँगा । सबसे अधिक भूमि और धन-सम्पदा मैंने उन्हीं को दी है । वे ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य, अपने अच्छे गुण और वृत्ति के अनुसार, हो सकेंगे । मैं चारों वर्गों का सामञ्जस्य करके चलूँगा । अति किसी बात की भी नहीं करूँगा । परमात्मा के सृष्टि-कार्य को समझने का प्रयत्न करता रहूँगा ।’

रोमक उत्साह में था । वेद और कल्पक कुछ और भी चर्चा करना चाहते थे ।

वेद ने कहा, ‘पिताजी आप भोजन करलें । हम सब गुरु भाई एक साथ बैठकर खायेगे । तब तक थोड़ी देर कुछ और चर्चा करलें ।’

‘भुवन ने सकारा,—‘इधर उधर की हांकने का इसका स्वभाव है पिताजी ।’ और हँसा ।

रोमक समझ गया कि लड़के अपने अपने मनकी कुछ बातें करना चाहते हैं, विवाह का समागम है, न कि कोई दीक्षान्त समारोह ! वह उठकर हँसता हुआ चला गया,—‘अच्छा, अच्छा ।’

हिमानी की चर्चा स्वभावतः प्रधान विषय बनी । पत्थर के साथ आंधी का ब्याह हो रहा है इस वाक्य को लेकर उन तीनों ने भुवन की खिल्ली उड़ाई । भुवन की हँसी ने सहयोग दिया ।

वेद ने चर्चा मोड़ी,— जब गुरुदेव की सेवा में निवेदन पहुंचा तब कुछ क्षण के लिये ध्यानमग्न हो गये थे । फिर बोले उस लड़की का क्या



हुआ जो खेड़े में रहती थी तो मैंने जैसा कुछ तुम लोगों के साथ यहां की यात्रा के समय उन गाँव वालों से सुना था बतला दिया कि बाढ़ में बह कर मर गई ।’

भुवन को हँसी चली गई और वह बहुत उदास हो गया ।

‘क्या बात है भुवन यकायक अनमनें कैसे हो गये ?’ आरुणि ने पूछा ।

‘तुम्हे नहीं मालूम आरुणि, मैं जानता हूँ—भुवन उससे प्रेम करते थे । नाम उसका कुछ —’

‘ऐं ! ओफ़ !!’ आरुणि के मुह से निकला, ‘पर अब उससे क्या ?’

हां अब उससे क्या ? भुवन के मन ने कहा । गला ठीक करके भुवन बोला,—‘गुरुदेव को मालूम हो गया था । फिर दो बरस मैंने अत्यन्त संयम के साथ बिताये ।’

‘भुवन भाई, मुझे क्षमा करना’,— वेद ने संवेदना के साथ बतलाया, ‘एक दिन जब मैं और कल्पक बैलों का जुआं कंधों पर रखे खेत जोत रहे थे और बहुत कुड़मुड़ा रहे थे तुम आकर हँस दिये । हम दोनों को बहुत क्रोध आया । तुम्हारे प्रति हमारे मन में हिंसा ने घर किया, और जब तुम उस दिन खेड़े में उम लड़की के साथ बहुत घुल मिलकर बातें कर रहे थे मैंने भांप लिया और गुरुदेव से जाकर कह दिया । इस पर गुरुदेव मुझ पर प्रसन्न नहीं हुये । रुखाई से बोले जा अपना काम देख । बहुत दिनों पीछे गुरुदेव को प्रसन्न कर पाया । तुम भी भाई क्षमा कर दो ।’

‘अरे वाह ! क्षमा किस बात की ? तुमने उचित ही किया था । गुरुदेव के अनुशासन ने ही मुझे सँभाला । पर अब क्या—।’

कल्पक बोला, ‘छोड़ो भी इस गई-बीती को । भुवन के मन में अब कोई विषाद नहीं ।’

गौरी के चित्र को अपने मन से भटकारने के लिये भुवन ने ऊँचे स्वर में कहा,—‘कोई भी विषाद नहीं ।’

प्रहरी ने कमरे के किवाड़ खोले और निवेदन किया,—‘नैमिषारण्य से एक कोई बूढ़े ऋषि पधारे हैं । आना चाहते हैं ।’

वे चारों उछलकर एक साथ बोले,—‘क्या गुरुदेव !’

फिर वेद ने तुरन्त कहा,—‘वे नहीं हो सकते । प्रहरी से पूछा, ‘नाम बतलाया ?’

‘जी नहीं ।’

भुवन ने भीतर भेज देने का आदेश दिया । कुछ क्षण पीछे वृद्ध ऋषि उस कमरे में आ गये । तुरन्त अपने पीछे किवाड़ बन्द कर लिये । वे चारों खड़े हो गये । ऋषि के सिर के बाल विलकुल सफेद और लम्बे । दाढ़ी भी वैसी ही । गेरुये रङ्ग की कोपीन । वे चारों विस्मय में थे— इनको तो नैमिषारण्य में पहले कभी नहीं देखा ! ऋषि ने अविलम्ब दाढ़ी-मूछ उतार कर एक ओर रख दी । उन चारों ने पहिचान लिया— यह तो कपिञ्जल है !

योगी कपिञ्जल !

‘नमस्कार योगिराज !!’ उन लोगों ने बड़े हर्ष के साथ स्वागत किया । कपिञ्जल ने तुरन्त वज्रित किया ।

भुवन उमङ्ग में भर गया था,—‘वाह ! आप तो बड़े बड़े ब्राह्मणों से भी बड़े हैं !!’

कपिञ्जल ने धीर-गम्भीर स्वर में कहा,—‘चुप ! चुप !! इसे पढ़ो और तुरन्त निश्चय करो । समय बहुत थोड़ा रह गया है । अच्छा हुआ वेद और कल्पक भी आ गये ।’

कपिञ्जल ने अपने वस्त्रों में से पत्र वाली थैली निकाल कर आरुणि के हाथ में दे दी जो आगे बढ़ आया था ।

भटपट थैली खोलकर आरुणि ने पत्र पढ़ा । पढ़ता गया और होठ से होठ सटाता गया, त्योंरी तो चढ़ ही गई थी । एक हाथ की मुठ्ठी तन गई ।

फिर वेद ने पढ़ा । पढ़ते ही पैर पटक दिया । मुंह से निकला, ‘ओफ़ !’

कल्पक छटपटा रहा था। तुरन्त उसने वेद के हाथ से पत्र ले लिया। कल्पक ने पढ़ते ही दबा हुआ चीत्कार किया,—‘हरे रे !’

पत्र में कोई अत्यन्त महत्वपूर्ण और गोपनीय रहस्य है—भुवन का कुतूहल प्रारम्भ से ही उत्कट हो गया था, परन्तु वह उसे सँभाल रहा था—पढ़े लेता हूँ अन्त में।

जब भुवन के हाथ में कल्पक ने पत्र दिया तब भुवन की उँगलियाँ काँप रही थी।

और दीपक के पास खड़े-खड़े पढ़ते ही वह सन्न रह गया। पत्र हाथ से छूट गया। कपिञ्जल ने उठा लिया। भुवन पास की एक चौकी पर लड़खड़ाते पैरों बैठ गया।

आरुणि ने दौड़कर उसके कन्धे पर हाथ रक्खा। बोला,—‘भुवन, सँभलो !’

कपिञ्जल ने कहा,—‘यह क्या ! उस दुष्टा के साथ ब्याह न होगा तो क्या बिगड़ जायगा ? बचने का और शत्रुओं के दमन करने का उपाय सोचो। कल का ही दिन तो बीच में है। भाग्य से यह पक्का प्रमाण हाथ लगा है।’

भुवन को जैसे किसी ने छाती में धूँसा मारा हो। बोला,—‘मैं इस राक्षसी को कभी नहीं चाहता था। ब्याह नहीं करना चाहता, परन्तु माता-पिता के आग्रह ने विवश कर दिया।’

‘तुम सच कहते थे भुवन, यह स्त्री बड़ी भयङ्कर है। मूर्ख मैं हूँ, तुम मूर्ख नहीं हो। तुमने उसका वर्गीकरण ठीक किया था,’ आरुणि ने अपना प्रायश्चित्त सा किया।

वेद अकुला उठा,—‘नील, हिमानी और दीर्घबाहु को तुरन्त पकड़ो।’

कल्पक ने समर्थन किया,—‘इसी पल; मैं भोजन किये बिना ही अभी आक्रमण के लिये तैयार हूँ।’

कपिञ्जल ने विरोध किया,—‘नहीं, व्यर्थ ही रक्त की नालियां बह उठेंगी। इन का सब का कर्ता-धर्ता मेघ तो यहां से दूर है। उसी ने यह सारा जाल बुना है। इनकी पकड़-धकड़ से उसका क्या हो जायगा? अपने को निर्दोष और आप सब को अपराधी घोषित करता हुआ योधाओं के साथ अयोध्या पर आ चढ़ेगा ! फिर ?’

आरुणि ने कपिञ्जल का साथ दिया,—‘ये ठीक कहते हैं। सहसा प्रवर्तन से बड़ी हानि हो सकती है। ठण्डक के साथ सोच-विचार कर समस्या का सामना करने की तैयारी करो। गुरुदेव ने सावधान किया था कि जहां तक बन पड़े रक्तपात को बचाना क्योंकि वे जानते थे कि कुछ न कुछ गड़बड़ होगी।’

कपिञ्जल ने पत्र थैली में रख कर ज्यों का त्यों बन्द कर लिया और अपने वस्त्रों में रख लिया। वैसा ही छद्मवेश रचकर बोला; ‘मुझे आज्ञा दीजिये, मैं चलूँ। बड़े भोर इस पत्र को लेकर मेघ के पास जाना है।’

कल्पक को सूझा, —‘इस पत्र की प्रतिलिपि रखलें।’ भुवन ने कहा, ‘उससे लाभ क्या? कुछ क्षण और ठहर जावें तो पिता जी भी यह पत्र पढ़लें और माता जी भी।’

कपिञ्जल ने मान लिया।

भुवन की आँखों में कृतज्ञता के आँसू भलक आये—‘आपने योगराज उस बार मेरे अकेले के प्राण बचाये थे, अबकी बार न जानें कितने अनगिनतों की रक्षा कर रहे हैं !’

कपिञ्जल ने तुरन्त प्रतिवाद किया,—‘पहली बात यह कि मुझे योगिराज मत कहिये। गुरुदेव का छोटा सा शिष्य मात्र ही होने का गौरव है मुझे—’

वेद ने उत्साह भरे स्वर में टोका,—‘आपने इन दिनों यहां आकर बहुत बहुत किया। पढ़ लिया। हम लोगों के शत्रुओं की टोह लगाते रहे और अन्त में उन पिशाचों के ऐसे सेवक बने ऐसे बन गये कि यह पत्र हाथ में कर लिया !!’

‘योग वहां साधा ! जानें किससे और कब !! बड़े चुपे हैं ये ।’

‘मेरे आराध्य ।—’ भुवन ने कहा ।

कपिञ्जल ने टोका,—‘मैं वैसा ही अपढ़ कुपढ़ आज भी हूँ । एक लड़की है वहां जो बहुत पढ़ी लिखी, बहुत ऊँचे चरित्र की और बड़ी धुन लगन की है । मैंने उसे अपनी बहिन बना लिया है । इसका सारा पुण्य उसी को है । सबसे पहले उसी ने इस षड़यन्त्र को अपने कानों सुना और मुझे बतलाया और उसी की कृपा का फल है जो मुझे यह पत्र हाथ में लगा । मैं तो छोटा सा निमित्त मात्र हूँ । जिस दिन अपनी उस बहिन से सुना उस दिन यहाँ आकर कुछ नहीं कह सकता था, क्यों कि व्यर्थ होता, उस लड़की के प्राणों पर वार हो जाता—’

‘आप और वह लड़की बड़े सङ्कट में हैं,’—आरुणि धीरे से बोला ।

‘बहुत बड़े सङ्कट में ! क्या हो ? भुवन ने गहरी चिन्ता व्यक्त की ।

कपिञ्जल ने कहा,—‘मेरे लिये कोई सङ्कट नहीं है । मुझे उसी की चिन्ता है । आपकी और महाराज की रक्षा के लिये मुमिरन किया करती है । एक दिन कह रही थी कि बाप बेटे की रक्षा करने में अपना अङ्ग अङ्ग कटवा दूंगी । बड़ी भोली और दुखिया है । उसके मां बाप नदी की बाढ़ में जब पहला दौंगड़ा बरसा बहकर मर गये । नैमिषारण्य से बरसों के बाद लौट रहे थे अपने घर अयोध्या आने के लिये अकेली बची—’

‘उसका नाम ?’ भुवन उछल कर खड़ा हो गया, होठों से शब्द फूट पड़े । आँखें पागल जैसी ।

‘नाम उसका हिमानी ने रेवती रख लिया है । वैसे मां बाप का दिया नाम गौरी है—’

‘गौरी ! गौरी !!’—भुवन के मुंह से छुटी हुई चीख में होकर निकला और तिर पकड़ कर धम्य से चौकी पर भरभरा गया ।

आरुणि बोला, 'ओह ! तो यह वही गौरी है !! डूब कर नहीं मरी थी । बहुत अच्छा हुआ बच गई । ऐं ! यह क्या भुवन !?' उसने भुवन को अपनी बांहों में भर कर दुलारा पुचकारा ।

भुवन सिसक रहा था ।

कपिञ्जल को आश्चर्य हुआ,— 'क्या बात है ?'

'साधारण सी बात,'—वेद ने कहा,— 'भुवन का उससे बरसों से प्रेम था । अब उसी के साथ इनका विवाह होगा । बस ।'

'बस जैसे ही उस चुड़ैल का और उन दानवों का दमन किया,'—कल्पक बोला ।

भुवन ने अपने को सँभाला । आरुणि की बांहों से छूटकर कपिञ्जल के परों पर गिरने को हुआ कि उसने छाती से चिपटा—लिया । कम्पित स्वर में कपिञ्जल ने कहा,— 'सुखी रहें आप और मेरी बहिन ।'

थोड़ी देर में वातावरण शान्त हो गया, क्योंकि सबकी आंखों में वही प्रश्न उतरा पड़ा था—अब क्या हो ?

वे सब रोमक के पास गये और सब हाल सुनाया । उसने और ममता ने पत्र पढ़ा । उन्हें रोष को नियन्त्रित करना पड़ा । वेद और कपिञ्जल ने संक्षेप में गौरी की कहानी बतलाई । रोमक और ममता कपिञ्जल के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हुये । 'ऐसी वधू का मिलना परम भाग्य की ही बात है' यह उन दोनों का भाव था ।

कपिञ्जल चला गया । सोम पुरोहित को बुलाया गया । उस रात उन सबने अपनी तैयारी की रूप रेखा बनाली ।

गई रात ममता लेटे लेटे सोच रही थी,— 'तभी भुवन इतना अनमना रहा करता था । इसीलिये वह इस सम्बन्ध को स्वीकार नहीं कर रहा था । मैंने स्त्री होकर भी यह बात न समझ पाई ! पर मुझे नैमिषारण्य का कोई भी हाल तो नहीं मालूम था ।'

[ ७४ ]

कपिञ्जल बड़ी सतर्कता के साथ अपने निवास स्थान पर लौटा । अपने जिस मित्र से उसने क्षत्रवेश लिया था उसे लौटा दिया । उस युग में एक श्रेणी के लोग इस प्रकार की वेश भूषा में स्वाँग रचा खेला करते थे और भुवन-हिमानी के होने वाले विवाह के उपलक्ष में नाचगान, खेलकूद, और स्वाँग चल ही रहे थे ।

रात अधिक जा चुकी थी । चन्द्रमा ऊपर था । जैसे इतने खुले में भी उसे ठण्ड न लग रही हो ! कपिञ्जल बहुत प्रसन्न था । वह गौरी से मिलने के लिये उत्सुक था—कहूंगा भुवन के माथे भीतर चक्कर काटने वाले सारे विकारों को इस पत्र के धक्के ने दूर भगा दिया है ! वह सुखी हो जायगी । उसका साहस दुगुना चौगुना बढ़ जायगा । परन्तु किस बहाने मिलूँ ? हूँ—ठीक है वहाँ किसी ने टोका तो कह दूँगा कि यात्रा व्यय कम पड़ता था, पूर्ति कराने आया हूँ ।

कपिञ्जल गौरी की कोठरी पर पहुँचा । किवाड़ बन्द थे । किवाड़ों की एक बहुत बारीक संधि में होकर टिमटिमाते दीपक का प्रकाश आ रहा था । अभी सोई नहीं है । हिमानी के सदन की आहट ली । वहाँ बिलकुल स्तब्धता थी । सो गई है । ठीक रहा । कपिञ्जल ने गौरी की कोठरी के किवाड़ पर बहुत धीरे से ठकठक की । गौरी जाग रही थी । उसने धीरे से किवाड़ खोल दिये और खुले रखे । वह भीतर बैठ गई, कपिञ्जल द्वार की चौखट पर—कोई आजावे तो तुरन्त देख लूँगा और दोनों सावधान हो जायेंगे । इतनी रात आकर बात करने का बहाना भी उसने गौरी को सुझा दिया ।

कपिञ्जल ने बहुत धीमे स्वर में उत्सुक गौरी को बतलाया,—‘वेद और कल्पक भी आ गये हैं । पत्र को पढ़कर किसी का कुछ हाल हुआ और किसी का कुछ । राजा रोमक और रानी ममता को बड़ा क्षोभ हुआ । अब सब तैयारी पर चिपट गये हैं ।’

बहुत बड़ी बात हुई। तुम्हें देखकर वे सब बहुत प्रसन्न हुये होंगे,’ गौरी ने कहा। वह कुछ और भी सुनना और जानना चाहती थी। उत्सुकता पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी।

कपिञ्जल ने उस ‘कुछ और’ को अन्त के लिये रख लिया था।

‘हां बहिन बहुत ही हर्ष मग्न हो गये थे। देखो न बाजार बाजार और गली गली में मोद प्रमोद छाया हुआ है,’—कपिञ्जल बीच बीच में कुछ ऐसी भी मिलाता जाता था कि कोई यकायक आजाय तो असली बात की कड़ी तोड़ने और नकली की जोड़ने में कठिनाई न पड़े,—‘राज-कुमार की दशा तो विचित्र ही हो गई थी—’।

‘माथे का विकार ?—‘गौरी का गला काँप गया।

‘सब चला गया बहिन। दूर भाग गया। तुम्हारा नाम भी आकर ही रहा—’।

‘क्या भैया क्या !’ गौरी अपने को सँभाल न सकी।

‘इस काम का सारा पुण्य वे सब मेरी भोली में डाल रहे थे तो मैंने बतला दिया कि मेरी बहिन को श्रेय है। एक बात मैं आज तक नहीं जानता था। वह वहां मालूम हुई। उन सबको भ्रम था कि तुम माता पिता के साथ डूब गई हो ! मैंने जब ठीक बात बतलाई तो भुवन तुम्हारा नाम पुकार कर चीख पड़े और रोने लगे। यह कहो कि आरुणि ने उन्हें सँभाल लिया नहीं तो नीचे गिर पड़ते और चोट खा जाते। वेद की एक बात मुझे बहुत अच्छी लगी। अरी बहिन ! हैं !!

गौरी रो रही थी और सिसकियों को दबा रही थी। कपिञ्जल जब बात कर रहा था उसके नेत्र और कान कोठरी के बाहर की आहट लेने पर लगे हुये थे इसलिये उसने उन सिसकियों को नहीं सुन पाया।

‘सावधान ! सावधान बहिन !! यदि कोई यकायक आ जायेगा तो बहुत बुरा होगा। एक और बड़ी बात सुनाता हूँ। शान्त होकर सुनो।’

गौरी ने घोर प्रयास करके अपने को संयत किया।



‘क्या है भैया ?’ गौरी का स्वर बहुत क्षीण था जैसे कोई सिसकी बोली हो ।

‘तुम ऐसे नहीं मानने की । मैं चला । जब वहां से लौटूंगा तब सुनाऊंगा,—’ कपिञ्जल ने कहा और चौखट पर से थोड़ा सा उठने का अभिनय किया ।

‘नहीं भैया नहीं । हाथ जोड़ती हूं । अब बिलकुल नहीं रोऊंगी ।’

कपिञ्जल बोला,—‘वेद ने कहा था कि अब भुवन का ब्याह तुम्हारे ही साथ होगा । रानी और राजा रोमक ने भी यही निश्चय किया है ।’

गौरी ने ठोड़ी से लेकर आंख तक अपना मुंह अञ्जल से छिपा लिया और मुड़कर खाट की पाटी को उङ्गलियों से कूरेदने लगी ।

‘भैया, मैं तो चाहती हूं कि उनके बचाने में मेरे प्राण चले जायें तो सब कुछ पा गई’,—गौरी ने बहुत धीमें परन्तु दृढ़ स्वर में कहा ।

‘पगली है मेरी बहिन,—’ अब की बार कपिञ्जल के स्वर में कम्प था । आंख में जो एक आंसू बरबस आ गया था, कपिञ्जल ने तुरन्त पोंछ डाला ।

बोला, ‘बहुत सावधानी और साहस का काम है । खूब स्थिर बनी रहना । मैं अब जाऊंगा ।’

गौरी ने हामी का सिर हिलाया ।

कपिञ्जल चला गया ।

गौरी ने किवाड़ बन्द कर लिये और दीपक बुझा दिया । बाहर से चन्द्रमा की किरणें प्रकाश की मन्द भाँई भीतर भेजने लगीं । गौरी हाथ जोड़कर खड़ी हो गई और देर तक खड़ी रही । आंखों से आंसू भर भर कर उसकी प्रार्थना पर अर्घ्य चढ़ा रहे थे । शरीर की नसों में इतना स्पन्दन था कि हाथ में हथियार लेकर किसी भी सङ्कट समूह में कूद सकती थी ।

रात में उसे बहुत ही कम नींद आई । सवेरे उठी तो थकावट बिलकुल नहीं; अङ्ग अङ्ग में शक्ति की प्रतीति थी ।

[ ७५ ]

कपिञ्जल जब मेघ के गांव की ओर जा रहा था उधर से उसे वही व्यक्ति मिला जो कुछ ही दिन पहले नील के पास मेघ का सन्देश ले गया था। उसने कपिञ्जल को पहिचान लिया।

‘कहाँ जा रहे हो ? कौन हो ?’

‘आचार्य के मेघ के गांव। नील जी का सेवक हूँ।’

‘काहे के लिये जा रहे हो ?’

‘एक बहुत आवश्यक काम से।’

‘क्या काम है ऐसा ?’

‘उन्हीं से निवेदन करूंगा।’

‘किसी का कोई पत्र लाये हो ?’

‘पत्र लाया है एक। वह दूसरे मार्ग से गांव निकल गया होगा।’

वह व्यक्ति हँसा,—‘मैं केवल इतना ही जानना चाहता हूँ कि नील ने कोई पत्र भेजा है या नहीं। मैं नील के पास इसी प्रयोजन से जा रहा था।’

‘भेजा है अवश्य। उसी नौकर के पास है। मुझे तो एक सन्देश का भुगतान करना है।’

‘ठीक है। ठीक है। मैं सन्तुष्ट हो गया। लौट चलता हूँ तुम्हारे साथ। सीधे रास्ते ले चलूंगा।’

वह व्यक्ति कपिञ्जल के साथ हो लिया। संध्या के कुछ पहले दोनों उस गांव पहुँच गये। मेघ की लम्बी चौड़ी कुटी में पहले की अपेक्षा बड़ा समूह था।

कपिञ्जल ने मेघ के हाथ में पत्र दिया। सन्ध्या के प्रकाश में वस उसे नहीं पढ़ सकता था। उस व्यक्ति को पढ़ने के लिये दिया गया।

मेघ ने कहा, ‘तुम बाहर जाओ दास।’ कपिञ्जल बाहर जाने को हुआ।

जो व्यक्ति कपिञ्जल के साथ मार्ग में हो लिया था उसने सराहना की,—‘बड़ा चतुर और सतर्क है यह । बहुत पूछने पर भी इसने यह नहीं बतलाया कि पत्र साथ में लिये है । कहता था कि कोई और सेवक पत्र लेकर आगे निकल गया है मुझे तो वैसे ही कुछ कहना है ।

‘कहना है कुछ ?’

‘जी नहीं,’ कपिञ्जल ने उत्तर दिया ।

मेघ प्रसन्न हुआ,—‘अच्छा आँगन के ही एक कोने में बैठ जाओ ।’

कपिञ्जल एक कोने में सिकुड़ कर जा बैठा—जहाँ से वह सब कुछ देख और सुन सकता था । पत्र पढ़कर सुनाया गया । सबके सब हर्ष मग्न हो गये ।

‘सफलता की कुन्जी हाथ लग गई । अब कोई कसर नहीं रहेगी,—कई सामन्तों ने कहा ।

मेघ बोला, ‘आगे न कहना कि दीर्घबाहु बुढ़ू है, ऐसा है वैसा है ! कितनी जल्दी मान गया !!’

एक ने कृतज्ञता प्रकट की,—‘अपनी शासक मण्डली में उसको ऊँचा पद दिये रहेंगे ।’

‘कही उतनी ही जल्दी बदल भी न जावे । पत्र को सावधानी के साथ सुरक्षित रख लेना चाहिये ।’ दूसरे महाशाल ने चेताया । ‘मुझे दे दो पत्र । मैं रक्खूँगा अपने पास ।’ मेघ ने कहा और पत्र को लेकर अपने उत्तरीय के नीचे सावधानी के साथ रख लिया ।

रात के तीसरे पहर कूच कर देने का निश्चय किया गया । कपिञ्जल पहले ही चला जाना चाहता था । मेघ ने रोक लिया,—‘नहीं, हम सब के साथ ही चलना । दिन के दोपहर तक अयोध्या पहुँच जायेंगे ।’ कपिञ्जल को मेघ ने नहीं पहिचान पाया ।

×                      ×                      ×                      ×

उसी दिन संध्या के पहले हिमानी ने गौरी को अपने और अधिक घनिष्ट सम्पर्क में किया । वह बढ़िया साड़ी जो उसने एक दिन गौरी को

देते देते सन्दूक में फिर से रख दी थी निकालकर दी। सोने के कुछ गहने भी दिये।

‘मैं गहने नहीं पहिनुंगी। इनके पहिनने पर काम नहीं कर सकूंगी’, गौरी ने कहा।

हिमानी हँस पड़ी। फिर गम्भीर होकर बोली, ‘अच्छा, अच्छा। सोने के सिक्के देती हूँ। ये तो नहीं हैं बोझिल?’

‘रक्खूंगी कहां मैं इन्हें? मेरे पास छोटी सी पेटी तक नहीं है।’

‘मैं दूंगी। ये सिक्के अभी देती हूँ और गहनों के साथ ही बहुत से कल के बाद। उत्सव काजों पर पहिन लिया करो। फिर किसी भले वर के साथ तुम्हारा ब्याह करवा दूंगी।’

गौरी ने सिर नीचा कर लिया।

‘अब मेरी उन अत्यन्त निजी बातों के बतलाने की घड़ी आगई है।’

गौरी का सिर झटके के साथ ऊँचा हो गया। बड़ी आंखें विस्फीत हुईं।

‘तुम्हें बहुत सी बातें पहले ही सुना चुकी हूँ। राजा ने यज्ञों में पशुओं का बलिदान बन्द कर दिया। बहुत लोगों को, जिनमें कुछ ब्राह्मण भी हैं, बुरा लगा। बुरा किया न राजा ने?’

‘हाँ हाँ।’

हम लोगों पर बाप बेटे अब भी रूठे हुये हैं। उस दिन देखा जब मैं जयमाल डालने गई वहाँ से कैसे उठकर भागे थे राजकुमार जैसे मैं कोई डाकिनी होऊँ! स्मरण है न?’

‘नहीं भूली हूँ।’

‘वे मुझे नहीं चाहते, मैं उन्हें नहीं चाहती। जयमाल और यह ब्याह सब ढोंग स्वांग है। यदि विवाह हो गया तो ये मुझे जीवन भर सतायेंगे।’

‘मेरी समझ में आ रहा है।’

‘और ऊपर से मेरे पिता की सारी धन-सम्पत्ति डकार जाने पर तुल गये हैं।’

‘स्पष्ट है । फिर ?’

‘फिर क्या ? ब्याह नहीं होना चाहिये ।’

‘यह सब तैयारी ?’

‘बतलाऊँगी, बतलाती हूँ । मुझे दिखता है कि रोमक और भुवन ब्याह के समय मण्डप के ही नीचे या वहीं कहीं मेरा गला दबोच डालेंगे और सारा धन लूटकर चलते बनेंगे । एक बार इन्होंने हमारा सारा अन्न लूट लिया था । तभी तो रोमक को गद्दी पर से उतारने के प्रयत्न हम सब को करने पड़े । काला सांप यदि काटने को दौड़े तो उससे बचने के दो ही उपाय हैं—या तो उसके सामने से भाग जाय, या उसे बिना दांत का कर दे । ये दोनों ठहरे बड़े बड़े भुजङ्ग । भागकर इनसे बच नहीं सकते । दांत इनके बिना वध के तोड़े नहीं जा सकते । । इसलिये—’

गौरी की आँखें पागलो जैसी विस्फारित हो गईं और उँगलियाँ जैसे कुछ पकड़ने के लिये फड़क गईं । देह ऐसी हिली मानो उछलने के लिये तैयार हो । दाँत भिंच गये जैसे काट खाना चाहती हो !

हिमानी को गौरी के इस भाव से लगा कि मेरे उद्देश्य के साथ इसे पूरी सहानुभूति है ।

‘रेवती, सोचो तो तुमको इतना सुनने से ही पागलपन सवार हो गया है । एक मै कि इतने समय से चुपचाप यह सब सहती चली आ रही हूँ । तुम्हारी मोटी उँगलियाँ कोई हथियार मांग रही हैं जिनसे तुम मेरी सहायता कर सको । दूगी, एक बढ़िया पैनी छुरी—’

‘वह सब मण्डप के ही नीचे या ?—’ गौरी का गला भरा गया ।

‘मेरी रेवती इतना न अकुलाओ । धीरज से काम लो ।’

गौरी को कपिञ्जल के वे शब्द याद आ गये,—‘सावधानी और साहस का काम है, स्थिर बनी रहना,— मुझे यह क्या हो गया था ?

गौरी स्थिर होने लगी ।

हिमानी ने कहा,—‘मण्डप के नीचे नहीं । वहाँ होकर तो मेरा ब्याह दीर्घबाहु के साथ होगा । बालदेव के सामने भुवन की बलि

चढ़ाऊंगी,' गौरी के भीतर फिर ज्वाला भभकी, परन्तु उसने अपना दमन कर लिया। हिमानी की आंखें उसे ऐसी लगीं जैसे किसी कथा कहानी की पिशाचनी की हों। उसे हांफ आने लगी थी।

दम साधकर हिमानी मिठास के साथ बोली, 'तुमने उस दिन सुन लिया था दीर्घबाहु मुझे किस तरह का सम्बोधन कर रहे थे—उस दिन जब मैं और वह अपने अपने सिर पर तिरा पहने थे ?'

गौरी को स्मरण था परन्तु उसने कहा,

'कुछ ऐसा ध्यान नहीं दिया। अपने काम से प्रयोजन रखती आई हूँ।'

'सो तो मैं तुम्हें परखती रही हूँ। वे मुझे कई बरसों से चाहते हैं। हम लोगों ने प्रण कर लिया था कि रोमक और भुवन से बदला लेने के उपरान्त ही विवाह करेंगे। उन दोनों को वहीं समाप्त करके विवाह होगा और फिर हम सबका राज्य शासन सदा के लिये।'

बदले की भावना के साथ यह आकांक्षा भी जुड़ी हुई है ! गौरी की समझ में बैठ गया।

हिमानी ने कहा, 'तो सोने के सिक्के और कुछ गहना लेलो। पेट्टी देती हूँ। उसमें रखे रहना।'

'जी क्या करूँगी वहां रखकर ? जैसे वहाँ तैसे यहां।'

'वाह वाह ! यह भी कोई बात है ? मेरा कहना मत ढालो। अच्छा सोने के सिक्के अपनी साड़ी के छोर में बाँधलो।' कल वह साड़ी पहनना भला। गहने तुम्हारे लिये अपने पास रखे रहूँगी।'

'अच्छी बात है।'

हिमानी ने गौरी को सोने के सिक्के दिये। उसने साड़ी के छोर में बाँध लिये।

हिमानी ने कहा, 'अब बालदेव के मन्दिर में चलो। संध्या हो गई है।'

वे दोनों बालदेव के आश्रम में दीपक लेकर गईं। फूल मालायें चढ़ाई और हिमानी मनही मन सुमरने लगी,—हमारे शत्रुओं का नाश करना इत्यादि। गौरी को स्मरण हो आया—जब मेरा प्रसङ्ग आया वे रो पड़े थे; मूर्छित हो रहे थे कि उनके सहपाठियों ने सँभाल लिया 'यदि उन्हें पहले ही सब कुछ मालूम हो जाता तो—गौरी के चेहरे पर उदासी नहीं आई—खिल उठा। गौरी के मुँह से प्रार्थना निकली—'परमात्मन् मुझे शक्ति देना !'

हिमानी प्रसन्न हुई,—'हां यह भी ठीक है चलो मैं तुम्हें छुरी देती हूँ।'।

×

×

×

×

गौरी ऊषा काल में जाग उठी। श्यामा ऊषा के आगमन का गीत अपनी स्वरलहरी में गा रही थी। उधर से दूसरी, उसके बोल में अपने बोल मिला रही थी। गौरी ने बाहर निकल कर देखा उद्यान लहरा रहा है। गौरी वह सब विज्ञान की दी हुई समझदारी के साथ नहीं प्रत्युत श्रद्धा द्वारा प्रदान की हुई अनुभूति के साथ देखने लगी।

'आज—आज या तो यह राक्षसी नहीं या मैं नहीं।' ।

×

×

×

×

दोपहर के पहले ही कपिन्जल लौटकर आ गया। उसने मेघ और उसके सहवर्गियों के तीसरे पहर तक आ जाने का समाचार दिया। नील हर्षमग्न हो गया। कपिन्जल को कुछ स्वर्णखण्ड पुरस्कार में मिल गये।

नील के निवास के सामने जो पशुशाला थी उसका लम्बा-चौड़ा कमरा सुथरा कराया गया—इसमें अतिथि ठहरेंगे। भवन के सामने सड़क चौड़ी थी। वहाँ बड़ा मण्डप बड़ी शीघ्रता के साथ बनाया-सजाया जा रहा था।

हिमानी ने कपिन्जल को गौरी के हाथों बुला भेजा। कपिन्जल ने गौरी को संक्षेप में सब सुना दिया और कहा,—'सामने की पशुशाला में

इनके कुछ लोग इकट्ठे होंगे तो मेरे अनेक सहवर्गी उनका सामना करने के लिये कमर कसे रहेंगे । दर्शकों के वेश में आर्यंगे ।’

गौरी ने अपनी बीती का सार सुनाया,—‘तुम्हें भैया भीतर ही रहना पड़ेगा ।’

‘बहुत समय है । समझा दिया और समझा दूँगा ।’

‘राजा और राजकुमार को कुछ बतलाना होगा ?’

‘घबराओ नहीं । देखूंगा ।’

जब कपिन्जल हिमानी के सामने पहुँचा तो उसने कहा, ‘तुम और रेवती बहुत से फूल बीन लाओ । हार यहीं होकर बनाना । आज तुम्हें क्या क्या करना है बतलाऊँगी ।’

× × × ×

तीसरे पहर मेघ का दल आ गया । सूर्य की किरणें कोमल पड़ गई थी । नगर में नाच-रङ्ग की बाढ़ सी आ गई थी । कहीं सामन्त और अन्य जन जुआ खेल रहे थे । भोजनालयों में खाऊखप्प खीर, पुये, दही, गुड़, शकर, मधु, फल इत्यादि गले-गले तक ठूँसे चले जा रहे थे क्योंकि रोमक ने अपनी ओर से सेंटमेंत के खाने का प्रबन्ध पहले से कर रखा था । मेघ ने देखा कि इनको क्या मालूम सिर के ऊपर मृत्यु मंडला रही है—हां इनकी मृत्यु नहीं, उनकी !

मेघ और उसके प्रमुख साथी शीघ्र ही नील, दीर्घबाहु इत्यादि से मिले । तब हुआ कि भवन के सामने की पशुशाला के लम्बे कमरे में मेघ के सामन्त संध्या होते ही आ जमेंगे । जुआ खेलने और मनोविनोद का स्वांग रहेगा । जैसे ही नील-भवन के भीतर शंखनाद हुआ कि निकलकर रोमक के साथी-सहयोगियों पर टूट पड़ेंगे जो सड़क पर खड़े बड़े मण्डप के नीचे नाचरंग में उस समय आनन्द-मुग्ध होंगे, और, भीतर रोमक भुवन इत्यादि समाप्त ।

कुछेक ने शङ्का की, घटना के बाद जन-मन में किसकिसापन आ सकता है, वह कैसे दूर किया जावेगा ?



मेघ ने शङ्का का समाधान किया,—‘पहले काल में कई बार ऐसा हुआ है कि किसी एक सुन्दर कन्या के विवाह के लिये दो वर आ गये । कन्या ने कह दिया कि पहले आपस में निबट लो । दोनों लड़ गये । एक मारा गया । जो जीत गया उसके साथ विवाह हो गया । रोमक या जो भी बीच में आ पड़ा वह भी समाप्त हुआ । आज कोई नई बात न होगी ।’

दीर्घबाहु ने कहा, ‘मे ले लूंगा वह सब अपने सिर । ब्याह तो अन्त में मेरा ही होता है । घटना के उपरान्त तुरन्त घोषित कर दूंगा कि भीतर मण्डप के नीचे मेरा उन लोगों से द्वन्द्व हो गया और मैंने मार गिराया । होगा भी यही जैसा कि मुझे दीख रहा है । बस ।’

‘होगा कुछ और ।’ नील बोला ।

‘कुछ भी सही, मैं सब बातों के लिये कमर कसे तैयार हूं ।’

दीर्घ की बात पर मेघ के कई सहयोगियों को सन्तोष के साथ सन्देह भी हुआ । उन्हें अपने शस्त्रों का विश्वास था ।

थोड़ी सी और बातें करने के बाद —किस को क्या करना है—वे सब अपने अपने निदिष्ट काम पर लग गये ।

×                      ×                      ×                      ×

जब गौरी और कपिन्जल उद्यान से फूल लेकर आ गये । हिमानी ने कपिन्जल को अपनी योजना का कुछ अङ्ग बतलाकर शेष के लिये गौरी के हवाले किया और कहा, ‘साथ बने रहना है और आवश्यकता पड़ने पर गौरी की सहायता करनी है ।’

‘जी, बहुत अच्छा’, कपिन्जल ने नतमस्तक स्वीकार किया ।

‘तुमको सारे सेवकों का मुखिया बनाऊंगी । काम थोड़ा अधिकार बहुत । है यह कि बिना मेन मीख के जिस तरह काम करते चले आये हो वैसे ही करते चले जाओ,’— हिमानी ने प्रोत्साहन देते हुये सावधान किया ।

सिर झुकाये हुये कपिञ्जल ने कहा, 'जी अपने कर्तव्य पर देह भी दांव पर लगा दूँगा ।'

'हम तुम पर बहुत प्रसन्न हैं दास । पुरस्कार पाओगे ।'

गौरी की अधमुँदी तिरछी चितवन में साहसिक व्यङ्ग्य होठों की भीनी मुस्कान में चिन्ती और गाल की एक छोटी सी रेखा के स्पन्दन में भीतर के हलचल की झटक थी । रेवती में मेरे इस कृत्य के साथ कितना अपना-पन है; हिमानी को लगा ।

'एक जगह बैठकर कई हार गूँथ डालो—छोटे बड़े सब तरह के । सन्ध्या के उपरान्त क्या क्या करना है बतला दूँगी ।'

[ ७६ ]

चौथा पहर लग चुका था। सूर्य की किरणों धरती को झुक झुक कर सहला रही थीं। हरियाली को सोना मिल रहा था।

रोमक भवन के आगे भी मण्डप और वितान तने खड़े थे। उसारों में वाद्य मधुर स्वरों में मन्दलय के साथ बज रहे थे। ऊपर ऊपर आनन्द मग्नता मिचकियाँ ले रही थी—भीतर भीतर सतर्क तैयारी और सावधानी अनेक रूप धारण करती चली जा रही थी। कोई लोहे के छल्लों के जालीदार कन्चुक अपनी देह पर सटा रहा था। कोई कवच, झिलम और टोप लगा रहा था। उनके ऊपर रंग बिरंगे ऊर्नी और रेशमी वस्त्र। झिलम टोप पर विविध रंगों के रेशमी उष्णीश कटि में फेंटे। पैरों में नोक और भुब्बेदार जूते। कमर से नीचे टखनों तक लटकने वाले श्वेत परिधान। ऐसे लगते थे ये बराती जैसे चलते फिरते छोटे मोटे भाड़ हों। रोमक ने भुवन और उसके सहपाठियों और संगियों ने इसी प्रकार की वेशभूषा की। यहां तक कि सोम पुरोहित ने भी।

भुवन और उसके तीनों सहपाठी भवन की उस कोठरी में गये जहाँ विविध प्रकार की तलवारों का संग्रह था। अपनी अपनी रुचि के अनुसार चुनाव करने लगे।

वेद ने भुवन से कहा, 'तलवार भाँजने के लिये तुम्हें सम्भव है कि छोटा सा ही स्थान मिले। छोटी या मझोली ले लो। हिमानी का शरीर होगा भी कितना ?'

भुवन एक तलवार को चुनते चुनते बोला 'मैंने उसे एक बार चाबुक से पीटा था। यदि आज वह मेरी पीठ पर दुगुने तिगुने भी जड़ दे तो सह लूँगा।'

'तो कवच उतार दो न। इस पर तो लोहे का कोड़ा भी तुम्हें फूल की तरह लगेगा।'

'वाह ! तुमको हँसी की बात जान पड़ती होगी, मैं बिलकुल हृदय की कह रहा हूँ।'

आरुणि ने सुनना चाहा, हिमानी को क्यों पीटा था। भुवन ने संक्षेप में बतलाया।

आरुणि ने कहा, 'ऐसा न हो कि वहाँ उस समय पश्चाताप के पानी से गीले पड़ जाओ और बिना हाथ पैर हिलाये ही मार दिये जाओ।'।

'नही आरुणि, मैं वहाँ लोहे का खम्बा बन कर जाऊँगा।'।

रात लगे पीछे वर यात्रा का मुहूर्त था। बरात चक्कर काटते धीरे धीरे नील भवन के सामने पहुँचनी थी। फिर वहाँ के बड़े मण्डप के नीचे शिष्टाचार, अभिनन्दन, आमोद-प्रमोद। एक पहर यों चला गया। फिर दूसरे पहर में विवाह का मुहूर्त !

भुवन दूल्हा बनकर अपने गुरु भाइयों सहित ममता के सामने पहुँचा। ऊपर लहर और भीतर जाग पड़ने वाले ज्वाला मुखी की निश्शब्द भंभा। साहस की बातें सोचते तै करते भुवन की आँखों में दर्प और चेहरे पर रूखापन आ गया था। उसकी माता के भीतर की चिन्ता स्वभाव के तेज और धैर्य को जैसे ग्रसने ही वाली हो।

भुवन ने माँ के चरणों में माथा टेका। दूल्हा के ब्याह पर माँ के चेहरे पर मुस्कान की आधी रेखा भी नहीं। आँखों में आँसू जिन्हें वह पोंछ भी नहीं पा रही थी।

'माँ आशीर्वाद दीजिये कि हम क्षत्रियों का जैसा काम करें',— भुवन ने धीरज से साधे स्वर में विनय की।

ममता का आशीर्वाद उसके गले तक आकर हिलकी में समा गया।

भुवन उठ खड़ा हुआ उसकी आँखों में भीतर का पराक्रम आ बैठा। हाथ जोड़ कर बोला,—'आप तो माता जी.....' गले से निश्चय की प्रखरता बजी।

ममता ने भुवन के सिर पर हाथ फेरा। फेरती रही। जब अपने को संयत कर लिया दूटटे स्वरों में आशीर्वाद दिया,—'सुखी रहो। विजय पाकर लौटो।'।

वेद ने पैर छुये और कहा, —‘माता जी मैं दूल्हा का छोटा भाई हूँ ।’  
ममता ने आँसू पोंछ डाले । मुस्कराई जैसे घने कुहरे में से यकायक  
सूर्य की किरण फूट पड़ी हो, —‘चिरजीवी हो बेटा ।’

कल्पक ने भी इसी प्रकार आशीर्वाद पाया । आरुणि की भी समझ  
में आगया कि मुझे क्या कहना चाहिये, —

‘माता जी, मैं दूल्हा का बड़ा भाई हूँ ।’ और उसने अपने मोटे बल-  
शाली हाथों ममता के छोटे से पैर छुये ।

‘पञ्चाल के विशाल गौरव, मेरे लाल, जियो, सुखी रहो ।’ अब  
ममता के स्वर का कम्प चला गया था और वह मानों तेज से भर  
रही हो ।

जब वे चलने को हुये ममता ने कहा, —‘गुरुदेव का उपदेश स्मरण  
रखना कि यदि पराक्रम तुम्हारे दायें हाथ में और धर्म हृदय में हो तो  
जय तुम्हारे हाथ में बनी बनाई ।’

वेद बोला, —‘माता जी, हम विजय को भुवन की गांठ से बांधकर  
लायेंगे ।’ और चल दिया ।

ममता भुवन की ओर देख रही थी—कदाचित्त मुड़े । परन्तु वह  
नहीं मुड़ा ।

×                      ×                      ×                      ×

नील भवन के सामने वाला मण्डप विशाल और बड़ा सजीला था ।  
छाया तने हुये रंगबिरंगे वस्त्रों की थी । मण्डप के खम्बे हरी पत्तियों के  
बेलबूटों से तीसरे पहर से ही सजाये जाने लगे थे । सन्ध्या तक सज गये  
और बेलबूटों के बहुत से पत्ते मुर्झा कर टपक गये । केवल द्वार के कदली  
खम्ब और उन पर लिपटे बेलबूटे हरे थे—ये बहुत पीछे लगाये सजाये  
गये थे ।

संध्या होते ही मेघ के सशस्त्र सामन्त नील भवन के सामने आगये ।  
उनको देखकर नील के तनमन की थकान दूर हो गई । मेघ उसके पास  
पहले ही आ गया था ।

मेघ ने उसे और भी प्रोत्साहित किया,—‘उस घड़ी तक ये सब पशुशाला के उस कमरे में आमोद प्रमोद करते रहेंगे फिर जैसे ही उन्हें वह सङ्केत मिला कि मैदान में आ कूदे। तुम्हारे भीतर का प्रबन्ध तो सब ठीक है?’

‘बिल्कुल आचार्य जी। नीकर चाकर सब हाथ के हैं।’

नील उन सामन्तों को पशुपालन के बड़े कमरे में आदर के साथ बिठला आया। वहाँ भोजनपान और जुये का प्रबन्ध था। वे सब भविष्य की आशा पर मौज में थे।

नील भवन के उसारों में वाद्य तीखे स्वरों में तीव्र लय के साथ बज उठे। तमाशा करने और देखने वाले इकट्ठे होने लगे। इनमें ऐसे भी थे जो काईयेपन के साथ इधर उधर की निरख परख भी कर रहे थे। दीपस्तम्भों के दीप जला दिये गये। चहल पहल बढ़ गई।

×

×

×

×

हिमानी ने अपनी सजावट कराई। सिर की मणिमुक्ता मालाओं के ऊपर फूलों की थोड़ी सी मालायें उसके भँवर वाले केशों के तेल को दमक देने लगीं। गले में हीरे माणिक मोतियों के हार, भुजाओं पर सोने के जड़ाऊ भुजबल और वलय कलाइयों पर सोने की जड़ाऊ चूड़ियाँ, अत्यन्त बहुमूल और बड़े बड़े छपकों वाली रंगीन साड़ी पर कमर में सोने की चौड़ी जड़ाऊ करधोंनी और पैरों में महावर के ऊपर झुन झुन करने वाला आभूषण। माथे पर लाल बिन्दी जो उसके हिमानी श्वेत रङ्ग को चमका रही थी। अंगराग, अलकत्ताकरस, अंजन, पुष्परेणु, केसर कपूर मिश्रित चन्दन सब यथा स्थान काम में लाये गये थे। सजावट करने वाली अपने शिल्प पर प्रसन्न हो हो जा रही थीं। वे उस समय नहीं जानती थीं कि उन्होंने किसी की मौत को सजाया है।

हिमानी ऊँची चौकी पर टिके हुये लम्बे चौड़े कांच के सामने गहुँची। जो कोई भी देखता उसकी सजधज और रेखाओं में आकर्षण

की प्रचुरता पाता। हिमानी ने ध्यान के साथ अपना रूप देखा—इतनी सुरूपता किसी में भी न होगी ! किसके पास इतने गहने होंगे ? और मेरी इसी एक साड़ी पर न जानें कितनी राज कुमारियों की साड़ियाँ न्योछावर हो जायंगी। इस समय मुझे कोई भी रानी राजकुमारी आकर देखे तो ईर्ष्या के मारे राख हो जायगी। उस भाव को देखकर मुझे हर्ष भी होगा और दया आयेगी। हिमानी मुस्कगई। रागरंजित कपोल उसकी बादामी आंखों की कालिमा को रँगने लगे। मेरी आंखें उस समय कैसी होंगी ? मुस्कान चली गई, नाक का नथना थोड़ा सा ऊपर की ओर सिकुड़ा। होठ से होठ जा सटा। कुछ घड़ी पीछे ही बस उसका वक्ष उठने बैठने लगा। हिमानी के इस रूप को देखकर सजावट करने वालियों की प्रसन्नता खिसकने को हुई।

हिमानी ने काँच के पास से हटकर उनसे कहा, 'यहाँ का काम हो चुका। तुम सब जाओ। गाने बजाने की तैयारी करो। रेवती को भेज देना।'।

वे सब चली गईं। गौरी एक टोकनी में फूल मालायें लिये आ गई।

'वाह मेरी रेवती ! तुमने बहुत अच्छे बना डाले ये सब ! उद्यान में कल के लिये तो फूल बचे ही न होंगे।' हिमानी हँसी।

'जी दूसरे खिल जायंगे।' गौरी के स्वर में मार्दव नहीं था।

'तुम्हारी दृढ़ता को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ।'।

'काम बतलाती जाइये और देखती जाइये।'।

हिमानी और भी प्रसन्न हुई।

'किवाड़ बन्द करके इधर आओ।'।

गौरी ने किवाड़ बन्द कर दिये और उसके निकट जा पहुँची।

हिमानी ने अपने एक सन्दूक में से दो तेज छुरियाँ निकालीं। एक गौरी को दी।

'इसे अपनी पसलियों के पास छिपाये रखना। बालदेव के मन्दिर में जैसे ही भुवन आया कि पहला वार मेरा होगा। दूसरा तुम्हारा।

यदि भुवन ने मुझे विफल करने की चेष्टा की तो तुम मेरी सहायता के लिये मुट्ठी कैसे रहना । भुवन बचने न पावे । हिमानी के हाथ में छुरी चमक रही थी ।

गौरी की आंखों में भीषणता आ बैठी और नथनें फूल गये । हिमानी की दी हुई छुरी मुट्ठी में ऐसे कस गई मानो वह उसे पीसे डालती हो ।

हिमानी पुचकार कर बोली, 'अरी मेरी रेवती ! अभी यहाँ भुवन कहां है जो तुम इतनी तन गईं !!'

गौरी ने अपने को शिथिल किया । भरपिये हुये स्वर में कहा, 'मुझे कुछ वैसा ही दिखने लगा था ।'

'आलय में दांस भी रहेगा । संभव है तुम्हें उतना प्रयास और श्रम न करना पड़े । बहुत सीधा होने पर भी कुछ तो करेगा ही ।'

'जी बहुत कुछ ।'

'अब तुम वह साड़ी पहिन कर आ जाओ । एक बड़ी मोती मालायें पेशगी पुरस्कार में देती हूं । उसको पहिनो । मेरी सच्ची सखी जचोगी ।' हिमानी ने छुरी अपनी कन्चुकी के नीचे सावधानी के साथ रख ली।

'मैं मालावाला कुछ नहीं पहिन्गी । काम के समय कहीं उसमें हाथ फँस गया या अटक गया तो ? मुझे पहिनने का अभ्यास नहीं है । आपको अभ्यास है । अपनी जैसी मुझे न समझो ।'

है भी नहीं । मुझ जैसी इस जन्म में क्या कई जन्मों में न हो पावेगी ! पर निकली पक्के कलेजे की ।

'तुम बड़ी दूरदर्शी हो ! आरम्भ में समझी थी कि मरियल हो और बोदी ।'

'जी आपसे बहुत सीखा ।'

गौरी छुरी लेकर चली गई और थोड़ी देर में उस बढ़िया साड़ी को पहिनकर आ गई । एक क्षण के लिये हिमानी को लगा — क्या यह मुझसे अधिक दिप रही है ? अरे नहीं—न मेरा जैसा रंग है, न रूप, और न वेशभूषा ।



‘छुरी रखली ?’

गौरी ने पसलियों के पास हाथ रखकर संकेत में हमीं भरी ।

ढोल मृदङ्ग और रणतूर्य के दूर से आने वाले शब्द को सुनकर हिमानी ने कहा,—‘बरात आ रही है, चलो’ और फुफकार छोड़ी । गौरी की आंखें किंचित नीची हुई, भोहें सिकुड़ी और दाँत भिंचे । उसने केवल सिर हिलाया और फूली हुई दम को साधती हुई हिमानी के पीछे हो गई ।

× × × ×

बरात नगर में निकल आई थी ।

छज्जों पर नारियाँ मंगल गीत गा-गा कर भुवन के रथ पर फूल बरसा रही थीं । बरात के साथ एक भीड़ थी जिसमें कपिञ्जल के कुछ सहवर्गी भी थे । आरुणि वेद और कल्पक चौकसी के साथ कभी इस समूह में और कभी उस समूह में होकर पैदल चल रहे थे । इनके साथ रोमक के कुछ विश्वसनीय योधा भी थे ।

रोमक के संग रथ में पुरोहित सोम बैठा हुआ था । अनेक विपत्तियों का भुगता हुआ रोमक आने वाली समस्या के सामने छाती ताने था—जब तक मेरी छाती में एक भी सांस रहेगी मेरे पुत्र का एक बाल भी बांका न हो सकेगा ।

पुरोहित सोम ने उसके कान में कहा,—‘अयोध्या के नर-नारियों की यह पुष्प वर्षा आगे आने वाली विजय की पदचाप है ।’

‘आपका आशीर्वाद, आर्य ।’ रोमक ने पूरे हृदय के साथ संक्षेप में कृतज्ञता प्रकट की ।

× × × ×

नील भवन के सामने की पशुशाला के भीतर आँगन में कुछ भैंसें, थोड़ी सी गायें थीं । कुछ गधे, घोड़े, खच्चर और बछिया बछड़े भी थे ।

आँगन स्वच्छ कर लिया गया था, फिर भी जानवर तो जानवर ही हैं। लीद और गोबर के ढेर लगने लगे। उनके लिये नील के पास कोई स्थान था ही नहीं। फिर थोड़ी ही देर का तो काम था। मेघ के सशस्त्र सामन्त खा पीकर कोई किसी आमोद में थे कोई किसी में। कई जुआ खेल रहे थे। उनको एक बँधे संकेत पर मैदान में कूद पड़ना था ! इस समय बाहर वालों से, अरात-बरात से उन्हें कोई प्रयोजन न था।

एक ने दांव जीता तो चिल्लाया,—‘वह मारा है !’

दूसरा भी मौज में था। बोला,—‘आ रही है घड़ी जब हम तुम एक नहीं कई दांव मारेंगे।’

[ ७७ ]

बरात आ गई। बराती मण्डप के द्वार की दिशा में पैदल बढ़े। नील उस जमाव को देखकर अस्थिर हुआ। घिग्घी-सी बँध गई। मेघ ने देख लिया। धीरे से परन्तु फटकार के स्वर में बोला, 'है ! साहस, साहस !! आगे बढ़कर उन सबका स्वागत करो। मैं उधर मञ्च के पास जाता हूँ। मेरा काम स्वागत करने का नहीं है। मैं आचार्य हूँ।'

नील ने अपने को किसी तरह से संयत करके मेघ से कहा, 'यदि रोमक ने आपसे यहां क्षमा माँगी तो।'

'क्षमा दे दी तो फिर हाथ में रह ही क्या जायगा ? घबराओ मत क्षमा देकर आत्मघात नहीं करूँगा। मैं आंगन वाले मण्डप में चला जाता हूँ। क्षमा याचना के पहले ही बहुत कुछ हो जायगा। अपने यहां की रीति को याद रखना।'

'जी।'

मेघ वहां से चला गया। दीर्घबाहु नील के पास ही था।

धीरे से बोला,— 'आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें मैं भी क्षमा न करूँगा। जहां कहिये तहाँ उन्हें समाप्त करने को तैयार हूँ।'

दीर्घ की आतुर तत्परता ने नील को तुरन्त चेताया,— 'चुप चुप। वहीं सब होगा। मेरे साथ बने रहो। देखो, वे सब आ रहे हैं। आओ।'

नील और दीर्घबाहु ने रोमक, भुवन इत्यादि का बड़ी नम्रता के साथ स्वागत किया, अर्घ्य दिया, मधुपर्क भेंट किया। बराती मण्डप के नीचे आ गये। परस्पर परिचय कराया जाने लगा।

नील ने कहा, 'कुछ अतिथि उस घर में आमोद-मग्न है। जुआ खेल रहे हैं। परम्परा है। थोड़ी देर में नमस्ते करने आ जावेंगे।'

रोमक हँसकर बोला,— 'हां हां, मिल लूँगा उनसे। कोई आतुरता नहीं। नमस्ते देर-सवेर हो जायगी।'

नील-भवन के आंगन से स्त्रियों के मङ्गल-गान की ध्वनि आई। भुवन रोमक के निकट ही अपने गुरुभाइयों के साथ था। गौरी इस

पिशाच-भवन में क्या कर रही होगी ? वह भी गाना जानती है, परन्तु गा नहीं रही होगी । कहीं उदास पड़ी होगी । चिन्ताओं के मारे रोग-ग्रस्त न हो गई हो ! भुवन सोच रहा था ।

वेद ने चुटकी काटी,—‘किस उधेड़-बुन में हैं दूल्हा जी । उस गायन में क्या बहुरानी का स्वर ढूँढ़ रहे हैं ?’

‘अरे वाह !’ भुवन मुस्कराया । मुस्कान फीकी थी । आरुणि ने वेद और कल्पक को आंख के संकेत से अपने पास एक ओर किया ।

‘समझ गये ? उस घर में जुआ हो रहा है । धीरे धीरे वहां पहुंच जाओ ।’ वे दोनों उस ओर चले गये ।

रोमक ने नील से पूछा, ‘आचार्य मेघ कहां है ? उनके दर्शन नहीं हुये !’

‘आचार्य मेघ विवाह-मण्डप में भीतर है । होम-हवन की तैयारी कर रहे हैं ।’ नील ने उत्तर दिया ।

‘कोई बात नहीं । वही कर लूंगा उनके दर्शन’, रोमक ने कहा ।

नील ने बरातियों को ऊंचे मञ्च पर बिठला दिया । मञ्च के नीचे गायक और नर्तक गाने नाचने के लिये तैयार हुये ।

परम्परा की विधि के अनुसार भुवन ने गायकों से कहा, ‘राजा के यश का गान करो । यदि उनसे भी बढ़कर कोई हो तो उसकी कीर्ति का बखान करो ।’ इस गर्वोक्ति ने भुवन के कण्ठस्वर का मेल नहीं पाया । उसके स्वर में विरक्ति अधिक थी ।

वेद और कल्पक इधर-उधर चक्कर काटते बातें करते नील की पशुशाला के सामने जा पहुँचे । वहाँ भी थोड़ी सी भीड़ थी ।

वेद कह रहा था,—‘यह सब हो जाय तो कल जङ्गली पशुओं के आखेट के लिये चलेंगे । पास के जङ्गलों में बहुत मुने गये हैं ।’

भीड़ का एक व्यक्ति निकट खड़ा था । उसने पशुशाला की ओर अपनी आखें घुमाई और धीरे से कहा, ‘इसी में वन्द हैं बहुत से’, और वह द्रुतगति से कहीं समा गया ।

कल्पक ने संकेत में वेद से प्रश्न किया, 'यह कौन ?'

वेद ने धीरे से कहा, 'योगिराज के वर्ग का अपना कोई मित्र ।'

भवन के भीतर आंगन में एक छोटा सा बहुत रुचिर मण्डप बना हुआ था । उसके नीचे होम के लिये छोटी सी वेदिका और हवन-सामग्री रखी हुई थी । मेघ आंखें चढ़ाये उस सामग्री को कभी इधर और कभी उधर कर रहा था । वेदिका के आसपास थोड़ी सी ऊनी आसने बिछी हुई थीं । बड़े बड़े दीपों के प्रकाश में आंगन चमचमा रहा था । फूलों की सुगन्धि इतनी कि ठण्ड को भी नाक फुलानी पड़े । आंगन की दालानों में पड़ोस की स्त्रियां भूम-भूमकर हंस-हँसकर मङ्गलगीत गा रही थीं । हिमानी एक ओर से मण्डप में आई । उसके पीछे गौरी और कुछ सेनिकायें थी । गौरी के हाथ में फूल-मालायें । उसके पीछे कपिञ्जल एक टोकनी में और बहुत से फूल लिये था । हिमानी ने मेघ के पैर छुये ।

मेघ ने हिमानी को असीसा,—'अपने काम में सफल होओ । सुखी रहो ।'

गौरी ने सिर नीचा किये मन ही मन मेघ को गाली दी,—'राक्षस कहीं का !'

मेघ ने एक सेविका से कहा, 'दूल्हा को बाहर से बुलवाओ । मुहूर्त आ गया है ।'

हिमानी ने गौरी को आज्ञा दी,—'मालायें दास को दे दो और वहां मन्दिर में चलो ।'

गौरी ने मालायें कपिञ्जल को दे दी । हिमानी बाल के मन्दिर की ओर चली । उसकी अन्य सेवकायें भी साथ लगने को हुईं 'कि हिमानी ने वर्जित कर दिया,—'केवल गौरी और दास रहेंगे वहां । भीड़ के लिये स्थान ही नहीं है इतना ।'

हिमानी गौरी और कपिञ्जल को लेकर बाल की कोठरी में जा पहुँची । हिमानी ने गौरी और कपिञ्जल को कुछ ध्यान के साथ देखा । गौरी उसे पत्थर की जैसी जान पड़ी । आंखों में जैसे कोई भाव ही न

हो। कपिञ्जल सिर झुकाये खड़ा हो गया था। आज्ञा में तन्मय जान पड़ा।

मेघ का बुलावा नील के पास बाहर के मण्डप में पहुँच गया। नील ने बड़ी विनय के साथ निवेदन किया,—‘मुहूर्त आ गया है।’ और सिर नीचा कर लिया। उसका कलेजा धड़क रहा था।

सोम, रोमक, भुवन और अरुणि ने एक दूसरे के प्रति एक क्षण में दृष्टि फेरी।

रोमक ने कहा, ‘जानता हूँ। चलिये।’

रोमक और भुवन के साथ सोम और अरुणि तो उठे ही और भी कई बराती उठे।

नील ने नम्रता के साथ निषेध किया,—‘मण्डप के नीचे स्थान बहुत थोड़ा है। स्त्रियाँ वहाँ खचाखच भरी हैं।’

सोम पुरोहित ने हँसकर कहा,—‘कोई बात नहीं। हम चार के लिये तो स्थान है?’

मेघ ने अरुणि की ओर सङ्केत करते हुये प्रश्न किया,—‘यह कौन है!’

‘अरुणि’ दूल्हा के गुरु भाई, बड़े भाई से भी बड़कर।’

नील ने उसी नम्रता के साथ उत्तर दिया,—‘फिर और किसके लिये स्थान होगा? मंडप के नीचे कन्या और उसकी कुछ सखियाँ होंगी। आचार्य मेघ, मैं और यह दीर्घबाहु होंगे। बस।’

नील के सजे हुये प्रवेश द्वार से थोड़ा सा हटकर एक सुन्दर गाय बँधी हुई थी। उसके गले और सींगों पर विविध रंग के फूलों की मालायें बँधी हुई थी। उस युग में गाय को ऐसे ही किसी स्थान में बांध रखने की रीति थी। गाय के समक्ष होते ही भुवन को उस दिन का स्मरण हो आया जब नैमिषारण्य में टीले पर गौरी थी और नीचे गाय खड़ी उसकी ओर देख रही थी। गौरी का उद्धार अत्यन्त आवश्यक है चाहे कुछ हो जाय, भुवन ने अपने निश्चय को और भी दृढ़ किया।

उसने गाय का बन्धन खोल दिया। यह रीति के अनुसार था। गाय का रखवाला उसे लेकर चला गया।

फिर वे सब भीतर जा पहुँचे। स्त्रियों ने उनपर फूलों की बरसा की। धान फेंके। भुवन और रोमक ने मेघ को प्रणाम किया। उसने कल्याण-स्वीकृत का हाथ सांप के फन जैसा उठाकर नीचे कर लिया। वे सबके सब अलग अलग आसनो पर बैठ गये। स्त्रियां गीत गाने लगीं। बाहर तो नृत्य गान चल ही रहा था।

मेघ ने कहा,—‘मुहूर्त आ गया है। नीलपणि के परिवार में रीति चली आई है कि वर-वधू पहले इनके बालदेव की पूजा करते हैं फिर विवाह होता है। कन्या बालदेव के आलय में पहुंच चुकी है। राजकुमार को भी भेज दीजिये। कुछ क्षणों का ही काम है वहां बस फिर यहां। वहाँ का काम समाप्त होते ही शङ्ख फुकेगा।’

सोम बोला, ‘नील के परिवार की रीति निभाने और आपकी आज्ञा के पालन करने में इधर आक्षेप ही क्या है?’

रोमक ने कहा, ‘ठीक है जाओ भुवन। अपने परमात्मा का भी स्मरण करना।’ रोमक ने कठिनार्ई के साथ कण्ठावरोध रोक पाया।

भुवन खड़ा हो गया। उसे मन्दिर का मार्ग नहीं मालूम था। इधर उधर देखने लगा—गौरी कहां होगी?

‘दीर्घबाहु जी पहुंचा देगे’ नील बोला। आरुणि उठ खड़ा हुआ,—‘मैं भी देखलूँ देवता का आकार प्रकार कैसा है।’

‘जी नहीं,’—नील ने कहा,—‘वहां और कोई नहीं जा सकता। वर-वधू के लिये ही उसमें स्थान थोड़ा है और फिर यहां आंगन की ओर एक ही द्वार भीतर जाने और लौटने के लिये। उस द्वार में आपकी देह ही न समावेगी। दीर्घबाहु द्वार तक पहुँचा कर लौट आवेंगे।’

‘मेरी देह पर इस पिशाच को बड़ी जलन है। है भी एक ही चांटे का।’ आरुणि ने मन में कहा और हँसकर उकड़ बैठ गया।

दीर्घबाहु भुवन को उस स्थान के द्वार तक पहुँचा कर लौट आया । किवाड़ भिड़े हुये थे, परन्तु भीतर से बन्द न थे । भुवन ने किवाड़ खोले और भीतर प्रवेश किया । दीप स्तम्भ पर एक बड़ा दीप उस छोटी सी कोठरी को प्रकाशमान कर रहा था । फूलों की महक दीपक के धुयेँ को घोंटती सी जा रही थी ।

हिमानी ने नमस्कार के साथ उसका स्वागत किया और दीपक के सम्मुख हो गई । दीपक भुवन के पार्श्व में पड़ता था । गौरी हिमानी के पीछे परछाही में परछाही की भाँति खड़ी हुई थी । भुवन ने उस पर आँख नहीं पसारी हिमानी को पैनी दृष्टि से देखा होठों पर हिलती हुई मुस्कान थी । हिमानी ने अपनी चितवन पर कामुकता को चढ़ाया, अधमुँदी करके सिर को अभिमान के साथ थोड़ा सा मोड़कर गौरी से कहा,—‘किवाड़ बन्द कर दो ।’

गौरी ने किवाड़ अटका दिये । भुवन एक पग आगे बढ़ा । गौरी फिर हिमानी के पीछे आ गई । भुवन ने उसे अभी नहीं देख पाया था, बालदेव को थोड़ा सा जाँच पड़ताला । एक छोटी ऊँची मञ्जिका पर सोने की कुछ बड़ी सी प्रतिमा फूलों से ढकी हुई थी । उसके इधर उधर कोई भी नहीं छिपा है भुवन ने एक क्षण में अनुमान कर लिया । फिर उसने छत को देखा । पक्की थी । बहाँ कोई धोखा नहीं पाया । जब इधर उधर देखा तो कमरे में कोई और द्वार नहीं था कि बाहर से कोई घातक आक्रमण होता । फिर तुरन्त कपिञ्जल पर दृष्टि गई । डाली में फूल लिये नतमस्तक खड़ा था । बहुत अच्छा हुआ—एक से दो हुये—ये यहां न भी होते तो परमात्मा भीतर और कमर में खङ्ग तो है !

‘ये ही हैं हमारे देवता जिनकी पूजा होनी है ।’ हिमानी ने बड़ी मधुरता के साथ कहा रूखे होठों धीरे से जीभ का अगला भाग फेर लिया । गौरी दम साधे खड़ी थी । पसली पर एक हाथ था जहाँ वह छुरी छिपी हुई थी ।



‘तो करिये आरम्भ पूजा का,’—भुवन बोला और उसने बाल की मंचिका पर रखे हुये एक बड़े शंख को देखा ।

‘जैसे ही पूजन समाप्त हुआ मैं इस शंख को फूँकींगी । सबको मालूम हो जायगा कि इधर का काम समाप्त हो गया और मण्डप के नीचे का आरम्भ किया जाय । फिर हम दोनों परिक्रमा होम इत्यादि के लिये यहां से चलेंगे । पहले आप पूजन करें । केवल दो घुटने टेक कर सिर झुकाना है और फूल चढ़ाने हैं । वह दास लिये खड़ा है । फिर मैं इसी प्रकार पूजा करूँगी और शंख फूँक दूंगी ।’ हिमानी हँसी । गौरी ने अपनी उङ्गलियों छुरी का सिर टटोला । कपिञ्जल ने टोकनी जरा-सी आगे की जैसे फूल भेंट कर रहा हो—सोच रहा था अभी तुरन्त फेकता हूँ इसे एक ओर कही !

‘अच्छा,’—भुवन ने हँसकर कहा,—‘मैं ही आरम्भ किये देता हूँ, परन्तु हमारे यहाँ दोनों घुटने नहीं टेकते । एक ही टेकूँगा ।’

‘कोई बात नहीं, कोई बात नहीं,’—हिमानी हँसने की चेष्टा करती बोली, नेत्र मूँद कर कहियेगा कि हिमानी का जीवन सुखी हो । फिर जब मेरी बारी आयगी तब मैं आपके सम्बन्ध में प्रार्थना करूँगी । बस इतनी-सी है परम्परा हमारी । शेष सब आपकी ।’

गौरी हिल पड़ी । अब भुवन की दृष्टि उस पर गई । गौरी नीचे नीचे ही से देख रही थी । भुवन चौंका । गौरी यहाँ ! मेरे लिये सब प्रकार का उत्सर्ग करने के लिये तैयार !! इसकी रक्षा अब सहज है । भुवन ने अपने को तुरन्त संयत किया । उसका साहस चौगुना हो गया । गौरी ने आंखें उठाईं । ये आंखें क्या गायें चराने वाली की हैं ? इनसे तो शक्ति बरस रही है । गौरी ने अपनी दृष्टि हटाकर छिपी हुई छुरी पर डाली । हिमानी ने मुड़कर देखा ।

‘स्वस्थ हो न ?’ हिमानी ने पूछा ।

‘बिलकुल,’ गौरी ने बहुत मन्द स्वर में कहा जैसे रुई के गद्दे में छिपा हुआ खंड बोला ।

हिमानी भुवन के सम्मुख हुई। बोली, 'आप कुछ चौंके तो मैं समझी कि कहीं रेवती को कुछ हो तो नहीं गया है—यह कभी-कभी यकायक बीमार पड़ जाती है। हिमानी को अशङ्का हुई थी कि गौरी ने असमय ही छुरी बाहर न निकाल ली हो ! भुवन के साधारण से उत्तर पर सन्तुष्ट हो गई—'रथ में देर तक बैठे बैठे गर्दन की नस जकड़ गई थी उसी को ठीक किया ।'

'मुहूर्त निकला जा रहा है, आरम्भ करिये,' हिमानी ने स्नेहाग्रह किया ।

'नहीं निकल पावेगा', भुवन ने एक घुटना टेका। सिर थोड़ा सा झुकाया, एक हाथ हिमानी के भीषण प्रयत्न के रोकने और दूसरा तलवार पर पहुँचने के लिये सन्नद्ध हुआ ।

हिमानी ने अपनी तौल सम्भाली। उसका नथना ऊपर को बेतरह सिकुड़ा। भुवन ने एक क्षण के बहुत छोटे से खंड में देख लिया कि हिमानी के बराबर कुरूप कदाचित ही कोई स्त्री हो। हिमानी की छुरी निकल पड़ी। वह हुमककर छुरी को भुवन की पीठ के आरपार भेजना चाहती थी। परंतु गौरी की छुरी पहले ही खिच आई थी। गौरी ने प्रचण्ड वेग के साथ हिमानी की छुरी वाली बाहँ को अपनी बाहँ में लपेट कर जोर का झटका दिया। हिमानी चक्कर खा गई। गौरी ने इतने वेग के साथ उसे अपने घुटने की हूल दी कि हिमानी ओंधी जा पड़ी। दोनों छुरियाँ दीपक के प्रकाश में चमक गईं—कोई इस दिशा में, कोई उस दिशा में। गौरी की छुरी उस प्रयास में छूटकर गिर गई। वह हिमानी की पीठ पर चढ़ बैठी। कपिञ्जल ने फूलों की डाली फेंक दी और वह भुवन के पास आ खड़ा हुआ। भुवन उछल कर खड़ा हो गया था। उसने वस्त्र में से एक छोटी सी तुरही निकाली और फूँकी। बाहर भी तुरहियों के फूँके जाने का शब्द हुआ।

उसी समय हिमानी ने कहा,—'रेवतिया ! रेवतिया चुड़ैल, यह क्या पागल हो गई है !'

‘रेवतिया नहीं, गौरी ! चण्डी !!’ गौरी की हाँफ में से निकला ।  
कपिञ्जल ने किवाड़ खोल दिये ।

सङ्गीत बन्द हो गया था — आँगन का और बाहर मण्डप का भी ।  
यहां स्त्रियां इधर-उधर भाग उठी थी, क्योंकि मेघ को सोम ने जकड़  
लिया था, नील को रोमक ने, और दीर्घबाहु के खड्ग से आरुणि का  
खड्ग टकरा उठा था । बाहर कोलाहल मच गया ।

वेद और कल्पक ने पशुशाला के किवाड़ों की सांकल बाहर से चढ़ा  
दी । कपिञ्जल के सहवर्गी उन दोनों के पास आकर इकट्ठे हो गये ।  
मण्डप के नीचे जो थोड़े से बराती थे, वे तलवारें निकाल कर पैतरे बदल  
रहे थे । मेघ के सहवर्गी सब चौपट हुआ जानकर इधर-उधर खिसके ।  
गाने-नाचने वाले और तमाशा देखने वाले सिर पर पैर रखकर भागे ।

पशुशाला के भीतर सामन्त बन्द हो चुके थे । बाहर निकल पड़ने के  
प्रयत्नों में वे पशुओं से जा भिड़े । पशुओं ने घबराकर अपने रस्से तोड़  
डाले । पशु उन योधाओं में और योधा उन पशुओं में उलभते फिरे ।  
किसी पर गधे और खच्चर की दुलती पड़ी, किसी को गाय-भैम के सींगों  
की ठोकर मिली ! बाहर भीतर त्राहि त्राहि सी मच उठी ।

आँगन वाले मण्डप के नीचे आरुणि ने दीर्घबाहु को निश्शस्त्र करके  
दबोच लिया ।

बालकोठरी में कपिञ्जल ने भुवन से अनुरोध किया, — ‘वहां जाओ,  
मण्डप के नीचे । यहाँ मैं हूँ ।’

भुवन ने कहा, ‘हिमानी के हाथ पीछे से बाँध लो । छुरी अब भी  
लिये है । गौरी, सावधान । भुवन बाहर आ गया ।

गौरी ने कपिञ्जल के फेंटे से हिमानी के हाथ पीछे कस दिये ।  
उसकी छुरी छीन ली गई । वे दोनों उसे मण्डप के पास ले आये । वह  
एक आसन पर धम्म से बैठकर लेट गई । गौरी के पैर थक गये थे ।  
हाथ में अपनी छुरी लिये हुये उसके पास बैठ गई । हिमानी सांसें भरने  
लगी ।

कपिञ्जल भुवन के निकट आ गया ।

नील, मेघ और दीर्घबाहु बांध लिये गये ।

रोमक ने नील को धिक्कारा,—‘यह है तेरे देवता की पूजा ! ब्याह का ढोंग रच के हम सब का वध कराना चाहता था !! अपनी पुत्री को इस भीषण षड़यन्त्र में डालने के समय तुझे लाज न आई नीच !!! और क्यों रे मेघ ! कहता था नील की इस परम्परा की साधना पहले होगी, ब्याह पीछे !’

मेघ की मूर्छा में रोमक का व्यङ्ग्य तीर की तरह जा चुभा ।

हिमानी चिल्लाई—‘चुड़ैड़ ! डायन !!’

‘हूँ !’ गौरी के सूखे गले से तीखेपन के साथ फुफकार निकली । रोमक उसके पास तुरन्त आया ।

‘बेटी गौरी’ — रोमक का गला रुद्ध हो गया था,—‘बेटी, धन्य है यह देश जहां तुम्हारी सरीखी नारियाँ जन्म लेती रही हैं !’, उसने गौरी के सिर पर हाथ फेरा,—‘तुम मुझे भुवन से भी अधिक प्यारी हो बेटी !’

गौरी ने धीरे से उठकर चुपचाप उसके पैर छुये ।

बाहर हल्ला हुआ,—‘नील और हिमानी को समाप्त कर दो ! पापी मेघ भी न बचने पावे !!’

इतने में हाथ में तलवार लिये हुये वेद आ गया । आते ही चिल्लाया,—‘पशुओं वाले घर में मेघ के वे बिना सींग पूँछ के पशु, सब के सब, बन्दी कर लिये गये हैं । कड़ा पहरा बिठला आया हूँ । बाहर किसी प्रकार का सँकट नहीं ।’

‘धन्य हो तुम सब ।’ रोमक ने प्रसन्न होकर वेद को गले लगा लिया ।

वेद भुवन के पास जा खड़ा हुआ । हिमानी की ओर देखकर बोला, ‘ये होने जा रही थी अयोध्या की रानी महारानी !’

हिमानी के सिर की फूल मालायें टूट कर धरती पर बिखर गई थीं ।

गौरी ने वेद को देखते ही पहिचान लिया । नमस्कार करके सिर झुका लिया । वेद ने नमस्कार का उत्तर सिर नवाकर दिया ।

‘यही है वह ! यही तो है वह !!’ वेद ने भुवन से धीरे से कहा ।

‘चुप ! चुप !! ठहरो भी वेद ।’ भुवन ने रोका । वेद को कुछ कहे बिना चैन कहाँ ? कपिञ्जल को धन्यवाद देने लगा,—‘योगिराज धन्य हो !’

मेघ की नीची निगाह ऊपर को हुई, परन्तु उसने कपिञ्जल को पहिचान नहीं पाया ।

नील के मुँह से आह के साथ निकला,—‘मैं यों ही मारा गया ! मिट गया !!’ और वह अचेत होने को हुआ ।

मेघ को उस पर क्रोध आया,—‘इसी ने कोई बड़ी भूल कर डाली है जिस कारण यह सब नष्ट हो गया और कुछ बरबराया जैसे शाप देने के लिये कोई मन्त्र पढ़ रहा हो !’

बाहर से फिर वही पुकार हुई,—‘मार दो हत्यारों को !’

‘क्या कहना है आचार्य मेघ आपको ?’ सोम ने चिन्ता दी ।

दीर्घबाहु बँधा हुआ होने पर भी इस प्रकार फड़क रहा था जैसे किसी पशु ने नशा किया हो । परन्तु आरुणि सतर्क था ।

मेघ अडिग था । बोला, ‘हमने किया ही क्या है ? रोमक ने राज्य की पुनः प्राप्ति और नील का धन हरण करने के लिये यह सब जाल रचा है !’

वेद ने व्यङ्ग्य कसा,—‘पशुओं वाले घर में वे हथियार बन्द योधा हमीं लोगों ने तो इकट्ठे किये न ।’

‘हिमानी के हाथ में छुरी किसने पकड़ाई थी ?’ आरुणि ने प्रश्न किया ।

उसी समय दो परिचारिकाओं के साथ वहाँ ममता आ गई । उसको घटना का समाचार अविलम्ब मिल गया था ।

भुवन ने उसके पैरों में माथा टेका । फिर गौरी ने उसी प्रकार प्रणाम किया । ममता ने गौरी को अपने हृदय से लगा लिया । कहा,—‘बेटी तुम्हें कोई चोट तो नहीं आई है ?’

‘नहीं माता जी ।’

सोम ने मेघ से कहा,—‘कुछ कहना है ? दण्ड की व्यवस्था की जा रही है ।’

उसने गुराकर उत्तर दिया,—‘मे निर्दोष हूँ । मैंने कुछ नहीं किया । मुझे दण्ड देने वाला रौरव नरक में जायगा ।’

भुवन हँस पड़ा,—‘माता जी, इनमें से कोई भी अपने कुकर्म को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं ।’

‘कोई पक्का प्रमाण चाहते होंगे’, ममता ने कहा । रोमक की दृष्टि सहसा कपिञ्जल पर गई । कपिञ्जल आगे आया ।

‘बोला,—‘प्रणाम है ।’

‘कहाँ है ?’ मेघ ने चिन्तित दी ।

‘आपकी छाती पर ही भूत की तरह पाप का वह प्रमाण सवार होगा ।’

मेघ के बँधे हुये हाथ यकायक उसकी छाती की ओर उठ गये ।

कपिञ्जल ने भुवन से कहा, ‘ले लीजिये राजकुमार प्रमाण को अपने हाथ में । वहीं है वही है !’

भ्रष्टाने के लिये भुवन के पैर उठे । रोमक वज्रित करके बढ़ा । मेघ की वही दशा हुई जो जङ्गली बिल्ली की चारों ओर से घिर जाने पर होती है । रोमक ने मेघ की उत्तरीय के नीचे से वह पत्र निकाल लिया और उसे चिह्ना चिह्ना कर पढ़ा—‘दीर्घबाहु मान गये है । आप सबका साथ देंगे । रोमक और भुवन को समाप्त करके फिर आपकी सहायता से सामन्त-तन्त्र की स्थापना होगी । ठोस होकर आ जाइये । हिमानी सब काम कुशलता के साथ कर रही है और करेगी ।’

सेवक नील । सेवक दीर्घबाहु ।’

कहिये और भी किसी प्रमाण की आवश्यकता है ?'

वेद से न रहा गया,—‘आपके वे योद्धा जो अयोध्या जन पद का राज्य करने यहां आये थे पशुशाला में गधों और खच्चरों के आदेशों पर नाच रहे हैं !’

दीर्घबाहु के मुँह से निकला,—‘आचार्य ! और—ऐसी नासमझी !!’

मेघ सन्न रह गया । परन्तु वह सूखे पेड़ की तरह अब भी अकड़ा खड़ा था ।

दण्ड की व्यवस्था होने लगी । उन सब को प्राण दण्ड देने की बात उठी रोमक राजा नहीं था इसलिये बन्दी गृह में डाल रखने की चर्चा हुई ।

सोम ने कहा,—‘जब तक राजा को फिर से गद्दी नहीं मिली शासक मण्डल का सदस्य मैं तो हूँ । मैं दण्ड देता हूँ ।’

‘इन्हें दण्ड देने के पहले मुझे नील का रिन चुका लेने दीजिये,—कपिञ्जल ने विनय की ।

नील सचेत हो गया । कपिञ्जल ने उसके सामने जाकर अपने कपड़े के छोर से सोने के सिक्के खोले और नील के सामने रख दिये,—‘मैं आपका दास कपिञ्जल आज उद्धरण हुआ ।’

कपिञ्जल ! ओफ़ !!’ नील और मेघ के कण्ठों से एक साथ निकला । मेघ के आहत अभिमान ने उसे ऐसा झकोरा जैसे सूखे पेड़ को आँधी का बवण्डर उखाड़े डाल रहा हो । ‘कपिञ्जल ! धूर्त !! हाय !!!’ हिमानी के होठों पर से भी छूटा; परन्तु कराह के साथ ।

फिर कपिञ्जल बोला,—‘मैं प्रार्थना करता हूँ कि इनको प्राण दण्ड न दिया जाय । ये अपने स्वभाव के दास हुये हैं जो बड़ी कठिनाई से बदलता है ।’

‘एक बढ़िया और सुन्दर दण्ड का सुभाव मैं देता हूँ,—वेद ने उल्लास के साथ कहा,—‘इसी मण्डप के नीचे अभी अभी भुवन और गौरी का

पाणिग्रहण संस्कार इन सबके सामने किया जाय जो हमें फूटी आँखों भी नहीं देखना चाहिये ।’

गौरी न धीरे से ममता को तुरन्त अपना विरोध प्रकट किया,—  
‘नहीं माता जी । यह मण्डप अपवित्र हो चुका है !’

उन सबने भी सुन लिया । ममता ने उसे गले लगा लिया,—‘मैं तुम्हें पाकर धन्य हुई बेटी । यहां होकर नहीं अपने घर पर ही होगा ।’

रोमक ने बड़े उत्साह के साथ स्वस्ति की,—‘बहुत ठीक है । बहुत उचित है ।’

नील इत्यादि के दण्ड देने की बात फिर उठी ।

भुवन ने कहा, ‘इन्हें प्राण दण्ड नहीं देना चाहिये । परमात्मा की दया से हम सब बच गये और रक्तपात बिलकुल नहीं हो पाया । हम अपने आनन्द को कलुषित क्यों करें ?’ ममता ने समर्थन किया ।

गौरी भुवन की ओर छिपे छिपे देखकर मुस्कराई । वही मुस्कान जो भुवन ने नैमिषारण्य में टीले पर देखी थी जब गाय उसकी ओर गर्दन उभका कर आँखें किये थी और गाय ने ‘हां’ सी की थी ।

सोम ने निश्चय के साथ निर्णय किया,—

‘अच्छा, प्राण दण्ड नहीं दिया जाता है । देश निकाले का दण्ड पर्याप्त होगा । जीवनयापन के लिये थोड़े से साधन छोड़ कर तुम्हारी सम्पत्ति राज्य-कोष में मिलाई जाती है जब तक बाहर दूर भेज देने का उपयुक्त साधन नहीं प्राप्त होता तब तक के लिये बन्दीगृह में रखे जाओगे ।’ तीनों अपराधी सुन्न पड़ गये ।

बाहर नगर सभा के कुछ योधा थे । वे उन्हें बन्दी गृह में ले गये ।

रोमक से सोम ने कहा,—‘जनपद समिति का अधिवेशन बहुत शीघ्र किया जावेगा । आपको फिर से राज्य मिलने में कोई शङ्का नहीं ।’

कृतज्ञता के कारण रोमक का गला भर आया । उसने सोम को नतमस्तक होकर प्रणाम किया ।



‘अब अपने घर चलना चाहिये । नगर वाले जहाँ तहाँ उत्सुक होकर इकट्ठे हो रहे होंगे । वे हम सबकी कुशल का समाचार जानने की प्रतीक्षा कर रहे होंगे । संभव है कुछ लोग मार काट की तैयारी कर रहे हों, उनसे भी निबटना पड़ेगा ।’

गौरी ने ममता से धीरे से कहा, ‘मैं कोठरी में से अपना सामना उठा लाऊँ ?’

‘मैं सहायता किये देता हूँ ।’ कपिञ्जल बोला । वेद ने तुरन्त टोका,— ‘तुम क्यों ? भुवन जायगा उनके साथ ।’ आरुणि देर से चुप था । उसने सोचा मुझे भी कुछ कहना चाहिये,—‘हां हां ठीक तो है—’ आगे कुछ नहीं कह सका । ममता ने भुवन को हाथ का संकेत किया—चले जाओ ।

गौरी के पीछे पीछे भुवन गया ।

गौरी की कोठरी में दीपक नहीं जल रहा था । पूर्व दिशा की खिड़की में होकर पूर्णिमा के चन्द्र की किरणें बरस सी रही थी ।

‘मैंने तुमसे उस दिन मुँह फेर लिया था और फिर टेकड़ी पर बैठा जब भूख के मारे पत्ते चबा कर खा रहा था और तुम मेरे लिये पके आम लाईं मैं निठुरता के साथ भाग गया ! मुझे बड़ा क्लेश रहा ।’

‘मैंने भी तो उस दिन पीठ फेरली थी जब अन्न नीचे गिरकर बिखर गया और तुम बीनने लगे । तुम्हें क्या हो गया था ? मैं आज तक न समझ पाई !’

‘हो क्या गया था—कुछ भी नहीं । गुरुदेव को मेरे तुम्हारे प्रेम की बात मालूम हो गई तो उन्होंने निषेध का अनुशासन दो वर्ष के लिये रख दिया ! मुझे अपने सुधार के लिये मानना पड़ा ।

‘तुमने मुझे बताया क्यों नहीं ?’

‘बात करने और सिर ऊपर उठाने तक की मनाई थी ।’

‘ओ भगवान ! आज मालूम हो पाया मुझे !! मैं यों ही चिन्ता में इतने दिनों धक्कती रही !!!’

‘अब सब भूल जाओ। परमात्मा को धन्यवाद देकर घर चलो। हम तुम सब मिलकर स्वराज्य के लिये सदा प्रयत्न करते रहें—यतेमहि स्वराज्ये।’

गौरी ने भी दुहराया—‘यतेमहि स्वराज्ये।’

फिर दोनों ने पूर्व दिशा की ओर मुँह करके हाथ जोड़कर प्रार्थना की, उन दोनों के मुखों की आभा एक दूसरे से होड़ सी लगा रही थी। चन्द्रमा उस आभा पर अपनी किरणों की मुस्कानें बिखेर बिखेर कर हँस रहा था।

×                      ×                      ×                      ×

गौरी अपनी पोटली लेकर भुवन के पीछे पीछे आई। पोटली एक ओर रखकर उसने रोमक के पैरों पर सिर रक्खा। रोमक का आशीर्वाद विकल होकर कण्ठ तक आया, परन्तु उसे स्वर नहीं मिल पाया—गला रुँध गया था। आंखों के आंसुओं में होकर भर पड़ा और गौरी के केशों में जाकर रम गया। रोमक उसके सिर पर वरद हस्त फेरने लगा। गौरी धीरे से खड़ी हुई। मुड़कर उसने अपने अञ्चल में से सोने के खण्ड निकाले और रोमक के पैरों के निकट रख दिये। हाथ जोड़ कर नतमस्तक खड़ी हो गई।

विस्मय और भ्रान्ति के सन्नाटे में कठिनाई के साथ रोमक के मुँह से टूटे स्वर में निकला,—‘यह क्या बेटी?’

‘मेरे पिता पर ऋण था—उसे—’ गौरी आगे कुछ न कह सकी। ऋण था और ऋण पर इतने वर्षों का ब्याज! इसे वह किस भाषा में कहती?

‘ऋण कैसा?...कब का?’ वैसे ही स्वर में, रोमक ने पूछा।

धीरे से गौरी ने उत्तर दिया,—‘जब वे अयोध्या से नैमिषारण्य जाने को थे।’ उन्होंने अन्न और वस्त्र लिया था।’

अब आया स्मरण—रोमक हँस पड़ा। उसकी हँसी आंसुओं से भीग गई। गदगद हो गया। सोम मुस्कराया। वेद और कल्पक स्तम्भित हो

गये । ममता ने पीठ फेरकर अपनी आँखें पोंछी । भुवन के मन में विजय का उल्लास, विनय का अभ्यास और उमङ्ग का उन्मेष द्वन्द्व मचा उठे—पुलक पर पुलक आने लगे । कपिञ्जल नेत्र मूँदे कोई जप सा करने लगा । बाहर अब भी हल्ला हो रहा था । भीतर की निश्शब्दता ने उससे कुछ क्षण होड़ सी लगाई ।

थोड़े ऊँचे स्वर में रोमक बोला, 'बेटी, तुम्हारे माता-पिता हमको और हमारे वंश को जो कुछ दे गये हैं उसके लिये हम परमात्मा के चिर-श्रुणी रहेंगे ।'

गौरी के पैर काँपने लगे—उस रात में पिता का अन्तिम आदेश कानों में गूँज गया । यदि इन्होंने स्वर्ण न लिया तो—तो मैं क्या कहूँ ? कैसे कहूँ ? अस्फुट पवित्रता के भीतरी लावण्य की मञ्जुलता, बीती के विषाद की करुणा और वर्तमान की निरूपायता ने गौरी की आँखों को और भी झुका दिया जैसे नीचे दूर पाताल में से कुछ खोज रही हों ।

सोम ने हँसकर रोमक से कहा, 'उठा लीजिये स्वर्ण । गौरी के मन को पूरा आनन्द तभी मिलेगा ।'

रोमक ने उठा लिये और गौरी पर न्योछावर करके बाहर आकर कपिञ्जल के साथियों में वितरित कर दिये ।

×

×

×

एक दिन आया जब गौरी और भुवन का विवाह होम-हवन के मन्त्रों के बीच सम्पन्न हुआ, और, जनपद-समिति ने कल्याणकारी शासन की परम्परागत सौगन्ध लेकर रोमक को राज्य लौटा दिया ।

\* समाप्त \*

# श्री वृन्दावनलाल वर्मा

—: के :—

प्रकाशित उपन्यासों से एकदम भिन्न तथा अनोखी कृति

जिसमें राष्ट्र की कृषि समस्याओं का हल निहित है

१—वर्णन में आकर्षक प्रवाह और स्वाभाविक गति

२—सहकारिता, ग्राम उद्योग-विकास का सुन्दर वर्णन

३—मानव प्रकृति का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण

४—राष्ट्र की कृषि सम्बन्धी पंच-वर्षीय योजना का हल,

५—किसान, मज़दूर, साहूकार तथा ज़मींदारों का  
गतिशील संघर्ष,

६—भाषा में प्रवाह, सजीवता और रोचकता,

६—ज़मींदारी उन्मूलन के बाद की प्रस्तुत समस्याओं  
का सफल सुलझाव,

— यह सब आपको —

वर्मा जी के श्रेष्ठ सामाजिक उपन्यास

## अमरबेल

में मिलेगा ।

---

अनेक विद्वज्जनों की राय में “अमरबेल” सहकारिता, ग्राम-

उद्योग, विकास तथा पंचायतों, विशेषकर कृषि सम्बन्धी

पंचवर्षीय योजनाओं की गुत्थियों को सुलझाने में

सहायक सिद्ध होगी ।

---

:: :: मयूर-प्रकाशन, भांसी :: ::

# मयूर-प्रकाशन, भाँसी

:: :: श्री वृन्दावनलाल वर्मा—साहित्य के एकमात्र प्रकाशक :: ::

## हमारे प्रकाशन

|                          |     |                  |     |     |
|--------------------------|-----|------------------|-----|-----|
| भाँसी की रानी लक्ष्मीबाई | ६)  | तोषी             | ... | १)  |
| मृगनयनी                  | ... | मुसाहिबजू        | ... | १॥) |
| कचनार                    | ... | लगन              | ... | १॥) |
| प्रेम की भेंट            | ... | अमरबेल           | ... | ५)  |
| सोना                     | ... | टूटे काँटे       | ... | ४॥) |
| अचल मेरा कोई             | ... | सामाजिक नाटक     |     |     |
| अहिल्याबाई               | ... |                  |     |     |
| ऐतिहासिक नाटक            |     | राखी की लाज      | ... | १॥) |
| भाँसी की रानी            | ... | खिलौने की खोज    | ... | १॥) |
| हंस-मयूर                 | ... | बांस की फांस     | ... | १)  |
| पूर्व की ओर              | ... | नीलकंठ           | ... | १॥) |
| बीरबल                    | ... | सगुन             | ... | ॥॥) |
| जहाँदारशाह               | ... | पीले हाथ         | ... | ॥॥) |
| फूलों की बोली            | ... | मंगलसूत्र        | ... | १)  |
| ललितविक्रम               | ... | निस्तार          | ... | १)  |
| तोषी                     | ... | एकांकी—          |     |     |
| कहानी—                   |     | काश्मीर का कांटा | ... | १)  |
| शरणागत                   | ... | लो, भाई पंचो लो  | ... | ॥॥) |
| कलाकार का दंड            | ... | कनेर             | ... | १)  |

—: अन्य लेखकों की कृतियाँ :—

| कथा                  | काव्य | इतिहास             |
|----------------------|-------|--------------------|
| कन्नौ की बुनियाँ में | १॥॥)  | चले चलो ॥॥)        |
| नई कहानियाँ          | १॥)   | सरसी २)            |
| नारी जीवन चक्र       | १॥)   | विश्व भारती १॥)    |
| रेखायें              | १॥)   | साहित्य और समाज १) |
|                      |       | प्राणवण्ड ५)       |















